आचार्य केशवदास कृत

रसिकप्रिया

का

प्रियाप्रसाद तिलक

'स्वारथ परमारथ लहै रसिकप्रिया की प्रीति'

टीकाकार

विश्वनाथप्रसाद मिश्र

प्रकाशक
कल्याणदास ऐण्ड ब्रदर्स
ज्ञानवापी, वाराणसी

प्रथम संस्करण सं० २०१५ वि०

संस्करण : द्वितीय
मूल्य ~~सात रुपए पचास पैसे~~
संख्या : ११००
संवत् : २०२४

वितरक
बिहार ग्रंथ कुटीर
खजांची रोड, पटना-४

मुद्रक
बजरंगबली गुप्त 'विशारद'
आर्यावर्त प्रेस
शालिपादेवी, वाराणसी-१

प्रस्तावना

आचार्य केशवदास

केशवदास का प्राचीन काल में काव्यजगत् में क्या माहात्म्य था इसकी कल्पना आज नहीं की जा सकती। इस युग में भी उनका जैसा मान पहले था वैसा अब नहीं रहा। केशव को अपदस्थ करने में मलिक मुहम्मद जायसी हेतु हुए। मध्यकाल में केशव और बिहारी का काव्य-प्रवाह में जैसा मान था वैसा जायसी और कबीर का नहीं। कबीर का नाम तो प्रवाह में सुना भी जाता था, पर जायसी का कोई नामलेवा तक न था। भारतेंदु-युग के अंत में उनकी पदमावत चंद्रप्रभा प्रेस से छपी थी। महामहोपाध्याय सुधाकर द्विवेदी ने जैसा उसका संस्करण निकलवाया उसका कहना ही क्या। फिर लाला भगवानदीनजी का पदमावत का पूर्वार्ध हिंदी-साहित्य-संमेलन से निकला, पंडित रामचंद्रजी शुक्ल की जायसी-ग्रंथावली सामने आई, शेरिफ ने उनकी कृति का संस्कार किया, माताप्रसादजी की वैज्ञानिक प्रणाली से संपादित स्थूलकाय जायसी-ग्रंथावली दिखाई पड़ी और डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने पदमावत पर महाभाष्य ही लिख डाला।

केशव की रचना की पढ़ाई पहले सर्वत्र होती थी। धीरे धीरे वे हटाए गए। यह उन केशवदास की स्थिति है जिनकी कृतियों पर प्राचीन युग में सूरति मिश्र ऐसे पंडित और सरदार कवि ऐसे कवि-सरदार ने टीकाएँ लिखी थीं। जायसी पर टीका-टिप्पणी की बात ही पृथक् है, उनकी पदमावत के नागरी में हस्तलेख ही कितने थे। कोई काव्य-संसार में उन्हें पढ़ता होता तब न!

हिंदी में भारी गड्डलिका-प्रवाह है। केशव के दोषों की चर्चा, उनकी कड़ी आलोचना क्या कर दी गई लोगों ने समझ लिया कि केशव बेकार हैं, हटाओ इन्हें। 'हटाओ' में उनके काव्य की कठिनाई भी हेतु है। जिन शुक्लजी ने केशव की कड़ी आलोचना की उन्होंने उन्हें पढ़ाई में बराबर बनाए रखा। रामचंद्रचंद्रिका हिंदी में संस्कृत-परंपरा के महाकाव्यों के प्रतिनिधि-रूप में उन्हें स्वीकार थी। उस परंपरा के ग्रंथरूप में उसका महत्व उन्हें मान्य था। इधर केशव के संबंध में जितने प्रयत्न हुए उनसे भी उनकी उपेक्षा का परिहार नहीं हुआ। 'केशव की काव्यकला' श्रीकृष्णशंकर शुक्ल ने लिखी, 'केशवदास' स्वर्गीय पं० चंद्रबली पांडे ने प्रस्तुत किया। श्रीहीरालाल दीक्षित ने 'आचार्य केशवदास' पर पूरा प्रबंध ही लिख डाला। सर्वश्री किरणचंद्र शर्मा, विजयपाल

सिंह तथा प्रयाग से दो-एक सज्जन उनकी रचनाओं में अनुसंधान करके डाक्टर हो गए। हिंदुस्तानी अकदमी (प्रयाग) से केशव-ग्रंथावली अब निकली है। जायसी पर विस्तृत आलोचना पहले लिखी गई, जायसी-ग्रंथावली पहले निकली केशव-ग्रंथावली पिछड़ गई।

यही नहीं केशव को 'हिंदी-नवरत्न' में जो स्थान मिला वह भी उनके अनुरूप उस समय बहुतों को नहीं लगा था। अब तो केशव पर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता का भरपूर अनुभव करना ही त्याग दिया गया है। उनके संबंध में प्रायः ये उद्धरण दिखाई देते हैं—

कठिन काव्य के प्रेत।

कबि को दीन न चहै बिदाई। पूछै केशव की कबिताई।

उडुगन केसवदास।

'केसव अर्थ गँभीर को' की' चर्चा अब कोई नहीं करता। 'प्रेत' शब्द का क्या प्रासंगिक अर्थ है? केशव के संबंध में प्रचलित किंवदंती का स्मरण कीजिए। कहते हैं कि जो सुख-भोग केशव और उनकी मंडली तुंगारण्य के बीच ओड़छे में कर रही थी वह परलोक में भी खंडित न हो इस विचार से उन्होंने प्रेत-यज्ञ कराया। सबके सब प्रेत हो गए। केशव प्रेतयोनि में जिस कष्ट का अनुभव कर रहे थे उसे उन्होंने तुलसीदास से निवेदित किया और उनके आदेशानुसार अपनी रामचंद्रचंद्रिका का पाठ कर मुक्त हुए। औरों की मुक्ति के संबंध में किंवदंती मौन है। बस, केशव 'कठिन काव्य के प्रेत' हो गए। 'एक भए प्रेत एक मींजि मारे हाथी हैं' में भी यही जनश्रुति मुखर है। इसका अर्थ यही है कि केशव का काव्य कठिन है। कठिन काव्य पहले समझ में आए तब न! बस, 'कबि को दीन न चहै बिदाई, पूछै केसव की कबिताई'। केशव के कठिन काव्य को पहले स्मरण कौन करे और स्मरण करे भी तो जो सुनेगा उसे पहले अर्थ लगेगा तभी तो कार्य सधेगा। कवि अर्थात् भाट कबिताई सुना देगा, वह कोई टीकाकार या महाभाष्यकार तो है नहीं कि उसका अर्थ भी श्रोता को बतलाए। अर्थ लगता नहीं तो अर्थ हाथ कैसे लगे। इस कठिनाई का अर्थ यह भी लगाया जाने लगा कि उनकी कविता में 'रस' नहीं, 'सहृदयता' नहीं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने उन्हें हृदयहीन क्या लिख दिया, वे बेचारे रसिकों, सहृदयों, कवियों सबकी मंडली से खारिज किए जाने लगे। केशव परंपरा से इतने अभिभूत थे कि वे अपने हृदय का उपयोग उस अवसर पर नहीं कर पाते थे जिस अवसर पर शुक्लजी के विचार से हृदय का योग अनिवार्य रूप से होना चाहिए। प्रकृति के प्रति उनके हृदय में वह राग नहीं था जो होना कवि के लिए अपेक्षित है। पर यह तो हिंदी के सभी कवियों के लिए है।

केवल केशव ही प्रकृति से उदासीन नहीं, सारा मध्यकालीन काव्य उदासीन है।

एक प्राध्यापक से, जो केशव की रामचंद्रचंद्रिका पढ़ाते थे, महामना मालवीयजी ने पूछा कि आजकल क्या पढ़ाते हो। उन्होंने तुरंत सोत्साह उत्तर दिया—केशवदास की रामचंद्रिका। फिर पृच्छा हुई—केशव की कोई रचना तो सुनाओ। प्राध्यापक मौन। केशव की कविता भी स्मरण रखनी चाहिए इसका ध्यान प्राध्यापक को नहीं था। अर्थ लगाने में सहायक थी स्वर्गीय लाला भगवानदीनजी की केशव-कौमुदी टीका। अत्र तत्र सर्वत्र। रामचंद्रचंद्रिका के छंद प्राचीनों ने तो कुछ कंठाग्र भी किए, रामलीला में संवादों के बीच अब भी वे सुनाई पड़ते हैं। नवीनों को, पढ़ने-पढ़ानेवाले शिक्षितों-सुशिक्षितों को इसकी आवश्यकता! बेचारे परीक्षार्थी अवश्य ही कुछ अंश, कभी पूरा पद्य और कभी पद-पदांश मात्र परीक्षा के त्रास से मुखाग्र-कंठाग्र कर लिया करते थे। प्राध्यापक इस बखेड़े से बरी। यह उन केशव की रचना की कथा है जिन्होंने कभी अकबर के यह पूछने पर कि युग का सबसे उत्तम कवि कौन है, उत्तर दिया था—मैं। सूरदास और तुलसीदास को भक्तों की मंडली में बिठलाया था। इस विस्मरण या अस्मरण का हेतु है केशव के काव्य का काठिन्य। केशव की कुत्सा काव्य-पांडित्य के स्खलन के कारण नहीं थी। मध्यकाल में किसी के पांडित्य या विदग्धता की जाँच की कसौटी थी केशव की कविता। उन्हें धीरे धीरे बहुत भुला दिया गया। ये केशव जिस प्रदेश में हुए थे वही व्रजी का प्रदेश था। वह व्रजी के काव्य-वाङ्मय का केंद्र था। 'वे बुँदेली के कवि थे' कहना उनका मान कम करना है। व्रजी के कवियों का भारी जमघट उसी अंचल में था। मुगल सम्राटों का निवास दिल्ली में नहीं आगरे के पास था। दिल्ली से रसखानि भी भागकर वृंदावन आ बसे। घनआनंद ने भी दिल्ली छोड़ी, वृंदावन आए। जिस भू-भाग पर केशव (उड़गन ही होकर सही) चमक रहे थे वही व्रजी का आरंभिक भूभाग था। भाषाकाव्य-निर्माण का स्रोत वहीं से फूटा है। उस अंचल में जैसे जैसे प्राचीन कवि हुए है और उन्होंने जैसी जैसी रचनाएँ की हैं उनमें से बहुतों का पता तक हिंदी के महंतों को नहीं है। नैषध का हिंदी में उल्था करनेवाले गुमान ने केशव की रामचंद्रचंद्रिका के जोड़-तोड़ में कृष्णचंद्रिका लिखी। यह कृष्णचंद्रिका यदि हिंदी के आलोचकों ने देख ली होती तो पता चलता कि हिंदी में ऐसे प्रबंध भी लिखे गए हैं। इनके भाई खुमान ने कृष्णायन लिखा है रामायण के जोड़तोड़ पर, जो अभी तक अप्रकाशित है। समझा यह जाता है कि श्रीद्वारकाप्रसाद मिश्र ने कदाचित् सबसे पहले इस नाम की कल्पना की और कृष्ण पर रामायण के ढंग का काव्य लिखा। उस कविधरा भूमि में अनेक सरस कवि हुए। उन

सबके नगड़दादा थे केशवदास, जिनका लोहा सभी मानते थे, जिनकी रचना का अध्ययन निरंतर होता रहा ।

उस भूभाग के कवियों की विशेषता रही है कि वे सब प्रकार का काव्य-चमत्कार दिखा सकने की शक्ति रखते थे । केशव के पूर्व जिस प्रकार का प्रवाह था सबका नमूना उन्होंने प्रस्तुत कर दिया है । उन्होंने रामचंद्रचंद्रिका के अतिरिक्त प्रशस्तिकाव्य भी कई लिखे हैं—वीरचरित्र, रतनबावनी और जहाँगीरजसचंद्रिका । संस्कृत के प्रबोधचंद्रोदय का पद्यबद्ध भाषानुवाद 'विज्ञानगीता' के रूप में है, जिसमें अपनी ओर से भी बहुत सी सामग्री पौराणिक वृत्ति वाले पंडित कवि ने जोड़ रखी है । इस भूभाग का कवि बहुश्रुत होता था । अनेक काव्यों और शास्त्रों का पहले अध्ययन करना, फिर उस निपुणता से अपने काव्य का उपबृंहण । प्राचीन काव्य और शास्त्र संस्कृत के भी पढ़े जाते थे और फलस्वरूप उनसे प्रभावित होना स्वाभाविक था । संस्कृत का आग्रह इनमें होता ही था । शौरसेनी की प्रकृति भी तो संस्कृत ही मानी जाती है । इसलिए संस्कृत के शब्दों और प्रयोगों का ग्रहण इनमें सहज था । केशव 'देवता' को स्त्रीलिंग ही लिखते रहे, देह को पुंलिंग । संस्कृत के उन शब्दों का भी प्रयोग 'भाखा' में करते रहे जो भाखावालों के लिए दुरूह हैं । यह ब्रजी की प्रवृत्ति थी, केशव की—जिनके कुल के दास 'भाखा' बोलना नहीं जानते थे—व्यक्तिगत प्रवृत्ति मात्र नहीं थी । इस भूभाग में सांप्रदायिक आग्रह नहीं रहा, साहित्य ही उन्हें सांप्रदायिकता से नहीं पृथक् करता रहा, उनमें ऐसी उदारता, हृदय की विशालता जन्मभूमि साहित्यभूमि भी लाती रही । रीति का आग्रह करनेवाले भी यहाँ थे, उससे स्वच्छंद रहनेवाले भी यहाँ थे । केशव निंबार्क-संप्रदाय में दीक्षित थे । उन्होंने रसिकप्रिया में प्रियाजू की प्रशस्ति लिखी । पर रामचंद्रचंद्रिका भी लिखी ।

कर्तृत्व

केशवदास ने लक्षण-ग्रंथ ही नहीं, लक्ष्य-ग्रंथ भी लिखे हैं । शृंगार की ही नहीं, अन्य रसों की भी रचनाएँ की हैं । मुक्तक ही नहीं, प्रबंध भी प्रणीत किए हैं । इनके ग्रंथ ये हैं—रसिकप्रिया, कविप्रिया, नखशिख, शिखनख, बारहमासा, छंदमाला, रामचंद्रचंद्रिका, रतनबावनी, वीरचरित्र, जहाँगीरजसचंद्रिका और विज्ञानगीता । वीरचरित्र और रतनबावनी में वीररसपूर्ण रचनाएँ हैं । वीरचरित्र या वीरसिंहदेवचरित्र प्रबंधकाव्य है, किंतु प्रबंध के गुण पूर्ण मात्रा में इसमें नहीं पाए जाते । जहाँगीरजसचंद्रिका प्रशस्तिकाव्य है । इनके प्रसिद्ध महाकाव्य रामचंद्रचंद्रिका में भी प्रबंधत्व परिपूर्ण नहीं ।

प्रबंध के लिए कथा का क्रमबद्ध रूप और अवसर के अनुकूल विस्तार-सकोच अपेक्षित होता है। रामचंद्रचंद्रिका में इसका ध्यान नहीं रखा गया है। केशवदास वस्तुतः दरबारी जीव थे। इसी से जितनी बातें दरबार के अनुकूल थीं उन्हीं का वर्णन विस्तार से इन्होंने किया। पांडित्य का प्रदर्शन भी इनमें प्रधान था जो रामचंद्रचंद्रिका में स्थान स्थान पर लक्षित होता है। शास्त्र-स्थितिसंपादन की इच्छा इनमें प्रबल थी।

महाकाव्य वर्णन-प्रधान भी होता है। किंतु इसका यह तात्पर्य नहीं कि वर्णनों पर ही दृष्टि रखकर कर्ता चले और वर्ण्य विषयों का ठीक ठीक निरूपण न करे या वर्णनों के लिए कथा की क्रमबद्धता का त्याग कर दे। संस्कृत में पिछले खेवे का प्रबंधकाव्य श्रीहर्ष का 'नैषधचरित' है। उसमें कथा-भाग बहुत कम है। इसी से वर्णन प्रधान दिखाई देता है। किंतु श्रीहर्ष ने वर्ण्य विषयों के साथ तादात्म्य की प्रतीति खोई नहीं। कवि का निरूपण इतना सूक्ष्म और व्यापक है कि उन वर्णनों का पढ़नेवाला उनसे ऊबता नहीं। किंतु केशव के वर्णन वैसे मार्मिक नहीं हुए हैं। सच बात तो यह है कि ये चमत्कारवादी कवि थे। स्थान स्थान पर चमत्कार दिखलाना ही इनका लक्ष्य था। चमक-दमक के चक्कर में अधिक रहने से ही प्रबंधकाव्य के अन्य आवश्यक गुणों का ध्यान इन्हें विशेष नहीं था। अतः यह कहने में कोई संकोच नहीं कि केशव में भाव-पक्ष प्रधान नहीं। रचना में कलापक्ष की प्रधानता इनकी व्यक्तिगत अभिरुचि मात्र नहीं थी। ये संस्कृत के पंडित थे। इन्होंने जिन जिन ग्रंथों को आदर्श बनाया वे चमत्कारपूर्ण उक्तियों से लदे हुए थे। उत्प्रेक्षा, श्लेष, विरोधाभास, परिसंख्या आदि अलंकारों की जैसी भरमार रामचंद्रचंद्रिका में दिखाई पड़ती है वैसी उसके आदर्शग्रंथ बाण की 'कादंबरी' में भी। अंतर इतना ही है कि कादंबरीकार ने जिन जिन दृश्यों, स्थानों आदि का वर्णन किया है उनकी विशेषताओं का ध्यान भी बराबर रखा है, पर इन्होंने चमत्कार के फेर में उनका ध्यान बहुधा छोड़ दिया है। इसके अतिरिक्त प्रबंध के बीच अनावश्यक उपदेशात्मक प्रसंगों का जोड़ना ठीक नहीं जान पड़ता। पर ये इससे कहीं भी विरत नहीं हुए, यहाँ तक कि संस्कृत के 'प्रबोधचंद्रोदय' नाटक का आधार लेकर जो 'विज्ञानगीता' लिखी उसमें भी इस प्रकार के कई प्रसंग जोड़ दिए।

ऐसा होते हुए भी रामचंद्रचंद्रिका में एक गुण विशेष ध्यान देने योग्य है। वह है संवादों का उपयुक्त विधान। इन्होंने संस्कृत के कई ऐसे नाटक देखे थे जो रामाख्यान पर थे। फल यह हुआ कि रामचंद्रचंद्रिका में संवादों की इन्होंने बहुत ही अच्छी योजना की। कई प्रसंग तो अनुवाद करके ही रखे हुए हैं।

नाटकों का आधार लेने से और कथाभाग को छोड़ देने से संवाद के वक्ताओं के नाम इन्हें पद्य से पृथक् रखने पड़े हैं। इनमें भी ध्यान देने योग्य संवाद राजनीतिक प्रसंग के ही हैं। कुछ पात्रों का चरित्र भी इन्होंने विशेष रूप में लक्षित कराया है। उत्तरार्ध में लवकुश की उक्तियाँ विशेष मार्मिक बन पड़ी हैं। पर ऐसे प्रसंग इतने बड़े काव्य में थोड़े ही दिखाई देते हैं। शैली देखते हैं तो उसमें भी विविध प्रकार के छंदों के उदाहरण प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति है। प्रबंधकाव्य में धारा चला करती है। इस धारा को बनाए रखने में छंद भी सहायक होते हैं। यही कारण था कि कवि लोग एक सर्ग में प्रायः एक ही छंद का प्रयोग करते थे। केवल अंत में मोड़ की सूचना के लिए दो-चार छंद बदल दिए जाते थे। किंतु रामचंद्रचंद्रिका में छंदों का परिवर्तन इतना शीघ्र और इतने अधिक रूपों में किया गया है कि एकरसता आ ही नहीं पाती। अतः प्रबंधकाव्य के विचार से रामचंद्रचंद्रिका समर्थ रचना नहीं दिखाई देती। कथाक्रम यथावश्यक न होने से वह मुक्तक उक्तियों का संग्रह-ग्रंथ जान पड़ती है।

लक्ष्य-ग्रंथों को छोड़कर लक्षण-ग्रंथों की ओर देखते हैं तो वहाँ भी पूर्ण अवधानता नहीं दिखाई पड़ती। इन्होंने काव्यकल्पलतावृत्ति, काव्यादर्श आदि के अनुगमन पर 'कविप्रिया' नाम से कविशिक्षा की एक अच्छी पुस्तक प्रस्तुत की। किंतु उसमें भी कोई अपनी सूझ नहीं। उलटे अलंकार (विशेष) के निरूपण में उलटी-सीधी बातें भी आ गई हैं। कविप्रिया से यह अवश्य हुआ कि निरीक्षण की शक्ति न रखनेवालों या उससे भागनेवालों के लिए भी काव्यपरंपरा का ज्ञान सुलभ हो गया। कवि केवल पुस्तक पढ़कर ही काव्य-रचना में प्रवृत्त होने लगे, उन्होंने स्वतः निरीक्षण करना छोड़ ही दिया। दक्षिणापथ के वर्णन में उत्तरापथ के वृक्षों की उद्धरणी या उत्तरापथ के वर्णन में दक्षिणापथ के वृक्षों की नामावली अथवा मथुरा में मेवे के पौधे केशव की ही जमाई हुई परिपाटी का परिणाम है। कविप्रिया के ही अंतर्गत पहले नखशिख, शिखनख और बारहमासा थे, पर आगे चलकर ये पृथक् प्रचारित किए गए। यह हो सकता है कि इनका निर्माण कविप्रिया से पहले ही हो गया हो और उसकी रूपरेखा बनाते समय इन सबका या किसी का समावेश किया गया हो। आरंभ में इसी से इनका निर्देश पृथक् कृति के रूप में ही किया गया है। नखशिख देवी-देवताओं या अवतारों के रूपवर्णन के लिए और शिखनख नर-नारी के रूपवर्णन के लिए होता है। बारहमासा वियोगवर्णन से संबद्ध है और लोकगीतों के प्रवाह से साहित्य में आया है।

'रसिकप्रिया' में इन्होंने नायिकाभेद और थोड़ा सा रसों का भी परिचय दिया है। किंतु इसमें शृंगार की रसनायकता विलक्षण ढंग से प्रमाणित की गई है। इन्होंने संस्कृत की ही सारी सामग्री ली है। जहाँ कहीं अपनी ओर से कुछ करने का हौसला दिखलाया है वहीं इन्हें धोखा हुआ है। संस्कृत की पूरी सामग्री भी ठीक ठीक नहीं ली जा सकी। हाँ, 'रसिकप्रिया' को देखते हुए मानना पड़ता है कि केशव में प्रसंग-कल्पना की शक्ति थी अवश्य। काव्यभाषा से भी ये भली भाँति परिचित थे। रसिकप्रिया की पद्धति पर ही यदि इनकी सारी रचनाएँ होतीं तो भी ये 'कठिनकाव्य के प्रेत' होने से बच जाते। सच बात तो यह है कि कुछ कारणों से इन्हें महाकाव्य लिखने का उत्साह हुआ। इस धारा में पाठक को मग्न करने के विचार से नहीं, पांडित्य-प्रदर्शन के विचार से। इसीलिए रामचंद्रचंद्रिका की रचना बेढंगी हो गई। शब्द भी इन्होंने संस्कृत के कुछ अधिक रखे और कहीं कहीं अप्रचलित तक। ये कहते भी तो थे—

भाषा बोलि न जानहीं जिनके कुल के दास।
भाषा-कबि भो मंदमति तेहि कुल केसवदास॥—कविप्रिया

केशवदास का उद्देश्य संस्कृत की साहित्य-परंपरा की हिंदी में प्रतिष्ठा थी। यही इन्होंने किया।

रचना के आधार

केशव जब हिंदी में ग्रंथ प्रस्तुत करने लगे तब इनके नेत्रों में संस्कृत के ग्रंथ नाच रहे थे। इसी से इनके अधिकतर ग्रंथ संस्कृत को ही आधार बनाकर खड़े हुए। इनके प्रशस्ति-काव्यों में पांडित्य संस्कृत का अवश्य झलकता है पर सीधे संस्कृत-ग्रंथों के आधार पर उनका निर्माण नहीं है। रतनबावनी में तो वह झलक भी नहीं है। इसका कारण यही है कि वह इनकी आरंभिक रचना है। उस समय इन्होंने आचार्यत्व का बाना नहीं धारण किया था। जब से इन्होंने आचार्य का आसन ग्रहण किया तब से इन्हें संस्कृत की शास्त्रीय पद्धति को हिंदी में प्रचलित करने की चिंता हुई। उसे इन्होंने जीवन के अंत तक नहीं छोड़ा। रामचंद्रचंद्रिका के देखने से जान पड़ता है, मानो ये किसी को पिंगल की पद्धति सिखला रहे हों। पुस्तक के आरंभ से ही इसका आभास मिलने लगता है। एक वर्ण के छंद से क्रमशः कई वर्णों के छंदों तक वर्णन चला चलता है। आगे चलकर वर्णवृत्तों के विभिन्न रूपों का भी कम विस्तार नहीं है। केशव ने इतने अधिक और ऐसे ऐसे वर्णवृत्तों का प्रयोग किया है जो पिंगल के प्रस्तार से ही जाने जा सकते हैं; साधारणतः जिनका प्रयोग नहीं होता। 'रामचंद्रचंद्रिका' में 'प्रसन्नराघव', 'हनुमन्नाटक', 'कादंबरी' आदि कई ग्रंथों की छाया है, कितने अंश तो कोरे अनुवाद ही हैं।

'कविप्रिया' कविशिक्षा की पुस्तक है, इसमें संस्कृत के अलंकार-संप्रदाय-वाले आचार्यों का अनुगमन है। इसके मुख्य आधार-ग्रंथ हैं—कविकल्पलतावृत्ति और काव्यादर्श। आरंभ में अंधवधिरादि दोष डिंगल के काव्यप्रवाह से ले लिए गए हैं। बारहमासा लोकप्रवाह से आया है और नखशिख की परंपरा फारसी की है। यद्यपि केशव के पूर्व संस्कृत में ध्वनि की स्थापना भली भाँति हो चुकी थी तथापि इन्होंने अलंकार की पुरानी धारणा को ही प्रधानता दी। इन्होंने 'अलंकार' शब्द को उसी व्यापक अर्थ में ग्रहण किया है जिसमें उसको दंडी, वामन आदि प्राचीन आचार्यों ने लिया है। इसी से पारिभाषिक अर्थ के अनुसार 'विशेषालंकार' के अतिरिक्त इन्होंने 'सामान्यालंकार' के अंतर्गत काव्य की शोभा बढ़ानेवाली सभी सामग्री जुटा दी है। इनके दूसरे लक्षण-ग्रंथ 'रसिकप्रिया' में संस्कृत के तद्विषयक बहुप्रचलित ग्रंथों से कुछ भिन्नता है। पर इसका यह अर्थ नहीं कि केशव ने इसमें कोई नई बात लिखी है। इन्होंने नायिकाभेद का सूक्ष्म तत्त्व न समझकर इसमें कुछ बातें 'कामतंत्र' की भी जोड़ दी हैं। इनके अनुकरण पर आगे चलकर कुछ कवियों ने नायिकाभेद के ऐसे ग्रंथ भी प्रस्तुत किए जिनमें कामशास्त्र का रंग गहरा चढ़ गया। शृंगार के जो दो भेद 'प्रकाश' और 'प्रच्छन्न' किए गए हैं वे भी पुराने हैं। रसिकप्रिया के आधारभूत ग्रंथ 'नाट्यशास्त्र', 'कामसूत्र' तो हैं ही, रुद्रभट्ट के शृंगारतिलक का पूरा आधार इसमें ग्रहण किया गया है।

केशव ने 'विज्ञानगीता' संस्कृत के 'प्रबोधचंद्रोदय' नाटक के आधार पर लिखी है। पर जिस प्रकार इन्होंने अन्य ग्रंथों में मूल ग्रंथों से कुछ न कुछ भिन्नता रखी है उसी प्रकार इसमें भी। कथा के नाटकीय रूप में थोड़ा सा परिवर्तन कर दिया गया है, यद्यपि संवादों का रूप-रंग और पात्र प्रायः वे ही हैं। एक बात और है। केशव ने जिस प्रकार रामचंद्रचंद्रिका में यथास्थान पंडित्य-प्रदर्शन की प्रवृत्ति दिखाई है उसी प्रकार 'विज्ञानगीता' में भी शरद् आदि के वर्णन अनावश्यक ही जोड़ दिए गए हैं।

नायिकाभेद

नायक-नायिकाभेद का संबंध रसप्रवाह और नाट्यप्रवाह से है। वहाँ अभिनय के लिए नायकादि के भेद की अपेक्षा थी। उसी दृष्टि से उसका विचार वहाँ किया गया। नाट्यशास्त्र में नायिका के जो भेद दिए गए हैं वे कई प्रकार के हैं। जब नाट्य और काव्य दोनों का भेदक अभिनय नहीं रह गया केवल स्वरूपभेद ही रह गया तब नायिकाभेद नाटक के रूपभेद के अंतर्गत व्यवस्थित कर दिया गया। भरत के नाट्यशास्त्र से दशरूपक तक आते आते

यही स्थिति रह गई थी। इसलिए आगे चलकर वह अंश केवल काव्योपयोगी समझकर पृथक् कर लिया गया। भानुदत्त ने रसतरंगिणी और रसमंजरी ग्रंथ लिखकर इसे स्पष्ट कर दिया है। पर इसके पूर्व रस के साथ ही नायिकाभेद का भी विचार होता था। पार्थक्य नहीं किया गया था।

भरत के नाट्यशास्त्र के अनंतर काव्यप्रवाह या श्रव्यप्रवाह के जिस ग्रंथ में सर्वप्रथम नायिकाभेद का उल्लेख मिलता है वह रुद्रट का काव्यलंकार है। रुद्रट के अनंतर रुद्र या रुद्रभट्ट ने 'शृंगारतिलक' नाम के ग्रंथ में प्रधान रूप से शृंगार का और तदंतर्गत नायक-नायिका-भेद का पर्याप्त विवेचन किया है। अंत में अन्य रसों का संक्षेप में निरूपण है। यही हिंदी के शृंगारी ग्रंथों की मूल वृत्ति है। विस्तार से शृंगार का विचार करना और संक्षेप में अन्य रसों का विवेचन कर देना। अन्य रसों का विवेचन होने पर भी रुद्रभट्ट ने अपने ग्रंथ का नाम 'शृंगारतिलक' ही रखा है, 'रसतिलक' नहीं। अतः जो यह कहते हैं कि हिंदी के रीतिकाल का नाम शृंगारकाल नहीं होना चाहिए, क्योंकि उसमें शृंगार के अतिरिक्त अन्य रसों का भी साथ ही विवेचन किया गया है उन्हें 'शृंगारतिलक' तथा इसी प्रकार के अन्य अनेक ग्रंथों का अध्ययन करना चाहिए और परंपरा से परिचय प्राप्त करने का अभ्यास डालना चाहिए। संस्कृत में स्वयम् 'रस' शब्द शृंगार का पर्यायवाची हो गया था।

रुद्रट का समय आनंदवर्धन के पूर्व माना जाता है, क्योंकि उन्होंने आनंदवर्धन के ध्वनिसिद्धांत की चर्चा अपने ग्रंथ में नहीं की है। इसलिए विक्रम की नवीं शताब्दी के अंत में उनका सत्ताकाल प्रतीत होता है। उनका दूसरा नाम शतानंद भी था।* पहले कुछ सज्जन रुद्रटभट्ट और रुद्रभट्ट को एक ही मानते थे। पर अब यह सिद्ध हो गया हैं कि ये दो पृथक् व्यक्ति हैं—एक का नाम रुद्रट है और दूसरे का केवल रुद्र। काव्यसंबंधी दृष्टि भी दोनों की भिन्न है। रुद्रट अलंकार-प्रवाह के आचार्य हैं और रुद्रभट्ट रस-प्रवाह के। रुद्रभट्ट ने रुद्रट के ग्रंथ से सहायता भी प्राप्त की है, इसलिए ये विशिष्ट आचार्य नहीं माने जाते। रुद्रभट्ट संकलयिता के रूप में ही माने जाते हैं। रुद्रट उद्भावना करनेवाले आचार्य हैं। उन्होंने रसप्रवाह के नौ रसों के अतिरिक्त 'प्रेयस्' नामक दसवें रस की कल्पना की है। अन्यत्र भी उनमें नवीन कल्पनाएँ मिलती हैं।

रुद्रभट्ट का केवल एक ही ग्रंथ 'शृंगारतिलक' मिलता है। इन्होंने और भी

---

* **शतानन्दपराख्येन भट्टवामुकसूनुना।**
साधितं रुद्रटेनेदं सामाजाधीमतां हितम् ॥—काव्यालंकार-टीका।

ग्रंथ लिखे या नहीं, कुछ पता नहीं। हिंदी में केशवदास ने 'शृंगारतिलक' का प्रधान रूप में आधार लेकर रसिकप्रिया का निर्माण किया। केशवदास की परंपरा भी हिंदी में कुछ दूर तक दिखाई देती हैं। 'देव' ने एक ओर केशव की शैली लेकर शृंगारतिलक से अपने को जोड़ा दूसरी और रसतरंगिणी से सहायता ली। शृंगार और नायिकाभेद के इस प्रकार हिंदी में दो प्रवाह हैं। एक का संबंध रुद्रट-रुद्रभट्ट से जुड़ता है दूसरे का भानुभट्ट या भानुदत्त से। नायिकाभेद की शाखा ने भानुभट्ट का ही प्रधान रूप में ग्रहण किया है। उज्ज्वलनीलमणि में जो भक्तिभावित नायिकाभेद आया है उसका प्रवाह हिंदी में नहीं चला। उसका हिंदी की परंपरा में ग्वाल ने अपने रसिकानंद में उल्लेख किया है। वह भी नायिकाभेद के प्रसंग में नहीं।

'रसिकप्रिया' और 'शृंगारतिलक' का मिलान करने से स्पष्ट हो जाता है कि केशव ने उसी ग्रंथ को सामने रखा है। सामग्री कामशास्त्र से भी ली गई है, पर बहुत थोड़ी। केशव ने वेश्या का उल्लेख भर किया है। रसों के प्रकाश-प्रच्छन्न रूप भी इन्होंने वहीं से रखे हैं। प्रकाश-प्रच्छन्न का उल्लेख रुद्रट ने भी किया है। फिर आगे भी ये भेद चले। शृंगारतिलक के नायिकाभेद-संबंधी प्रवाह में रसमंजरी से मुख्य पार्थक्य है—मुग्धा, मध्या और प्रौढ़ा के निरूपण में। मुग्धादि के जो विशेषण दिए गए हैं वे भिन्न भिन्न प्रकार के हैं। रुद्रट के यहाँ भी इनके विशेषण भिन्न हैं। यहाँ विस्तारभय से दिग्दर्शन मात्र कराया जाता है। काव्यालंकार और शृंगारतिलक के साथ साहित्यदर्पण को इसलिए जोड़ लिया जाता है कि हिंदी के नायिकाभेद के प्रसंग में आधारग्रंथ के रूप में उसका भी उल्लेख किया गया है—

काव्यालंकार	शृंगारतिलक	साहित्यदर्पण	रसमंजरी
मुग्धा—			
१ नवोढ़ा	नववधू	प्रथमावतीर्णयौवना	नवोढा
२ नवयौवनजनित-मन्मथोत्साहा	नवयौवनभूषिता	प्रथमावतीर्ण-मदनविकारा	विश्रब्धनवोढा
३ रतिनैपुणानभिज्ञा	नवानंगरहस्या	रतिवामा	अंकुरितज्ञातयौवना
४ साध्वसपिहितानुरागा	लज्जाप्रायरति	मानमृदु	अंकुरितअज्ञातयौवना
५ ×	×	समधिकलज्जावती	×
मध्या—			
१ आरूढयौवनभरा	आरूढयौवना	प्ररूढयौवना	×
२ आविर्भूतमन्मथोत्साहा	प्रादुर्भूतमनोभवा	प्ररूढस्मरा	×

३ उद्भिन्नप्रागल्भ्या	प्रगल्भवचना	ईषत्प्रगल्भवचना	×
४ किंचिद्वृतसुरतचातुर्या	किंचिद्विचित्रसुरता	विचित्रसुरता	×
५ ×	×	मध्यमव्रीडिता	×

प्रौढ़ा—

१ लब्धायति	लब्धायति	गाढतारुण्या	रतिप्रीता
२ रतिकर्मपंडिता	समस्तरतिकोविदा	समस्तरतकोविदा	आनंदसंमोहा
३ आक्रांतनायकमना	आक्रांतनायका	आक्रांता	×
४ निर्व्यूढविलासविस्तारा	विराजद्विभ्रमा	भावोन्नता	×
५ ×	×	स्मरांधा	×
६ ×	×	दरव्रीडा	×

इन विशेषणों में यौवन, काम, लज्जा, रति प्रगल्भता और अधिकार के तारतम्य का विचार किया गया है। 'लब्धायति' विशेषण को न समझने के कारण हिंदी में आचार्यंमन्य और आलोचकंमन्य इसे 'लब्धापति' या 'लुब्धापति समझते हैं। संस्कृत-व्याकरण से न 'लब्धापति' बनेगा न 'लुब्धापति'। तत्त्वतः शब्द लब्धायति है—'लब्धा आयतिर्यया सा लब्धायतिः'। 'आयति' शब्द के अनेक अर्थ हैं—भविष्य, विस्तार आदि। 'साहित्यदर्पण' की 'गाढतारुण्या' कदाचित् 'लब्धायति' है। 'भावोन्नता' विराजद्विभ्रमा ही है। काव्यालंकार, शृंगारतिलक और साहित्यदर्पण एक ही परंपरा में हैं। रसमंजरी का प्रवाह भिन्न है।

हिंदी में नायिकाभेद के क्षेत्र में कोई नई उद्भावना नहीं की गई है। जो उद्भावना नई समझी जाती है वह पहले कोई उद्भावना भी हो। हिंदी के दो आचार्यों में कुछ नवीन कहने का हौसला दिखाई देता है—देव में और दास में। देव की जैसी उद्भावना जातिविलास में दिखाई देती है वह साहित्यिक मर्यादा के अंतर्गत नहीं आती। यथार्थवाद के नाम पर कहाँ तक उसकी पुष्टि की जायगी। दास ने जो भी नूतन सरणि रखी है वह विमर्शपूर्वक है, भले ही उसका विशेष महत्त्व न हो। हिंदी में विशेष महत्त्व की उद्भावना के लिए अवकाश भी संस्कृत के आचार्य नहीं छोड़ गए थे। इसलिए यदि किसी की दृष्टि नवीन विचारपरंपरा की ओर जाती है तो यही उसके लिए बहुत बड़ी बात है। जैसे, दास ने यह सोचा कि श्रीमानों के यहाँ अनेक महिलाएँ रहती हैं और वे एक ही पति की अनेक महिलाएँ होती हैं। पाणिगृहीता तो स्वकीया है, पर ये 'रक्षिताएँ' या 'परदायतें' क्या मानी जाएँ—परकीया या स्वकीया। इनके परकीया मानने में बाधा थी। उसके लिए 'परपुरुष' की शर्त थी।

अतः इन्होंने उन्हें स्वकीया ही घोषित किया—

श्रीमाननि के भौन में भोग्य भामिनी और।
तिनहूँ कौं सुकियाहि में गनें सुकबि-सिरमौर ॥—श्रृंगारनिर्णय।

जातिविलास में जिन्हें आलंबन के रूप में रखा गया उनमें से अधिकतर को उद्दीपन के अंतर्गत दूती के रूप में दास ने जो उपस्थित किया वह पारंपरिक प्रवाह के कारण। केशवदास ने इनमें से अधिकतर को सखीरूप में रखा है, वह भी रुद्रभट्ट के श्रृंगारतिलक के ही आधार पर*। हिंदी में अधिकांश संस्कृत का ही है, नवीन उद्भावना के कण उसमें नहीं के समान हैं। परकीया के उद्‌बुद्धा और उद्‌बोधिता वस्तुतः भेद नहीं हैं, उनकी स्थिति का कथन मात्र है। उसमें अवैज्ञानिकता नहीं है जैसा कहा जाता है। वह भी पारंपरिक कथन है। परकीया के मिलने के प्रयत्न की त्रिधा स्थिति हो सकती है—नायिका की ओर से प्रयत्न, नायक की ओर से प्रयत्न, दोनो की ओर से प्रयत्न। इनमें से उभयात्मक स्थिति का उल्लेख नहीं है। नायिका की ओर से प्रयत्न होने पर वह उद्‌बुधा है, नायक की ओर से प्रयत्न होने पर वह उद्‌बोधिता है। 'श्रृंगारतिलक' में भी इस स्थिति का उल्लेख है—

विज्ञातनायिकाचित्ता सखी वदति नायकम्।
नायको वा सखीं तस्याः प्रेमाभिव्यक्तये यथा ॥

दोनों स्थितियों के दो उदाहरण भी वहाँ दिए गए हैं। यह कहना भ्रांति-शून्य नहीं कि उद्‌बोधिता तो अनूढ़ा ही है। ऊढ़ा और अनूढ़ा दोनों ही उद्-बोधिता हो सकती हैं। कैसी अविचारित रमणीय उक्ति है—अनूढ़ा को न स्वकीया में ही रखा जा सकता है और न परकीया में। जब तक अनूढ़ा है तब तक वह परकीया ही रहेगी और जब प्रेमी से ही उसका विवाह हो जायगा तब वह स्वकीया होगी। स्थितिभेद से स्वरूपभेद होगा।

संस्कृत में कार्यभेद से नायिकाओं के आठ रूप माने गए हैं, पर हिंदी में बहुत पहले से 'अष्टनायिका' के स्थान पर 'दशनायिका' का निरूपण होता आया है। इस आठ और दस में कोई बड़ा अंतर नहीं है। सात भेद तो उभयनिष्ठ हैं। केवल प्रोषितभर्तृका के ही तीन-चार भेद और कर डाले गए हैं, अथवा यों कहिए कि नायक के प्रवास-प्रसंग को लेकर इन भेदों की कल्पना कर ली गई है—प्रोषितपतिका, प्रवत्सत्पतिका, प्रवत्स्यत्पतिका और आगतपतिका। प्रवत्सत्पतिका को किसी ने छोड़ भी दिया है, जैसे पद्माकर

---

* **कारुर्दासी नटी धात्री प्रातिवेश्या च शिल्पिनी।**
बाला प्रव्रजिता चेति स्त्रीणां ज्ञेयः सखीजनः ॥

ने। कहीं कहीं यह भेद मिलता है, जैसे भाषाभूषण में।

इनमें से प्रोस्यत्पतिका का उदाहरण प्राचीनों के अनुसार भानुदत्त ने भी रसमंजरी में रखा है।* उन्होंने बतलाया है कि इसका अंतर्भाव यदि विप्रलब्धा, कलहांतरिता या खंडिता में करना चाहें तो नहीं हो सकता। इसलिए इसे स्वतंत्र भेद ही स्वीकार करना चाहिए।

दास विचारशील आचार्य थे। उन्होंने नायिकाभेद के प्रसंग में कुछ स्थितियाँ कल्पित की हैं। रससारांश में वे लिखते हैं—

गुप्त बिदग्धा लक्षिता मुदिता तिय को भाइ।
किये बनै सुकियाहु में अपा हास्यरस पाइ।।
त्यों ही परकीयाहु में है मुग्धादिक कर्म।
जैसें अस्त्र कोऊ गहै क्षत्रिजाति को धर्म।।

उस युग में इतना ही विचार क्या कम है। आज जब नायिकाभेद में ही अपनी सारी साहित्यिक योग्यता का व्यय करनेवाले भी इस विषय पर कुछ नहीं सोच पाते तो संस्कृत की समृद्ध चिंतनपरंपरा में हिंदी के मध्यकाल के इन शृंगारयुगीन कवियों या आचार्यों ने इतना भी सोचा तो बहुत किया। शृंगार-काल के आचार्यों ने महत्त्वपूर्ण बातें चाहे न सोची हों, पर उन्होंने अपने क्षेत्र में समय समय पर कुछ चिंतन अवश्य किया है। उनके चिंतन के कणों को संचित करने से पर्याप्त राशि इकट्ठी हो सकती है।

रसिकप्रिया और शृंगारतिलक

रसिकप्रिया लक्षणग्रंथों में केशव की सबसे प्रथम कृति है। इसका निर्माण सं० १६४८ में हुआ था। ओड़छा के इंद्रजीत के कहने से इस ग्रंथ का निर्माण किया गया—

रच्यो बिरंचि बिचारि तहँ नृपमनि मधुकर साहि।
गहिरवार कासीसरबि कुलमंडन जसु जाहि।।
ताको पुत्र प्रसिद्ध महिमंडन दूलहराम।
इंद्रजीत ताको अनुज सकल धर्म को धाम।।
दीन्हो ताहि नृसिंहजू तन मन रन जयसिद्धि।
हित करि लच्छन-राम ज्यौं भई राज की वृद्धि।।

*** प्राचीनलेखनादप्रिमक्षणे देशान्तरनिश्चितगमने प्रेयसि प्रोस्यत्पतिका नवमी नायिका भवितुमर्हति।**

तिन कबि केसवदास सों कीन्हो धर्मसनेहु ।
सब सुख दैकरि यों कह्यो 'रसिकप्रिया' करि देहु ।।
संबत सोरह सै बरस बीते अठतालीस ।
कातिग सुदि तिथि सप्तमी बार बरनि रजनीस ।।

किंतु यह न समझना चाहिए कि केशव ने केवल इंद्रजीत का ही ध्यान रखकर इसकी रचना की है। वे प्रेरक मात्र थे। रसिकों के लिए ही रसिकप्रिया बनी है। वह रसिकप्रिया है, इंद्रजीतप्रिया नहीं—

अति रति मति गति एक करि बिबिध बिबेक बिलास ।
रसिकन कों रसिकप्रिया कीन्ही केसवदास ।।

काव्य भी नरकाव्य न होना चाहिए—

तातें रुचि सों सोचि पचि कीजै सरस कबित्त ।
केसव स्याम सुजान को सुनत होइ बस चित्त ।।

'कबित्त' का अन्वय 'सुजान को' से है अर्थात् स्याम सुजान का काव्य। सुजान शब्द श्रीकृष्ण और राधा दोनों के लिए प्रयुक्त होता था। इसलिए यदि कोई चाहे तो स्याम सुजान का अर्थ राधाकृष्ण भी कर सकता है।

इसमें प्रधान रूप से शृंगार का और गौण रूप से अन्य रसों का विचार किया गया है। रस में प्रच्छन्न और प्रकाश भेद रुद्रभट्ट के शृंगारतिलक के अनुगमन पर रखे गए हैं—

सुभ सँजोग बियोग पुनि द्वै सिंगार की जाति ।
पुनि प्रच्छन्न प्रकास करि दोऊ द्वै द्वै भाँति ।।

प्रच्छन्न-प्रकाश का तात्पर्य इन्होंने यों समझाया है—

सो प्रच्छन्न सँजोग अरु कहैं बियोग प्रमान ।
जानैं पीव प्रिया कि सखि होहिं जो तिन्हहि समान ।।
सो प्रकास सँजोग अरु कहैं प्रकास बियोग ।
अपने अपने चित्त में जानैं सिगरे लोग ।।

नायिकाभेद में नायिका की जाति का वर्णन कामशास्त्र के अनुसार पद्मिनी-चित्रिणी-शंखिनी-हस्तिनी किया गया है। मुग्धामध्यादि के विशेषण शृंगारतिलक के आधार पर हैं। हिंदी में आगे नायिकाभेद की जो परंपरा चली वह रसमंजरी के अनुसार। केशव ने उसका अनुगमन नहीं किया, किंतु हावों का ग्रहण रसमंजरीकार के अनुकूल ही किया है। हास के चार भेद किए हैं—मंदहास, कलहास, अतिहास और परिहास। अन्यत्र परिहास को हास्यरस के भीतर नहीं रखा गया है, शृंगारतिलक में भी नहीं। इसका हेतु यह है कि

जहाँ परिहास श्रृंगार में रहता है वहाँ वह संचारी का काम करता है। स्वच्छंद रूप में वह रस की स्थिति उत्पन्न करने में इसलिए समर्थ नहीं होता कि उससे साधारणीकरण होने में बाधा होती है। जिसका परिहास किया जाता है वह परिहास करनेवाले की दृष्टि में नीचा होता है। इसलिए भाव की स्थिति तो वहाँ हो सकती है, पर रस की नहीं। समरस अर्थात् शांतरस के जो उदाहरण इन्होंने दिए हैं उनमें से अंतिम के अतिरिक्त शेष श्रृंगार के अंतर्गत ही हैं अर्थात् उनमें निर्वेद संचारी मात्र है, स्थायी नहीं।

केशवदास ने अधिकांश विचारसरणि रसिकप्रिया में श्रृंगारतिलक के ही आधार पर रखी है। मंगलाचरण से ही अनुकथन का मंगलाचरण हो जाता है। श्रृंगारतिलक का मंगलाचरण यह है—

श्रृंगारी गिरिजानने सकरुणो रत्यां प्रवीरः स्मरे
बीभत्सोऽस्थिभिरुत्फणी च भयकृन्मूर्त्याद्भुतस्तुंगया।
रौद्रो दक्षविमर्दने च हसकृन्नग्नः प्रशान्तश्चिरा-
दित्थं सर्वरसाश्रयः पशुपतिर्भूयात्सतां भूतये॥

इसमें शिव (नटराज) को सर्वरसाश्रय कहा गया है और रसिकप्रिया में व्रजराज को नवरसमय बताया गया है—

श्रीवृषभानुकुमारिहेत सृंगाररूप भय।
बास हासरस हरे मातुबंधन करुनामय।
केसी प्रति अति रौद्र बीर मारो बत्सासुर।
भय दावानलपान, पियो बीभत्स बकीउर।
अति अद्भुत बंचि बिरंचिमति, सांत संततै सोच चित।
कहि केसव सेवहु रसिकजन, नवरसमय ब्रजराज नित॥

लक्षणों का आधार प्रायः वही है। उदाहरणों में कहीं उसकी छाया है और बहुधा स्वतंत्र निर्माण है। उदाहरण कहीं अनूदित नहीं हैं। जो विषय 'श्रृंगारतिलक' में है और 'रसिकप्रिया' में भी गृहीत है वह प्रायः विवेचन की दृष्टि से ज्यों का त्यों है। परकीया और गणिका के वर्णन में श्रृंगारतिलक ने अधिक रस लिया है, पर रसिकप्रिया में गणिका का पूरा परित्याग है। परकीया के वर्णन में भी अभिनिवेश नहीं है। नीचे दोनों ग्रंथों के समानांतर विषयों की तालिका पद्य-संख्यारूप में दी जा रही है—

श्रृंगारतिलक	रसिकप्रिया	श्रृंगारतिलक	रसिकप्रिया
१।१-८	×	१।११-१४	६।१२-१४
१।९	१।१५	१।१५	६।१०
१।१०	६।९	१।१६-१८	×

१।१९	१५।१	१।६१-७१	×
१।२०	×	१।७२	७।२
१।२१	१।१७*	१।७३	७।१
१।२२	१।१८	१।७४	७।४
१।२३-२५	२।१-३	१।७५	७।७
१।२६	२।७	१।७६	७।१०
१।२७	२।११	१।७७	७।१३
१।२८	२।१४	१।७८	७।२२
१।२९-३२	×	१।७९	७।१६*
१।३३	३।१४	१।८०	७।२५
१।३४-३५	३।१६-१७	१।८१	७।१९
१।३६	३।२६	१।८२-८६	×
१।३७	३।३०	१।८७-८८	७।३३-३४*
१।३८	×	१।८९	७।३५
१।३९	३।३२	१।९०	७।३७
१।४०	×	१।९१	७।३९
१।४१	३।४६	१।९२	७।४१
१।४२	३।५०	१।९३-९४	×
१।४३	×	१।९५	७।४२-४३
१।४४	३।५९	२।१-२	८।२-३
१।४५	३।६३	२।३	×
१।४६-४८	×	२।४-७	८।८-१०
१।४९	३।६५	२।८	८।१५
१।५०	३।६८,४।१	२।९	८।२५
१।५१	४।२	२।१०	८।२०
१।५२	३।७२	२।११	८।३०
१।५३	५।१	२।१२	८।३५
१।५४	५।५	२।१३	८।४०
१।५५	५।७	२।१४	८।४५
१।५६-५७	×	२।१५	८।४८*
१।५८	५।१९	२।१६-१७	८।५३-५४
१।५९	×	२।१८-१९	×
१।६०	५।२२	२।२०	८।५५

२।२१	×	३।३	१४।८*
२।२२	१६।१३	३।४	१४।१२*
२।२३-२६	×	३।५	१४।१८*
२।२७	५।२४	३।६	×
२।२८-३१	×	३।७	१४।२१
२।३२	९।१*	३।८	×
२।३३-३४	९।२-३	३।९	१४।२४*
२।३५	९।१५	३।१०-११	×
२।३६	९।९	३।१२	१४।२७
२।३७-४१	×	३।१३	×
२।४२	१०।२	३।१४	१४।३०*
२।४३	१०।१	३।१५	×
२।४४	१०।३*	३।१६	१४।३३*
२।४५	१०।६	३।१७	×
२।४६	१०।११	३।१८	१४।३७*
२।४७	१०।२०	३।१९-२०	×
२।४८	१०।१४	३।२१	१६।२
२।४९	१०।२३	३।२२-३८	×
२।५०	×	३।३९	१५।२
२।५१	१०।२९-३०	३।४०	×
२।५२	×	३।४१	१५।६
२।५३	१०।३१	३।४२	×
२।५४-५५	×	३।४३	१५।८*
२।५६	१०।३२	३।४४	१५।४
२।५७	११।७	३।४५	×
२।५८-५९	×	३।४६	१६।१
२।६०	११।१*	३।४७	१६।६
२।६१-६४	×	३।४८	१६।४*
२।६५	१२।१	३।४९	×
२।६६	×	३।५०	१६।८
२।६७	१३।१	३।५१	१६।४
२।६८-७०	×	३।५२	१६।१०
३।१	१४।१*	३।५३-५७	×
३।२	१४।३		

ऊपर जहाँ गुणन का चिह्न (×) है वहाँ 'शृंगारतिलक' और 'रसिक-प्रिया' में मेल नहीं है। 'शृंगारतिलक' की समस्त बातें 'रसिकप्रिया' में नहीं गृहीत की गई हैं। जहाँ तारा-चिह्न (*) है वहाँ कहीं अधिक और कहीं कम पार्थक्य है। 'शृंगारतिलक' में तीन परिच्छेद हैं। पहले परिच्छेद में ६५, दूसरे में ७० तथा तीसरे में ५७ छंद हैं। इतने लक्षण के छंद हैं। उदाहरणों की संख्या इनमें नहीं हैं। उदाहरण उसमें कम ही दिए गए हैं, केवल १४०। प्रकाश-प्रच्छन्न भेद सभी रसों में होता है। रसिकप्रिया में केवल शृंगार के अंतर्गत इन दोनों भेदों के उदाहरण दिए गए हैं। शृंगारतिलक में इन भेदों के उदाहरण दिए ही नहीं गए हैं। यहाँ प्रकाश-प्रच्छन्न का लक्षण भी नहीं दिया गया है। मुग्धा-मध्या-प्रौढ़ा के जितने विशेषण दिए गए हैं उनका विवेचन वहाँ नहीं है। वहाँ लक्षणों के अनंतर कुछ उदाहरण भी यथास्थान संकलित कर दिए गए हैं तथापि विस्तार नहीं है। रसिकप्रिया में प्रत्येक विषय का लक्षण और उदाहरण देकर पूरा विस्तार किया गया है।

रसिकप्रिया में नायक श्रीकृष्ण माने गए हैं, साथ ही नायिका राधाजी या प्रियाजू हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि सामान्या का विवेचन केशवदास ने परित्यक्त कर दिया। भक्ति के विभिन्न संप्रदायों में से कुछ में राधिका का परकीयाभाव भी मान्य है। इसलिए उसका विचार केशव ने नहीं छोड़ा, फिर भी परकीया का विस्तृत विवेचन करने और उदाहरण देने से वे विरत हो रहे हैं। शृंगार का वर्णन चाहे रसिकप्रिया में बहिरंग भी यथास्थान आया हो, चाहे उसमें शास्त्रीय पद्धति की पूर्णता के लिए सुरतांत-वर्णन भी रखे गए हों, पर सामाजिक मर्यादा का ध्यान रखकर उसमें बहुत से अनभीप्सित वर्णन परित्यक्त कर दिए गए हैं। जिन केशव की शृंगारी प्रवृत्ति की कुत्सा की जाती हैं उन्होंने सामाजिक दृष्टि से शृंगार के अनपेक्षित प्रसंगों का परित्याग किया है। इसकी साखी उनकी रसिकप्रिया भरती है। ऐसे प्रसंग उन्होंने परंपरा में स्वीकृत होते हुए, आधार-ग्रंथ में वर्णित होते हुए छोड़े हैं। इसलिए त्याग प्रयत्नपूर्वक है।

यह भी कहा जाता है कि केशव की प्रवृत्ति दरबारी थी। उन्होंने राज-बिलास का वर्णन करने का विशेष प्रयास किया है। पर रसविवेचन में उन्होंने राजकीय प्रवृत्तियों का सर्वत्र अवलंबन नहीं किया है। शास्त्रविवेजन में जीवन के सभी पक्षों का आकलन किया जाता रहा है। वहाँ संपन्न जीवन के अधिक विवरण बलात्कृत नहीं हैं, विषयापेक्षा से संकलित हैं। केशव ने इस विषय में राजा-रंक को एक ही माना है—

इन ठौरनि ही होत है प्रथम मिलन संसार।
केसव राजा रंक को रचि राखे करतार ॥

शृंगारतिलक में इस प्रकार का कथन नहीं है। तत्त्वतः प्रधान रूप से उस ग्रंथ का सहारा लेते हुए भी केशव ने स्थान-स्थान पर विच्छेद दिखाया है। जैसे, खंडिता का लक्षण उन्होंने हिंदी की परंपरा में गृहीत रखा है। अभिसारिका के भेद वहाँ न होते हुए भी यहाँ संनिविष्ट किए हैं। समस्त नायिकाभेद की संख्या में अंतर किया है। शृंगारतिलक में समस्त संख्या यों मानी गई है—

त्रयोदशविधा स्वीया द्विविधा च परांगना।
एका वेश्या पुनश्चाष्टावस्थाभेदतोऽत्र ताः ॥
पुनश्च तास्त्रिधा सर्वा उत्तमा मध्यमाधमा।
इत्थं शतत्रयं तासामशीतिश्चतुरुत्तरा ॥१।८७।८८

स्वकीया के १३ भेद इस प्रकार होते हैं—मुग्धा १, मध्या धीराधीरादि ३, प्रौढ़ा धीराधीरादि ३। मध्या और प्रौढ़ा के ज्येष्ठा और कनिष्ठा भेद होने से तीन-तीन भेद के छह-छह हो जाते हैं। इस प्रकार सब मिलाकर तेरह भेद हुए। मुग्धा-मध्या-प्रौढ़ा के जो नववधू, आरूढ़यौवना, लब्धायति आदि विशेषण हैं वे भेद में नहीं माने जाते। इन तेरह में परकीया के कन्या-ऊढ़ा दो भेद और वेश्या का एक भेद मिलाने से १६ हुए। इनमें अष्टनायिका के आठ भेदों का गुणन करने से १२८ और उत्तमादि तीन के गुणन से समस्त भेद ३८४ हुए। पर रसिकप्रिया में केवल ३६० ही भेद माने गए हैं—

केसवदास सु तीन बिधि बरनी स्वकिया नारि।
परकीया द्वै भाँति पुनि, आठ आठ अनुहारि ॥
उत्तम मध्यम अधम अरु तीन तीन बिधि जान।
प्रगट तीन सै साठ तिय, केसवदास बखान ॥७।३३-३४

३६० की एक संगति तो यों बैठ सकती है कि स्वकीया ३ × पद्मिनी आदि ४ (= १२ + परकीया २ + सामान्या १ = १५) × स्वाधीनपतिकादि ८ = १२० × उत्तमादि ३ = ३६०। दूसरी संगति शृंगारतिलक के अनुसार यह होगी—मुग्धा १ + मध्या धीराधीरादि ३ + ज्येष्ठा-कनिष्ठा २ + प्रौढ़ा धीराधीरादि ३ + ज्येष्ठा-कनिष्ठा २ + परकीया २=१५ × अष्टनायिका ८=१२० × उत्तमादि ३ = ३६०। दूसरी स्थिति इसलिए भी ग्राह्य हो सकती है कि केशव ने सामान्या का परित्याग कर दिया है। केशव ने कहीं कहीं लिखा है कि मैं यह विचार अपनी मति के अनुसार कर रहा हूँ। इससे स्पष्ट है कि उन्होंने यथास्थान कुछ जोड़ने का और कहीं कुछ घटाने का भी प्रयत्न किया है। ऊपर उन्होंने सामान्या को पृथक् करके विस्तार घटाया है। कहीं विस्तार किया भी

है। जैसे प्रथम मिलनस्थान शृंगारतिलक में जितने हैं उनसे रसिकप्रिया में 'वनविहार' अधिक है। वनमाली श्रीकृष्ण के चरित में वनविहार अत्यंत अपेक्षित था। नूतन संगम 'शृंगारतिलक' में ये हैं—

धात्रीसखीवेश्मनि रात्रिचारे महोत्सवे तीव्रतमे भये च।
निमन्त्रणे व्याधिमिषेण शून्ये गेहे तयोर्नूतनसंगमः स्यात् ॥२।२७

रसिकप्रिया में प्रथम मिलनस्थान ये हैं—

जनी सहेली धाइ घर सूने घर निसिचार।
अति भय उत्सव व्याधि मिस न्यौते सु बनबिहार ॥५।२४

एक ओर 'जनी' अधिक है दूसरी ओर 'बनबिहार'। इससे स्पष्ट है कि केशव ने अनुकथन करते हुए अपनी मनोदृष्टि भी खुली रखी है।

इसमें शृंगारतिलक के उदाहरणों से भी कुछ सहारा कहीं कहीं लिया गया है, उल्था नहीं किया गया है। रामचंद्रचंद्रिका में कुछ स्थल अनूदित हैं, पर रसिकप्रिया में केवल प्रेरणा भर ली गई है। उदाहरण इन्होंने स्वतः निर्मित किए हैं। प्रथम प्रभाव में मंगलाचरण की चर्चा पहले की जा चुकी है। द्वितीय प्रभाव में जिन छंदों में कुछ प्रेरणा दिखाई देती है उनमें से एक यहाँ मिलान के लिए उद्धृत करते हैं। अनुकूल नायक का उदाहरण शृंगार-तिलक में यह है—

अस्माकं सखि वाससी न रुचिरे ग्रैवेयकं नोज्ज्वलं
नो वक्रा गतिरुद्धतं न हसितं नैवास्ति कश्चिन्मदः।
किंत्वन्येऽपि जना वदन्ति सुभगोऽप्यस्याः प्रियो नान्यतो।
दृष्टिं निक्षपतीति विश्वमियता मन्यामहे दुःस्थितम् ॥

'रसिकप्रिया' में 'अन्यच्च' उदाहरण है—

मेरे तो नाहिन चंचल लोचन नाहिन केसव बानी सुधाई।
जानौं न भूषनभेद के भावनि भूलिहू मैं नहिं भौंह चढ़ाई।
भोरेहूँ ना चितयो हरि ओर त्यों घैरु करैं इहि भाँति लुगाई।
रंचक तौ चतुराई न चित्तहि कान्ह भए बस काहे तें माई ॥२।६॥

रसिकप्रिया का निर्माण करते समय केशव आचार्य और कवि दोनों थे। आगे चलकर उनका आचार्य-पक्ष प्रबल होता गया। 'रसिकप्रिया' और 'राम-चंद्रचंद्रिका' को देखकर सहसा कोई विश्वास नहीं कर पाता कि एक ही की दोनों रचनाएँ हैं। संस्कृत-प्रबंधकाव्यों की परंपरा पहले ही पुष्ट हो चुकी थी। संस्कृत में अमरुशतक ऐसे मुक्तककाव्य उतने नहीं हैं। हिंदी में केशवदास ने रसिकप्रिया में अपने कविरूप का जैसा निखार दिखाया वह हिंदी की प्रभूत

परिमाण में अपनी ही काव्यसंपत्ति है। जहाँ कहीं संस्कृत के उदाहरणों का सहारा भी लिया गया है वहाँ भी नूतन भंगिमा या ग्रथन-कौशल है। इसलिए केशव के संबंध में यह सत्य न भूलना चाहिए कि उनमें कवित्व की सरसता मुक्तक के क्षेत्र के लिए पूरी थी। यदि कुछ विशेष प्रकार के विनियोग की प्रतिज्ञा उन्होंने न की होती तो रामचंद्रचंद्रिका में उनका कविरूप उतना आवृत्त न होता जितना शास्त्रस्थितिसंपादन के कारण हो गया है।

विषय-विमर्श

रसिकप्रिया में सोलह प्रभाव हैं। कदाचित् उसके षोडश शृंगार का ध्यान रखकर इतने प्रभाव रखे गए हैं—प्रत्येक शृंगार का एक प्रभाव। शृंगार का प्रभाव ही पड़ता है। प्रत्येक प्रभाव के उपसंहार में आगे के प्रभाव का वर्ण्यविषय सूचित कर दिया गया है।

प्रथम प्रभाव में सबसे पहले गणेश की वंदना है। सामाजिक प्रवाह का ध्यान जैसा मानस में तुलसीदास ने रखा वैसा केशवदास ने अपने साहित्यिक ग्रंथों में। इसी से गणेश की वंदना सर्वप्रथम की। दूसरी वंदना श्रीकृष्ण की है, इन्हें नवरसमय कहने में केशव ने अधिक पांडित्य का प्रदर्शन किया है। हिंदी में शृंगार के आलंबन कृष्ण ही हो गए हैं, रसमात्र के आलंबन वे ही हैं। हिंदी की प्रथा के अनुसार इसके अनंतर आश्रयदाता या राजवंश का वर्णन है। निर्माणहेतु, स्थान और समय का उल्लेख है। फिर नवरस का नामोल्लेख, उनमें शृंगार की श्रेष्ठता और श्रीकृष्ण के नायकत्व का कथन है। फिर शृंगार के संयोग-वियोग भेद और प्रकाश-प्रच्छन्न भेद हैं तथा श्रीकृष्ण और राधिका दोनों के चरित में इनके उदाहरण दिखाए गए हैं।

द्वितीय प्रभाव में नायक-लक्षण कथित है। इसमें अनुकूलादि और उनके प्रकाश-प्रच्छन्न भेद के विस्तार से उदाहरण हैं। इस प्रभाव में 'आठ गाँठ' का वर्णन है। 'धृष्ट' के प्रसंग में वे लिखते हैं—

मनसा बाचा कर्मना बिहँसनि चितवनि लेखि।
चलनि चातुरी आतुरी आठौ गाँठ बिसेखि।।२।१६

धृष्ट नायक सर्वात्मना धृष्ट होता है। उसकी आठ रूपों में अभिव्यक्ति होती है—मन, वचन, कर्म, बिहँसना, चितवन, चाल, चातुर्य, आतुरता। इसका मुहावरे के रूप में भी कवि ने प्रयोग कर दिया है—

हैं हरि आठहू गाँठ अठाए।

सामान्यतया 'आठ गाँठ' का अर्थ 'शरीर की आठ संधियाँ' किया जाता है, पर केशव ने उसका विशेष अर्थ रखा है।

तृतीय प्रभाव में सबसे पहले नायिका-जाति का वर्णन कामसूत्र के आधार पर किया गया है। तत्त्वतः कामसूत्र और साहित्यसूत्र में अंतर है। साहित्य काम के उसी अंश को ग्रहण करता है जिसका संबंध मनोवृत्ति से होता है। इसलिए उसमें काम के उन विवरणों का उल्लेख जो शरीर से संबंध रखनेवाले हैं ग्राह्य नहीं हुए। साहित्य अपेक्षाकृत सूक्ष्म तत्त्व से संबंध रखता है। साहित्य में मन काम का पिता माना जाता है। इसलिए यों कह सकते हैं कि साहित्य बड़ों से अपना संबंध जोड़ता है, बाल-बच्चों से संलाप अपनी गंभीरता के विरुद्ध समझता है। केशव ने इतना अच्छा किया कि नायिकाओं के इन भेदों के साथ पुरुषों के भी भेद नहीं कहे। कदाचित् उनका लक्ष्य यह था कि पद्मिनी स्त्रियों का उल्लेख साहित्य में हुआ करता है इसलिए केवल स्वरूप-बोध के लिए उनका संक्षिप्त विवरण दे देना चाहिए।

जाति-वर्णन के अनंतर मुग्धा का विचार है। नायिकाओं के प्रकारभेद कई दृष्टियों से किए जाते हैं। पद्मिनी आदि जातिभेद हैं। मुग्धा आदि अवस्थाभेद हैं। स्वकीया-परकीया आदि धर्मानुसार प्रकार हैं। मुग्धा के जो विशेषण नववधू आदि कहे गए हैं वे उसके प्रकार या भेद नहीं हैं। नायक के दक्ष आदि विशेषणों की भाँति ये विशेषण हैं। इसमें मुग्धा के सुख का वर्णन भी इन्होंने किया है। वह किसी की शिक्षा से वांछित सुखात्मक व्यवहार नहीं करती। उसके साथ छल-बल अनुचित है। उससे सुख-शोभा को क्षति पहुँचती है (देखिए ३।२८)। इसमें मध्या और प्रौढ़ा के विशेषण या गुण मुग्धा की ही भाँति विस्तार से कथित हैं। पर बहिर्रति और अंतररति के उल्लेख काम-शास्त्र के ग्रंथों से ही उठाकर रखे गए हैं। मध्या में सुरतांत-वर्णन साहित्य में परंपरामुक्त होने के कारण कदाचित् रति के स्वरूपबोध के लिए आचार्यवर ने रख दिया है, जो साहित्य के सूक्ष्म स्वरूप के विरुद्ध है। इसी के अंतर्गत षोडश शृंगार भी कथित हैं, जो पारंपरिक हैं।

चतुर्थ प्रभाव में 'दर्शन' का विचार है। इस संबंध में ध्यान देने योग्य यह है कि हिंदी में श्रवणदर्शन भी चल पड़ा, जब कि वह दर्शन से संबद्ध नहीं है। शृंगारतिलक में दोनों को पृथक् ही कहा गया है—

दर्शनाच्छ्रवणाद्वापि कामार्तौ भवतो यथा।
साक्षाच्चित्रे तथा स्वप्ने तस्य स्याद्दर्शनं त्रिधा।
देशे काले च भंग्यां च श्रवणं चास्य तद्यथा॥ १।५०–५१

रुद्रट ने 'इंद्रजाल' * को भी 'वा' के साथ जोड़ा है—

*** साहित्यदर्पण में यह गृहीत हुआ है।**

साक्षाच्चित्रे स्वप्ने स्याद्दर्शनमेवमिन्द्रजाले-वा ।
देशे काले भंग्यां साधु तदाकर्णनं च स्यात् ।। १२।३१

उज्ज्वलनीलमणि में भी दर्शन और श्रवण पृथक् हैं—

साक्षात्कृष्णस्य चित्रे च स्यात्स्वप्नादौ च दर्शनम् ।
वन्दिदूतीसखीवक्त्राद् गीतादेश्च श्रुतिर्भवेत् ।

हिंदी में 'श्रवण-दर्शन' करके दर्शन के ही चार भेद कर दिए गए हैं। यहाँ 'दर्शन' शब्द व्यापक कर दिया गया। श्रवण द्वारा प्रियगुणादि का कीर्तन सुनने पर भी उसके रूप का आनयन होता है। इसी से 'श्रवण-दर्शन' का ग्रहण किया गया है।

पंचम प्रभाव में दंपति-चेष्टा का वर्णन है। जैसा कहा जा चुका है इन्होंने अपेक्षित लक्षणादि का नियोजन और साथ ही वांछित विस्तार करने का पूरा प्रयास किया है। प्रेम की अभिव्यक्ति के उपाय का नाम चेष्टा है। प्रिय के अन्यत्र देखने पर उसकी ओर देखना, उसके देखने पर अन्यत्र देखना आदि में केशव ने विस्तार किया—

कबहूँ श्रुतिकंडू करै आरस सों ऐंडाइ ।
केसवदास बिलास सों बारबार जमुहाइ ।। ५।६

यह उद्भावना केशव की नहीं है, पारंपरिक है। 'शृंगारतिलक' में नहीं है। केशव ने अवधानतापूर्वक आकलन किया है। ठीक इसी प्रकार स्वयं दूतत्व का प्रसंग वहाँ न होने पर भी नियोजित किया गया है (देखिए ५।१३) इस प्रभाव में इन्होंने स्पष्ट घोषणा कर दी है कि वेश्या का वर्णन क्यों नहीं किया गया—

और जु तरुनी तीसरी क्यों बरनौं यहि ठौर ।
रस में बिरस न बरनियै कहत रसिकसिरमौर ।। ५।३६

शास्त्रीय दृष्टि से परकीया और सामान्या में रसाभास मानते हैं। पर जैसा पहले कह आए हैं, परकीयाभाव भक्तिप्रवाह में साधना की दृष्टि से ग्राह्य हो गया था। इसलिए उसका तो कुछ विवेचन इन्होंने कर दिया, पर सामान्या को 'रसाभास' भी नहीं विरस (रसहीन) कहकर परित्यक्त कर दिया।

षष्ठ प्रभाव में 'भाव' का विचार है। 'शृंगारतिलक' में यह विषय नहीं वर्णित है। भाव का लक्षण इन्होंने यों किया है—

आनन लोचन बचन मग प्रगटत मन को बात ।
ताही सों सब कहत हैं भाव कबिन के तात ।।६।१

इसमें मन की बात अर्थात् मनोविकार को भाव कहा गया है। पर इस भाव के पाँच प्रकार यों कहे गए हैं—

भाव सु पंच प्रकार के सुनि बिभाव अनुभाव।
थाई सात्विक कहत हैं व्यभिचारी कबिराव ॥६।२

विभाव और अनुभाव को भी भाव कहना शास्त्रीय नहीं है। स्थायी भाव, व्यभिचारी और सात्त्विक भाव को तो रसतरंगिणीकार 'भाव' कहते है—

रसानुकूलो विकारो भावो विकारोऽन्यथाभाव: । विकारश्च द्विविध आन्तर शारीरश्चान्तरोऽपि द्विविध: स्थायी भावो व्यभिचारी भावश्च । शारीरास्तु सात्त्विकभावादय: ।

रस के अनुकूल विकार को भाव कहते हैं। विकार का अर्थ है परिवर्तन (अन्यथाभाव)। यह परिवर्तन दो प्रकार का होता है—अंत:करण का और शरीर का। आंतरिक परिवर्तन दो प्रकार का होता है—स्थायी भाव और व्यभिचारी भाव (अस्थायी भाव)। शारीरिक परिवर्तन सात्त्विकभावादि होते हैं। यह नहीं समझना चाहिए कि देहविकार के लिए 'भाव' पद का व्यवहार गौण है। भेदकता है अन्य भावों को अपने शासन में रखने की शक्ति की। मनोविकार अन्य भावों को अपने शासन में रख सकता है, देहविकार नहीं। स्थायी भाव और व्यभिचारी भाव में इतना ही अंतर है कि स्थायी भाव चरम समय पर्यंत स्थिर रहता है इसी से स्थायी कहलाता है। दूसरा अस्थिर होता है। इस प्रकार स्थायी भाव मनोविकार में प्रधान होता है। प्रधान भाव होने के कारण यह सामाजिक के हृदय में उद्‌बुद्ध होकर रस-चर्वणा करता है व्यभिचारी या संचारी ऐसा नहीं कर पाता।

पर 'विभाव' भाव नहीं है। जो भाव को विशेषतया उत्पादित करते हैं वे विभाव कहलाते हैं। जो रसों को अनुभावित करते हैं, अनुभव में लाते हैं, वे अनुभाव कहलाते हैं। विभाव भाव के कारण होते हैं और अनुभाव उसके कार्य। कदाचित् किसी के कारण और कार्य में भी उसका अंश होता है ऐसा मानकर उन्हें भी भाव ही कह दिया गया है। विभाव का लक्षण करते हुए केशव उन्हें रस-भाव का कारण कहते ही हैं—

जिनतें जगत अनेक रस प्रगट होत अनयास।
तिनसौं बिमति बिभाव कहि, बरनत केसवदास ॥६।३

विभाव के दो भेद यथाशास्त्र ही हैं—आलंबन और उद्दीपन। इनमें आलंबन का लक्षण यह है—

जिन्हें अतन अवलंबई ते आबलंन जानि।
जिनतें दीपति होति है ते उद्दीप बखानि ॥६।५

यहाँ 'अतन' शब्द विचारणीय है। यदि आलंबन का लक्षण सभी रसों

के अनुकूल माना जाए तो इसका अर्थ 'काम' करने में बाधा है। तब इसका अर्थ 'अशरीरी रस-भाव' करना चाहिए। पर केशव ने इसके अनंतर आलंबन-स्थान और उद्दीपन का जो वर्णन किया है वहाँ केवल शृंगाररस के ही आलंबन-उद्दीपन कथित हैं। इसलिए जान पड़ता है कि इन्होंने 'काम' अर्थ में ही इसका व्यवहार किया है। आलंबनस्थान-वर्णन भी ध्यान देने योग्य है—

दंपति जोबन रूप जाति लच्छनजुत सखिजन।
कोकिल कलित बसंत फूल फल दल अति उपबन।
जलचर जलजुत अमल कमल कमला कमलाकर।
चातक मोर सुसब्द तड़ित धनु अंबुद अंबर।
सुभ सेज दीप सौगंध गृह पान गान परिधान मनि।
नव नृत्यभेव बीनादि रव आलंबन केसव बरनि ।।

इसमें 'दंपति' तो अवश्य शृंगाररस के आलंबन हैं, पर सखीजन, कोकिलादि की गणना उद्दीपन में ही की जाती है। उद्दीपन दो प्रकार के होते हैं—संबद्ध और तटस्थ। आलंबन से संबद्ध उद्दीपन के अंतर्गत कुछ तो शारीरिक चेष्टाएँ होती हैं, कुछ शरीर की साजसज्जा, कुछ शय्यादि उपकरण, कुछ सहायक सखी आदि। तटस्थ के अंतर्गत प्राकृतिक स्थिति होती है। इनमें से केशव ने शारीरिक चेष्टा को ही उद्दीपन कहा है—

अवलोकन आलाप परिरंभन नख-रद-दान।
चुंबनादि उद्दीप हैं मर्दन परस प्रवान ।।६।७

पर अन्य सभी उद्दीपनों को इन्होंने आलंबन ही कहा है। इसका कारण कदाचित् यह है कि प्रकृत आलंबन के अतिरिक्त स्थितिभेद से ये भी आलंबन हो सकते हैं। इन्हें उद्दीपन कह देने से इनकी गणना फिर आलंबन के अंतर्गत न हो सकती। पर ऐसा कर देने से इनका उद्दीपन होना स्पष्ट लक्षित नहीं होता। हिंदी में प्राकृतिक दृश्य आलंबन होते हैं यह केशवदास ने ही कहा है। यह कथन कम महत्त्व का नहीं है।

अनुभाव का लक्षण यह है—

आलंबन उद्दीप के जो अनुकरन बखान।
ते कहिये अनुभाव सब दंपति प्रीति-विधान ।।६।८

इसमें 'अनुकरण' शब्द 'अनुकृति' नहीं 'अनुगमन' अर्थ में प्रयुक्त जान पड़ता है। अनुभाव शब्द के दो अर्थ किए जाते हैं—जो भावादि का अनुभव कराते हों अथवा जो भाव के पीछे प्रकट होते हों। यहाँ दूसरा अर्थ लिया गया है।

व्यभिचारी भाव के नामकथन में केशव ने परंपरागृहीत तैंतीस संचारियों के प्रसंग में दो शब्द ऐसे रखे हैं जिनसे भ्रांति हो सकती है। एक शब्द 'बिबाद' है और दूसरा 'आधि'।—

१—गर्व हर्ष आवेग पुनि निंदा नींद-बिबाद।

२—उन्माद मरन अवहित्थ है व्यभिचारी जुतआधि॥

यदि 'बिबाद' को कोई नया संचारी माना जाए तो 'तर्क' और उसमें कोई भेद नहीं होगा। इसलिए 'नींद-बिबाद' समस्तपद जान पड़ता है। 'नींद-बिबाद' का 'निद्रा का बखेड़ा, निद्रा की बात' अर्थ है। ध्यान देने योग्य है कि दोनों शब्द 'तुकांत' में आए हैं। ये तुकांत के अनुरोध से प्रयुक्त हैं, इनका कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। जैसे 'बिबाद' को 'निद्रा के साथ जोड़ लेने से स्थिति ठीक हो जाती है वैसे ही 'जुत आधि' को चाहें तो 'अवहित्थ' के साथ जोड़ दे सकते हैं। अन्यथा उस दोहे के प्रथम दल में 'ब्याधि' है उसी से इसे जोड़ लें—'आधि व्याधि' को एक मानें। यह 'जुत' शब्द 'आधि' को किसी से जोड़ने के लिए ही प्रयुक्त है। उसकी स्वतंत्र सत्ता के द्योतन के लिए प्रयुक्त नहीं जान पड़ता। शारीरिक क्लेश को व्याधि और मानसिक क्लेश को आधि कहते हैं। बाह्य और आभ्यंतर भेद से एक ही क्लेश की द्विधा स्थिति हो जाती है।

हाव का लक्षण इन्होंने यह किया है—

प्रेम राधिका कृष्न को है तातें सिंगार।

ताके भावप्रभाव तें उपजत हावबिचार॥६।१५

यहाँ 'भावप्रभाव' शब्द विचारणीय है। राधाकृष्ण के प्रेम से शृंगार होता है, उसके भाव के प्रभाव से हाव होता है। 'भाव' का अर्थ या तो 'स्थिति' मानें अथवा 'मनोविकार' मानें। नाट्य शास्त्र में 'हाव' दूसरे ढंग से माना गया है। हिंदी में आलंबनगत 'अलंकार' को हाव कहते हैं। नाट्यशास्त्र में कहा गया है कि सामान्याभिनय तीन प्रकार से होता है—वाणी से, अंग से और सत्त्व से। सत्त्व देहात्मक होता है। सत्त्व से भाव और भाव से हाव, हाव से हेला होती है—

देहात्मकं भवेत् सत्त्वं सत्त्वात् भावः समुत्थितः।

भावात् समुत्थितो हावो हावाद्धेला समुत्थिता॥२४।७

वहीं नाट्यरसाश्रय अलंकारों का उल्लेख भी है। मुख और शरीर में यौवन के समय होनेवाले स्त्रियों के शारीरिक विकार या चेष्टा का नाम अलंकार है—

अलंकारास्तु नाट्यज्ञैर्ज्ञेया नाट्यरसाश्रयाः।

यौवने ह्यधिकाः स्त्रीणां विकारा वक्त्रगात्रजाः॥२४।४

ये तीन प्रकार के हैं—अंगज, स्वाभाविक और अयत्नज। अंगज ३, स्वाभाविक १०, अयत्नज ७। भाव, हाव और हेला ये तीन अंगज होते हैं। यहाँ 'भाव' का अर्थ है कामविकार। अल्पसंभोगेच्छाप्रकाशक भ्रू नेत्रादि विकार को हाव कहते हैं। जब विकार बहुत स्फुट रूप में प्रकट हो तो उसे हेला कहते हैं। ये अंगज कहलाते हैं, अंग या शरीर से प्रकट होने के कारण। स्वाभाविक दस होते हैं—लीला, विलास, विच्छित्ति, विभ्रम, किलकिंचित, मोट्टायित, कुट्टमित, बिब्बोक, ललित, विहृत। ये स्वभावसिद्ध होते हुए भी कृतिसाध्य होते हैं, यत्नज होते हैं। स्त्रियों में स्वाभाविक सात्त्विक अलंकार इनके अतिरिक्त आठ और हो सकते हैं—मद, तपन, मौग्ध्य, विक्षेप, कुतूहल, हसित, चकित तथा केलि।* अयत्नज सात होते हैं—शोभा, कांति, दीप्ति, माधुर्य, प्रगल्भता, औदार्य और धैर्य। अंगज और अयत्नज ये दस पुरुषों में भी हो सकते हैं। किंतु विशेष शोभाकारक होते हैं नायिकाओं में ही।

केशव ने उपर्युक्त दस स्वाभाविक अलंकारों के अतिरिक्त 'हाव' शीर्षक के अंतर्गत 'हेला', 'मद' और 'बोधक' को ग्रहण किया है। इस प्रकार इन्होंने कुल १३ हाव माने हैं। 'हावों' की ऐसी कल्पना 'रसतरंगिणी' से चली है। उसमें उक्त दस स्वभावज अलंकारों को 'हाव' नाम दिया गया है। हिंदी में 'हेला' को भी उसी में मिला लिया गया है। पूर्वोक्त अतिरिक्त आठ स्वभावज अलंकारों में से हिंदीवाले कुछ को या सभी को हाव के अंतर्गत कर के कहते हैं। बोधक हाव का वर्णन सबसे प्रथम हिंदी में इन्होंने ही किया है—

गूढ़ भाव को बोध जहँ केसव औरहि होइ।
तासों बोधक हाव सब कहत सयाने लोइ ॥६।५४

कोई कोई इसे 'बोध' कहते हैं। भिखारीदास ने रससारांश में 'बोधक' को 'क्रियाचातुर्य' कहा है। पद्माकर जगद्विनोद में उसका लक्षण यों देते हैं—

ठानि क्रिया कछु तिय पुरुष बोधित करै जु भाव।
रसग्रंथन में कहत हैं तासों बोधक हाव ॥ ४६६ ॥

'मौग्ध्य' के प्रतिपक्ष में 'चातुर्य'-सूचक 'बोधक' की कल्पना की गई है। 'दास' ने शृंगारनिर्णय में भरतकथित दस स्वाभाविक अलंकारों में ही अन्य अतिरिक्त स्वभावज अलंकारों को अंतर्भुक्त करने का प्रयास किया है।

इस प्रसंग में दूसरी विचारणीय स्थिति यह है कि स्वभावज अलंकारों को इन्होंने श्रीकृष्ण में भी माना है। इस संबंध में रसतरंगिणीकार ने स्थिति स्पष्ट कर दी है। नारियों में ये स्वाभाविक होते हैं, परपुरुषों में औपधिक—

---

* देखिए साहित्यदर्पण।

नारीणां शृंगारचेष्टा हावः । स च स्वभावजो नारीणां । ननु बिब्बोक-विलासविच्छित्तिविभ्रमाः पुरषाणामपि संभवन्तीति चेत्सत्यम् । तेषां त्वौपाधिकाः स्वभावजाः स्त्रीणामेव । नन्वेवं यदि तासां सदैव ते कथं न भवन्तीति चेत्सत्यम् । उद्दीपकान्वयव्यतिरेकाभ्यां नायिकानां हावाविर्भावतिरोभावाविति ।

रसतरंगिणी में लीला विलास विच्छित्ति विभ्रम ललित को शारीरिक, मोट्टायित कुट्टमित बिब्बोक विहृत को आंतरिक और किलकिंचित को उभय-संकीर्ण कहा है । साथ ही इन सबके विभाव और अनुभाव का भी उल्लेख विस्तार से किया है । जैसे लीला के संबंध में वे लिखते हैं—

प्रियभूषणवचनाद्यनुकृतिर्लीला । तत्र विभावः सखीकौतुककलापः । अनुभावः प्रियपरिहासः ।

भोजराज के शृंगारप्रकाश में इसका अत्यधिक विस्तार है । उन्होंने अनुभाव के अंतर्गत ही इन्हें रखा है । रूपगोस्वामी ने भी अनुभाव के भीतर ही इन्हें रखा है । भोजराज ने अनुभाव का लक्षण ही यों किया है—

इदानीमनुभावं व्याख्यास्यामः । तत्र विभावैः प्रबुद्धसंस्कारस्य नायकादेः ये स्मृतीच्छाद्वेषप्रयत्नजन्मानः मनो वाग्बुद्धिशरीरारम्भाःतेऽनुभूयमानत्वाद्रत्यादीनामनन्तरभवनाच्च अनुभावाः ।

इस प्रकार मन, वाणी, बुद्धि और शरीर के आरंभ अनुभाव हैं । 'मन आरंभ' में भाव, हाव, हेला, शोभा, कांति, उद्दीप्ति, माधुर्य, धैर्य, प्रागल्भ्य, औदार्य, स्थैर्य और गांभीर्य हैं । 'वागारंभ' में हैं आलाप, प्रलाप, विलाप, अनुलाप, सल्लाप, अपलाप, संदेश, अतिदेश, निर्देश, उपदेश, अपदेश और व्यपदेश ।* 'बुद्धयारंभ' भी बारह हैं—पांचाली, गौड़ी, वैदर्भी, लाटीया रीतियाँ, भारती, आरभटी, कैशिकी, सात्त्विकी वृत्तियाँ और पौरस्त्या, उड्र-मागधी, दाक्षिणात्या और आवंत्या । 'शरीरारंभ' में लीला, विलास, विच्छित्ति, विभ्रम, किलकिंचित, मोट्टायित, कुट्टमित, बिब्बोक, ललित, विहृत, क्रीड़ित और केलि का ग्रहण है ।

उज्ज्वलनीलमणि में 'विहृत' के स्थान पर 'विकृत' नाम है—

ह्रीमानेर्ष्यादिभिर्यत्र नोच्यते स्वविवक्षितम् ।
व्यज्यते चेष्टयैवेदं विकृतं तद्विदुर्बुधाः ॥

भरत के नाटयशास्त्र में भी 'विकृत' नाम मिलता है । हिंदी के कुछ शृंगारयुगीन रीतिग्रंथों में भी यही नाम रखा गया है ।

नवीन कल्पना के लिए केशवदास ने क्षमार्थना भी की है—

---

* मिलाइए नाटयशास्त्र में अभिनयात्मक अलंकारों से । २४।५२–५७

राधा राधारमन के कहे जथामति ह्राव ।

ढिठई केसवदास की छमियो कबि कबिराव ॥ ६।५७

सप्तम प्रभाव में 'खंडिता' का लक्षण भिन्न है। 'शृंगारतिलक' का लक्षण यह है—

कुतश्चिन्नागतो यस्या उचिते वासके प्रियः ।

तदनागमसंतप्ता खण्डिता सा मता यथा ॥१।७६

'खंडिता' का अर्थ होता है 'परिस्थितिवश प्रिय पर से जिसके अपनत्व का अभिमान खंडित हो'। यहाँ प्रिय के न आने से जिसको संताप हो वह खंडिता कही गई है। हिंदी में खंडिता का जो लक्षण चला वह रसमंजरी के अनुगमन पर—

अन्योपभोगचिह्नित प्रातरागच्छति पतिर्यस्याः सा खंडिता ।

केशव का लक्षण यों है—

आवन कहि आवै नहीं आवै प्रीतम प्रात ।

जाके घर सो खंडिता कहै जु बहुबिधि बात ॥ ७।१६

यहाँ केशव ने 'आने की कहकर न आए' लिखकर एक ओर स्थिति स्पष्ट की तो दूसरी ओर 'अन्योपभोगचिह्नित' को छोड़ दिया। उसे 'कहै जु बहुविधि बात' के भीतर रखा है। इसका कारण उनके द्वारा गृहीत प्रच्छन्न-प्रकाश' भेद है। उन्होंने प्रच्छन्न में तो 'उपभोगचिह्नो' का उल्लेख नहीं किया, पर 'प्रकाश' में उनका संकेत किया है। (देखिए ७।१८)।

अभिसारिका के इन्होंने तीन विशेषण दिए हैं—

हित तें कै मद मदन तें पिय पै मिलै जु जाइ ।

सो कहियै अभिसारिका बरनी त्रिबिध बनाइ ॥ ७।२५

प्रेम, मद (गर्व) और मदन (काम) से प्रेरित होकर जो प्रिय के पास जाए। इसमें के दो विशेषण तो नाट्यशास्त्र में मिल जाते हैं—मद और मदन। प्रेम नूतन कल्पना है—

हित्वा लज्जां समाकृष्टा मदेन मदनेन या।

अभिसारयते कान्तं सा भवेदभिसारिका ॥ २४।२१२

अष्टम प्रभाव में जड़ता का लक्षण विचारणीय है। 'शृंगारतिलक' में उसका लक्षण यह है—

अकाण्डे यत्र हुंकारो दृष्टिः स्तब्धा गता स्मृतिः ।

श्वासाः समाधिकाः कार्श्यं जडतेयं मता यथा ॥ २।१५

पर केशव ने यह लक्षण दिया है—

भूलि जाइ सुधिबुधि जहाँ सुखदुख होइ समान ।
तासों जड़ता कहत हैंकेसवदास सुजान ।। ८ ४८

इसमें 'गता स्मृतिः' का 'भूलि जाइ सुधिबुधि' ठीक है। पर 'सुखदुख होइ समान' यह कदाचित् 'इष्टानिष्टापरिज्ञान' से संबद्ध है। क्योंकि सुख अनुकूल-वेदनीय होता हैं और दुःख प्रतिकूलवेदनीय। उज्ज्वलनीलमणि में 'जडिमा' का लक्षण यह है—

इष्टानिष्टापरिज्ञानं यत्र प्रश्नेष्वनुत्तरम् ।
दर्शनश्रवणाभावो जडिमा सोऽभिधीयते ।
अत्राकाण्डेऽपि हुंकारस्तम्भश्वासभ्रमादयः ।।

इस प्रभाव के अंत में केशव ने अनुभव की मार्मिक स्थिति का उल्लेख किया है। इनके अनुसार आदर, लोभ तथा अतिसंग से साधुओं के चित्त भी चंचल हो जाते हैं (देखिए ८।५६)।

नवम प्रभाव में केशव ने मान के प्रसग में नायक के मान का भी विवेचन किया है। यह अंश शृंगारतिलक में नहीं है। साहित्यदर्पण में स्थिति स्पष्ट है—

मानः कोपः स तु द्वेधा प्रणयेर्ष्यासमुद्भवः ।
द्वयोः प्रणयमानः स्यात्प्रमोदे सुमहत्यपि ।।३।१९८

उज्ज्वलनीलमणि में कहा गया है कि

स्नेहं विना भयं न स्यान्नेर्ष्या च प्रणयं विना ।
तस्मान्मानप्रकारोऽयं द्वयोः प्रेमप्रकाशकः ।।

दशम प्रभाव में मानापनोदन के साधन बताए गए हैं। इनमें एक दान भी है। केशव ने इसके प्रसंग में मार्मिक विचार की चर्चा की है। 'दान' तो वेश्या को भी दिया जाता है। फिर अन्यों से भेद किस प्रकार किया जायगा। उनका निर्णय है—

जहाँ लोभ तें दान लै छाँडै मानिनि मान ।
बारबधू के लच्छनहिं पावै सबहिं प्रमान ।। १०।७

इसका अर्थ यह है कि जहाँ लोभ न हो वहीं दान-उपाय ठीक होगा। इसी प्रकार 'प्रणति' में अपराध या काम का हेतु होना आवश्यक है। बिना इसके प्रणति रस के लिए हानिकारक होती है (देखिए १०।१८)। मान छूटने की कुछ सहज या सरल स्थितियाँ भी होती हैं। इनका उल्लेख निम्नलिखित दोहे में है—

देस काल बुधि बचन तें कल धुनि कोमल गान ।
सोभा सुभ सौगंध तें सुख ही छूटत मान ।।१०।२६

उज्ज्वलनीलमणि में भी देशकालादि का उल्लेख है—

देशकालबलेनैव मुरलीश्रवणेन च ।
विनाप्युपायं मानोऽसौ लीयते व्रजसुभ्रुवाम् ॥

एकादश प्रभाव में करुणविरह का निरूपण केशव ने शृंगारतिलक से भिन्न किया है । शृंगारतिलक में वही लक्षण हैं जो शास्त्रीय ग्रंथों में अन्यत्र मिलता है । इसका प्रसिद्ध उदाहरण कादंबरी में महाश्वेता का विरह है । शृंगारतिलक में लक्षण यों हैं—

यत्रैकस्मिन्विपन्नेऽन्यो मृतकल्पोऽपि तद्गतम् ।
नायकः प्रलपेत्प्रेम्णा करुणोऽसौ स्मृतो यथा ॥२।६०

पर केशव यों लिखते हैं—

छूटि जात केसव जहाँ सुख के सबै उपाय ।
करुनारस उपजत तहाँ आपुन तें अकुलाय ॥११।१

केशव इसके वर्णन के पक्ष में भी नहीं हैं । उनका कहना है—

सुख में दुख क्यों बरनियै यह बरनत व्यवहार ।
तदपि प्रसंगहि पाइ कछु बरनत मति-अनुसार ॥११।२

इसका वर्णन रूप गोस्वामी ने इसलिए छोड़ दिया है कि वे इसे भी एक प्रकार का प्रवासविरह ही मानते हैं—

विप्रलम्भपरं कैचित्करुणाभिधमूचिरे ।
स प्रवासविशेषत्वान्नैवात्र पृथगीरितः ॥

कालियदह में प्रवेश करना आदि को वे करुणविप्रलंभ के अंतर्गत मानते हैं । केशव ने 'मति-अनुसार' कुछ नया विचार किया है । यह अवश्य विचारणीय है कि कालियदह-प्रवेश आदि में करुणरस माना जाए या करुणविप्रलंभ । शास्त्रीय व्यवस्था इतनी ही है कि जब तक प्रियमिलन की आशा बनी है तब तक विप्रलंभ है, जहाँ नैराश्य आया वह करुण हो जाएगा । केशव ने संदिग्ध स्थिति का परित्याग कर करुणविरह का वर्णन इस आधार पर किया है कि यदि नायिका को विरहावस्था में कोई बाधक स्थिति क्लेशकारिणी उत्पन्न हो जाए तो करुणविप्रलंभ मानना चाहिए । यदि प्रिय के पास सखी जाए और उससे मिलकर वहीं रह जाए और विरहिणी को उसकी ऐसी करतूत का पता चल जाए तो वह करुणविरह है (देखिए ११।३) । प्रच्छन्न करुणविरह का उदाहरण तो ठीक बन गया है, पर प्रकाश करुणविरह में 'प्रवासविरह' ही है । जब विरह में कोई बाधक स्थिति भी आलंबन हो जाती है तब करुण-विरह होता है । कोई बाधक स्थिति उद्दीपन रहती है तो वहाँ 'विषाद' संचारी ही भर है । इसी से इनका 'प्रकाश करुणविरह' ठीक उदाहरण नहीं जान पड़ता (देखिए ११।४) ।

विरह के अंतर्गत इन्होंने 'भयविभ्रम' का वर्णन भी किया है, जिसका कोई लक्षण नहीं दिया है। स्वरूप से स्थिति यह जान पड़ती है कि जहाँ वियोग में संयोग की सुखद वस्तुएँ दुःखदायिनी हो जाती हैं उसके वर्णन को ये 'भयविभ्रम' कहना चाहते हैं। सरदार ने ऐसे दुःखदों की खतियौनी सात खातों में की है—

नींद सेज सुमनो सभा संगित सालि सुगंध।
सात बियोगिन कों करत महा बिरह तें अंध॥

केशव ने केवल 'निद्रा' के उदाहरण दिए हैं। इसके अतिरिक्त 'पत्री' के उदाहरण भी इसी के साथ दिए गए हैं।

द्वादश प्रभाव में सखी-वर्णन शृंगारतिलक के अनुसार ही है। इसमें कुछ नाम केशव ने और बढ़ाए हैं। इन्हें सखी कहा जाए या दूती। 'दास' दूती के अंतर्गत ही इनमें से बहुतों को रखते हैं। सखी और दूती में स्वरूपभेद उनके स्वातंत्र्य और पारतंत्र्य के ही आधार पर हैं। सखी में फिर भी कुछ स्वाधीनता होती है, उसकी प्रतिष्ठा विशेष होती है। हिंदी में परंपरया सखी और दूती के कर्मों का कुछ विभाजन भी कर दिया गया है। विरहनिवेदन दूती का कार्य हो गया है।

त्रयोदश प्रभाव में सखी के जो कर्म बताए गए हैं उनमें वह क्रुद्ध भी हो सकती हैं (देखिए १३।१)। पर दूती की क्या मजाल कि वह रोष कर सके। ऐसे ही संदेश आदि भी दूती के कर्म हैं। सखी की स्थिति कुछ अधिक परिष्कृत है। उसका सुसंस्कृत होना आवश्यक है। इसलिए जिनको सखी कहा गया है वे सब सखी के योग्य नहीं जान पड़तीं।

चतुर्दश प्रभाव में अन्य रसों का विवेचन है। हास्यरस के परिहास भेद की चर्चा पहले की जा चुकी है। रसों के वर्णन का उल्लेख भी केशव ने किया है जो शृंगारतिलक में नहीं है। देवता का उल्लेख फिर भी नहीं है। हास्यरस में वर्ण का भी उल्लेख छूट गया है। करुणरस का लक्षण शृंगार तिलक से भिन्न है। वहाँ लक्षण है—

'शोकात्मा करुणो ज्ञेयः प्रियमृत्युधनक्षयात्'

यहाँ है—

'प्रिय के बिप्रिय करन तें आनि करुनरस होत'

केशव ने अन्य रसों को भी राधाकृष्ण से ही संबद्ध रखना चाहा है। इसी से इस प्रकार का लक्षण उन्हें करना पड़ा। ऐसा उदाहरणों से स्पष्ट है। अन्य रसों की भी यही स्थिति है। इसका परिणाम यह हुआ है कि रसों का स्वरूप पूरा स्पष्ट नहीं हो सका है। उनके स्थायी भाव शृंगार के संचारी

होकर आए हैं। समरस या शांतरस के उदाहरणों में केवल तीसरा (१४।४०) ठीक है।

पंचदश प्रभाव में वृत्तियों का वर्णन है। इसमें सात्वती या सात्वकी वृत्ति का लक्षण शृंगारतिलक से कुछ भिन्न है। इसमें रौद्र के स्थान पर शृंगार है। वैसा ही पाठ प्राचीन पोथियों में है। अन्यत्र 'अद्भुत बीर सिंगार रस' के स्थान पर 'अद्भुत रुद्र रु बीर रस' पाठ भी मिलता है जो उससे ठीक मिल जाता है।

अंतिम **षोडश प्रभाव** में 'अनरस-वर्णन' है। इसमें 'नीरस लक्षण' कुछ भिन्न रखा गया है। शृंगारतिलक में 'नीरस' का लक्षण (काव्यमाला में मुद्रित संस्करण में) दो बार कथित है। पहले के संबंध में टिप्पणी है कि कुछ पुस्तकों में यह नहीं मिलता। केशव ने दूसरे (३।५१) से कुछ मिलता-जुलता लक्षण (१६।४) किया है। अंत में नित्य रसविरोध का विचार किया है (१६।१२) और रसोत्पत्ति भी (१६।१३) नाटयशास्त्र के अनुसार दे दी है।

भाषा

केशवदास की भाषा बुंदेली समझी जाती है, यह भ्रम है। उन्होंने अपने ग्रंथ साहित्य को सामान्य काव्यभाषा व्रजी में लिखे है। जो कवि जिस प्रदेश का होता है उस प्रदेश के कुछ शब्द और प्रयोग आ ही जाते हैं। टकसाली व्रजभाषा लिखना उन्हीं के लिए संभव है जो व्रज प्रांत के हैं। व्रजी काव्यभाषा के रूप में संस्कृत की भाँति स्वतंत्र रूप प्राप्त कर चुकी थी। इस-लिए जो लोक व्रजप्रदेश के होते थे वे ही उसमें व्रज के प्रांतीय शब्दों का व्यवहार किया करते थे। इसलिए उनकी व्रजभाषा कहीं कहीं और लोगों के लिए दुरूह हो जाती थी। कल की बात है कि सत्यनारायण कविरत्न ने जिस व्रजी का व्यवहार किया उसमें व्रजमंडल के बहुतेरे शब्दों का प्रयोग कर दिया। घनआनंद, ग्वाल व्रजमंडल के कुछ ऐसे शब्दों का व्यवहार करते हैं जो दूसरों के द्वारा प्रयुक्त नहीं होते। ठीक उसी प्रकार अवध के कवि अवधी शब्दों और प्रयोगों का व्यवहार करते हैं, मिथिला के मैथिली के शब्दों का, पंजाब के पंजाबी शब्दों का, राजस्थान के राजस्थानी शब्दों का, गुजरात के गुजराती शब्दों का आदि आदि। यही स्थिति केशवदास की भी थी। उन्होंने व्रजी में बुंदेली शब्दों और प्रयोगों का व्यवहार आवश्यकता पड़ने पर निस्संकोच और प्रकाम किया है। इसलिए उनकी भापा बुंदेलीरंजित साहित्यिक व्रजी है। बुंदेली भाषाविज्ञान की दृष्टि से व्रजी के ही अंतर्गत आती है। इसीलिए बुंदेली के कुछ प्रयोग दूर तक फैल गए। भविष्यत्कालबोधक 'पालबी', 'करबी'

आदि प्रयोग दूर तक फैले, यहाँ तक कि भिखारीदास की कृति में भी ये प्रयोग पाए जाते हैं। केशवदास से पहले होनेवाले तुलसीदास ने भी ऐसे प्रयोग किए हैं। हो सकता है कि तुलसीदास बुंदेलखंड में भी कभी रहे हों, जिसके कारण वैसे प्रयोग उनकी कृति में आ गए हों। उनके गुरुदेव नरहरयानंद नर्मदातट पर कुछ दिनों के लिए गए थे। उनसे भेंट करने तुलसीदास भी उधर गए थे और यमुनातट पर उन्होंने यमुना से विवाह कर लिया था। नर्मदा तक पहुँचने में बुंदेलखंड बीच में पड़ता ही था। बुंदेली में कुछ क्रियाएँ स्वरभेद से लिखी जाती हैं—जैसे 'छूवो' का 'छीबो', 'झूमिबो' का 'झीमबो'।

केशवदास की रचनाओं में दो प्रकार की भाषा स्पष्ट है। रामचंद्रचंद्रिका और विज्ञानगीता में जिस प्रकार की भाषा है उस प्रकार की भाषा अन्य ग्रंथों में नहीं है। इन दोनों में संस्कृत की चाशनी कुछ कड़ी मिलाई गई है। इसके कारण पर अभी भली भाँति विचार नहीं किया गया है। केशव रामचंद्र-चंद्रिका लिखते हुए हिंदी में संस्कृत के महाकाव्य की परंपरा प्रवर्तित कर रहे थे। उनकी लालसा थी कि उसमें संस्कृत के नाट्यतत्त्व का भी नियोजन कर दिया जाए, जिससे लीला के उपयोग में वह आ सके। केशव ने उसमें संवाद नाटकीय ढंग के रखे हैं। संस्कृत में रामकथा पर अनेक नाटक हैं। उनका अनुवदन, उनकी छाया का ग्रहण भी केशव ने संस्कृत वर्णवृत्तों में ही किया। संस्कृत के वर्णवृत्त संस्कृत भाषा की लपेट अधिक रखते हैं। यह स्थिति केशव की रचना में ही नहीं हिंदी के सभी प्राचीन कवियों की कृतियों में दिखाई देती है। जहाँ जहाँ संस्कृत वर्णवृत्तों का प्रयोग है वहाँ वहाँ भाषा में संस्कृत की झोंक अधिक है। आधुनिक युग में श्रीहरिऔध ने संस्कृत वर्णवृत्तों में प्रबंध लिखा तो प्रियप्रवास में संस्कृत का रंग अधिक चढ़ गया। हिंदी में स्तुति के प्रसंग में भी संस्कृत का सहारा लिया जाता रहा है। इसकी झलक तुलसीदास की विनयपत्रिका में पूरी मिलती है।

विज्ञानगीता एक तो संस्कृत के प्रसिद्ध नाटक प्रबोधचंद्रोदय के आधार पर लिखी गई, दूसरे उसमें अन्य धार्मिक ग्रंथों से भरपूर सहायता ली गई। इसमें उद्धरण संस्कृत में ही प्रमाण के लिए केशव ने स्थान स्थान पर रखे हैं। छंद भी वहाँ वर्णवृत्त ही रखा गया है। फल यह हुआ कि भाषा संस्कृतमय हो गई। यह सत्य है कि केशव की दुरूहता का कारण संस्कृत के प्रयोगों या शब्दों का हिंदी में रखना है। पर यह कहना ठीक नहीं है कि उनकी शक्ति कम थी। भाषा पर उनका अधिकार रसिकप्रिया, कविप्रिया आदि ग्रंथों की उक्तियों में स्पष्ट दिखाई देता है। इसका कारण यही है कि इन ग्रंथों में संस्कृतग्रंथों से लक्षण के संबंध में सहायता अवश्य ली गई, पर उदाहरण हिंदी के छंदों में

प्रस्तुत किए गए। उसका परिणाम यह हुआ कि भाषा में वैसी कठिनाई नहीं है जैसी रामचंद्रचंद्रिका और विज्ञानगीता में दिखाई देती है। इन दोनों में भी जहाँ हिंदी के छंद प्रयुक्त हैं वहाँ वैसी दुरूहता नहीं है। अपवाद ही कहीं मिल सकता है। वस्तुतः केशव संस्कृत वर्णवृत्तों का हिंदी में प्रयोग करते समय हिंदी भाषा उसमें बैठा नहीं पाते थे। संस्कृत के वर्णवृत्तों का ढाँचा हिंदी के अनुकूल नहीं पड़ता। उसमें भाषा को बैठाने में शब्दों को आगे पीछे करना पड़ता है। हिंदी में शब्द आगे पीछे होने पर ठीक से अन्वित नहीं हो पाते। इसी से अर्थ कुछ का कुछ करना पड़ता है। एक उदाहरण लीजिए। रामचंद्रचंद्रिका में राम अपने भाइयों के साथ भोजन करने के अनंतर 'विशुद्ध गृह' में जा बैठे। इस पर केशव ने लिखा—

बैठे बिसुद्ध गृह अग्रज अग्र जाई। देखी बसंत ऋतु सुंदर मोददाई।

यह संस्कृत का हरिलीला छंद है। वसंततिलका का अंतिम वर्ण लघु कर देने से यह छंद बनता है। हिंदी के प्रसिद्ध कोश 'हिंदीशब्दसागर' में यह अंश 'अग्रज' शब्द के अर्थ में उद्धृत किया गया है। एक तो वहाँ 'जाई' और 'दाई' कर के इसे पूर्ण वसंततिलका ही बना दिया गया है, दूसरे 'अग्रज' शब्द का अर्थ 'श्रेष्ठ, उत्तम' किया गया है। केशव का अन्वय यह है—'अग्रज' अग्र जाइ बिसुद्ध गृह बैठे'। बड़े भाई राम पहले या आगे जाकर विशुद्ध गृह में बैठे। पर 'शब्दसागर' ने 'अग्रज' और 'अग्र' को गृह से ही संबद्ध किया। 'गृह अग्रज' = गृह का बड़ा भाई, श्रेष्ठ गृह, उत्तम गृह। उसका अर्थ यह जान पड़ता है—(राम) उत्तम और विशुद्ध गृह के अग्रभाग में जा बैठे। यहाँ 'गृह' शब्द के पहले 'विशुद्ध' विशेषण पड़ा है। आगे फिर अन्य विशेषण अपेक्षित नहीं जान पड़ता। 'विशुद्ध अग्रज गृह' दो विशेषण व्यर्थ हैं। दो विशेषणों की अगाड़ी-पिछाड़ी कैसी—एक 'गृह' के पूर्व, दूसरी उसके उत्तर। संस्कृत वर्णवृत्त में शब्दों के ठीक से यथास्थान न बैठने के कारण ही ऐसी बाधा हुई है। संस्कृत में कहीं 'अग्रज' शब्द श्रेष्ठ या उत्तम अर्थ में प्रयुक्त नहीं है। तात्पर्य यह कि केशव की रचना को समझने में भी भ्रम होता आ रहा है।

रसिकप्रिया की भाषा की प्रशंसा वे महाशय भी करते हैं जो इनकी भाषा के कटु आलोचक हैं। इसमें इन्होंने हिंदी काव्यप्रवाह के अनुरूप सशक्त, समर्थ, प्रांजल भाषा रखी है। सहसा इस प्रकार की भाषा केशव की रचना में और वह भी आरंभिक रचना में कैसे आ गई। इन्होंने सब प्रकार की भाषा में रचना करने का पर्याप्त अभ्यास किया होगा। 'रतनबावनी' की भाषा पुरानापन अधिक लिए हुए है। वह बतलाती है कि अपभ्रंशरूप हिंदी में पारंपरिक प्रवाह के कारण चलते रहे हैं। यह इनकी सबसे पहली रचना

कही जाती है। केशव ने अपने साहित्यिक नवयौवन में अपभ्रंश या पुरानी हिंदी में हाथ माँजा। फिर उन्होंने व्रजी में रचना की। उसे काव्य के अनुरूप परिष्कृत किया। अंत में संस्कृत की ओर मुड़े। यहीं मोड़ वे सँभाल नहीं सके।

रसिकप्रिया की भाषा सबसे अधिक वाग्योगपूर्ण है। उसमें व्रजी का पूर्ण वैभव दिखाई देता है। यदि केशव इसी प्रकार की भाषा लिखते रहते तो उनका इस क्षेत्र में विरोध न होता।

टीकाएँ और टीकाकार

केशवदास के तीन ग्रंथों पर टीकाएँ लिखी गई हैं— रसिकप्रिया, कविप्रिया और रामचंद्रचंद्रिका पर। कविप्रिया के अंतर्गत आनेवाले 'शिखनख' के हस्तलेख पृथक् भी मिलते हैं और उसपर एक टीका भी सं० १७६२ के पूर्व हुई है (देखिए राजस्थान में हिंदी के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज, दूसरा भाग, पृष्ठ १४०)। रसिकप्रिया की सबसे पुरानी टीका संस्कृत में है। टीका सं० १७२५ में की गई। टीकाकार श्रीरत्नमणि के शिष्य समर्थ हैं। टीका का नाम प्रमोदिनी है और यह सुगमार्थप्रबोधिनी है। हिंदी में रसिकप्रिया के सबसे प्राचीन टीकाकार सूरति मिश्र हैं। इनकी टीका का नाम रसगाहकचंद्रिका या जोरावरप्रकाश है। यह सं० १७९१ वि० में निर्मित हुई थी। जोधपुर के राजपुस्तकालय में संवत् १७९४ आश्विन बदी एकादशी रविवार का लिखा एक खंडित हस्तलेख रसिकप्रिया सटीक नाम से संगृहीत है (खोज—१९०२-२५९)। कहीं यह सूरति मिश्र की टीका की ही प्रतिलिपि न हो। यदि उससे भिन्न है तो यह दूसरी टीका है। टीकाकार का नाम अज्ञात है।

इसके तीसरे टीकाकार श्रीकुशलधीर हैं जिन्होंने गुर्जर-राजस्थानी में इसकी टीका गद्य में प्रस्तुत की। टीका का निर्माणकाल अज्ञात है, लिपिकाल सं० १७९६ आसोज (आश्विन) सुदी ४ शुक्रवार है। इसके पूर्व वह कभी अवश्य लिखी गई। पर कब? कहना कठिन है। सूरति मिश्र की टीका के पूर्व की भी हो सकती है। इसके चौथे टीकाकार हैं 'कासिम' (खोज, ९-१४७)। इस टीका का रचनाकाल अज्ञात है। मियाँ कासिम ने अपने को वाजिदसुत लिखा है। ये वाजिद कौन थे? कहा नहीं जा सकता। इसकी पाँचवीं टीका श्रीजगतसिंह की की हुई है, जो भिनगाराज्य के राजपरिवार के महाराजकुमार थे। इनका समय सं० १८७७ वि० के आसपास है। दिग्विजयभूषण के रचनाकार श्रीदिग्विजयसिंह के ये पुत्र थे। इन्होंने टीका का नाम 'जगतविलास' रखा है (खोज, २३-१७९ एच)। टीका गद्य में लिखने का कारण यों लिखा है—

बाँधे छंद प्रबंध बिधि होत तिलक अति गूढ़।
ताते हौं बातन लिखौं जेहि बूझै मतिमूढ़।।
बिनु प्रयास बिनु गुर पढ़े बूझै जेहि सन लोग।
ताते यह सब जगतहित कियो जगत उतजोग।।

सूरति मिश्र की टीका पद्यों में है और कठिन है इसी से इन्होंने इसे बातन (गद्य) में लिखा है।

इस पर छठी टीका सरदार कवि की है। इस टीका का नाम 'सुखविलासिका' है। दूसरा नाम 'काशिराजप्रकाशिका' भी है। ये काशीराज्य के राजकवि थे और रघुनाथ बंदीजन के पुत्र थे। टीका का रचनाकाल यों दिया हुआ है—

सिवद्दग[३] गगनो[०] ग्रह[९] सुपुनि रद[१] गनेस की साल।
जेठ सुक्ल दसमी सु गुरु करो ग्रंथ सुखमाल।।

टीका के निर्माण में उनके शिष्य नारायण ने पूरी सहायता की है। इसका उल्लेख भी इस प्रकार किया गया है—

कहुँ कहुँ नारायन कियो याको तिलक अनूप।
चित्तबृत्ति दै करि कृपा मुदित भए सब भूप।।

उस समय काशीराज्य के शासक थे श्रीईश्वरीनारायणसिंहजी। उनके समय में अनेक साहित्यिक कार्य इस राज्य के द्वारा किए गए। सबसे मुख्य कार्य उस समय रामचरितमानस की टीका का हुआ, जिसका नाम 'परिचर्यापरिशिष्ट-प्रकाश' है। 'परिचर्या' काष्ठजिह्वा स्वामी की टिप्पणी है और 'परिशिष्ट' श्रीईश्वरीनारायणजी की लिखी चूर्णिका। विस्तृत टीका महात्मा श्रीहरिहर-प्रसादजी की लिखी 'प्रकाश' नामक है।

आधुनिक युग में रसिकप्रिया की एक चलती टीका श्रीलक्ष्मीनिधि चतुर्वेदी की १९५४ ई० में प्रकाशित हुई है।

प्रियाप्रसाद तिलक

प्रस्तुत टीका प्रियाप्रसाद तिलक यद्यपि लिखी गई थी सं० १९८७ में तथापि इसके प्रकाशित होने का अवसर दो युगों के अनंतर अब आया है। सं० १९८७ के श्रावण में मेरे गुरुदेव लाला भगवानदीनजी सहसा रुग्ण हुए और दिवंगत हो गए। उनके शरीरांत के अनंतर उनकी शिष्य-मंडली ने उनके द्वारा छोड़ गए हुए कार्य की पूर्ति का संकल्प किया। केशव के तीन ग्रंथों पर टीका लिखने का विचार था। पर वे दो ही पर टीका लिख सके— रामचंद्रचंद्रिका पर 'केशवकौमुदी' नाम से और कविप्रिया पर 'प्रियाप्रकाश' नाम से। रसिकप्रिया पर उनकी टीका नहीं थी। इसलिए निश्चय किया गया

कि उस पर तिलक लिखा जाए। इस तिलक के लिखने में श्रीमोहनवल्लभजी पंत ने आरंभ में हाथ बँटाया। पर तीन प्रभाव तक कार्य होने के अनंतर वे अन्य कार्यगौरव से सहयोग नहीं दे सके। अपने बलबूते पर ही इसकी परिपूर्ति का मैंने संकल्प किया। इसकी पूर्ति में मेरे प्रिय शिष्य श्रीबदरीप्रसाद त्रिपाठी ने भी कुछ कार्य किया। उस समय श्रीराजेंद्रप्रसाद ने इसकी प्रतिलिपि करने में सोत्साह योग दिया।

टीका की पद्धति लालाजी की ही रखी गई है। पर इसमें पाठांतर भी दे दिए गए हैं। पाठांतरों के देने में किसी प्रति के नाम का उल्लेख नहीं किया गया है। इसका प्रयोजन अनुसंधान नहीं है, आलोचना या टीका-टिप्पणी है। इसी से केवल स्वीकृत पाठ के अतिरिक्त अन्य जितने पाठ मिले उनमें से प्रमुख दे दिए गए हैं।

टीका में कठिन शब्दों का अर्थ 'शब्दार्थ' शीर्षक से और तदनंतर सुसंगत अर्थ 'भावार्थ' शीर्षक से दिया गया है। यथास्थान प्रमुख अलंकारों का निर्देश है। 'सूचना' के अंतर्गत अन्य ज्ञातव्य चर्चा की गई है। जहाँ सरलता है वहाँ केवल 'शब्दार्थ' दे दिया गया है अथवा अधिक सरलता होने पर वह भी नहीं दिया गया है। सूरति मिश्र और सरदार कवि की टीकाओं का आलोड़न किया गया है, पर उनकी मान्यता सर्वत्र स्वीकृत नहीं है। जहाँ प्रमुख भेद है वहाँ उनके मत का यथास्थान उल्लेख भी किया गया है। कहीं कहीं व्याकरण की कुछ सूचनाएँ भी हैं। पाठनिर्णय में प्रमुख रूप से दो प्राचीन हस्तलिखित, एक लीथो की और अन्य प्राप्त मुद्रित प्रतियों का उपयोग किया गया है। हस्तलिखित प्रतियों में से एक मुझे प्राप्त सबसे प्राचीन प्रति है। इसका लिपि-काल सं० १७२२ है। दूसरी प्रति खंडित है। उसमें लिपिकाल नहीं है, पर वह भी पर्याप्त प्राचीन प्रति जान पड़ती है। लीथोवाली प्रति कदाचित् लाइट प्रेस की छपी है। लाइट प्रेस ने प्राचीन पुस्तकें छापने का कार्य भारतजीवन, वेंकटेश्वर तथा नवलकिशोर तीनों से उत्तम किया है। छपाई लीथो की होने से चाहे इनसे कहीं अपकृष्ट भी हो, पर ग्रंथ का संपादन प्रकृष्ट रूप में किया गया है। उसमें भी भ्रम या भूल है, पर अपेक्षाकृत कम। किसी किसी ग्रंथ में तो पार्श्व पर कुछ गिने चुने शब्दों के अर्थ भी दिए गए हैं।

प्राचीन प्रतियों में कुछ छंद कहीं अधिक हैं, कहीं न्यून। अधिक छंदों के संबंध में निर्णय करना कठिन कार्य है। यह निश्चय करना भी कठिन है कि यह केशव का है या नहीं। कुछ वैज्ञानिक कहे जानेवाले अनुसंधान का सहारा लेकर, कुछ ग्रंथ की सरणि की साखी से, कुछ केशव की शैली का विचार करके तथा कुछ प्राचीनता का अवलंबन पाकर इस संबंध में यथोचित

निर्णय किया गया है। रसिकप्रिया के अनेक हस्तलेखों को छानकर मिलावट को पृथक् करने का प्रामाणिक कार्य पृथक् है। इस प्रकार का कुछ प्रयास मैंने 'केशवग्रंथावली' के संपादन में किया है। यहाँ शुद्ध अनुसंधान की ही दृष्टि न रखकर साहित्यपरंपरा, शास्त्रपरंपरा का भी कुछ विचार रखा गया है। इससे दोनों स्थानों पर पाठ का भी भेद है और मूल में स्वीकृत छंदों का भी। पर ऐसा क्वाचित्क है। किसी ग्रंथ का मूल पाठ टीका-टिप्पणी करते समय कहीं अधिक स्पष्ट होता है। प्राचीन ग्रंथों के संपादन में, कोरी वैज्ञानिक पद्धति सर्वतोभावेन ठीक नहीं जँचती। वैज्ञानिक पद्धति जड़ यंत्र का सा कार्य है। साहित्यिक विवेचन चेतनतत्त्व है। दोनों के योग से ही मूल सत्ता की पूर्ण अभिव्यक्ति हो सकती है। कोई एक प्रणाली पूर्ण नहीं है।

अधिक या अतिरिक्त छंदों के भी पाठांतर रहे हैं तो दे दिए गए हैं। अलंकार-निर्देश में केशव के मत से जो अलंकार बनता है उसका भी यथा-संभव उल्लेख किया गया है। रसिकप्रिया के कुछ छंद कविप्रिया में भी रखे गए हैं। इनकी यथास्थान सूचना दी गई है। कहीं कहीं अनावश्यक विस्तार बचाने के लिए अन्य टीकाकारों के शंका-समाधान का विवरण नहीं दिया गया। इतना ही बता दिया गया है कि यहाँ अनेक शंका-समाधान किए गए हैं। कहीं पाठांतरों के अनुसार यदि कोई प्रकृष्ट अर्थ संभावित हुआ है तो सूचना के अंतर्गत उसका भी उल्लेख किया गया है।

कहने का तात्पर्य यह कि अपनी विद्याबुद्धि के अनुसार जो भी अपेक्षित समझा गया सबका संकलन है। संख्या प्रत्येक प्रभाव की पृथक् भी है और आदि से अंत तक क्रमबद्ध भी। अंत में प्रतीकानुक्रम है, प्रारंभ में विषयक्रम। भूमिका में अनेक ज्ञातव्य तथ्य हैं।

विभिन्न हस्तलेख

'रसिकप्रिया' और उसकी टीका के जितने हस्तलेखों का उल्लेख हस्तलिखित हिंदी-ग्रंथों के विवरणों में आया है तथा विभिन्न पुस्तकालयों में इनके जितने हस्तलेख सुरक्षित हैं उनका निर्देश नीचे किया जाता है। प्रस्तुत संस्करण के पाठ के लिए मुख्य रूप से दो हस्तलेखों का तथा दो प्रमुख टीकाओं का आधार रखा गया है। दोनों हस्तलेख स्वर्गीय बाबू राधाकृष्णदासजी के सुपुत्र श्रीबालकृष्णदासजी उपनाम बल्लीबाबू से प्राप्त हुए। एक हस्तलेख खंडित है, उसमें लिपिकाल का उल्लेख नहीं है। दूसरा पूर्ण है और उसका लिपिकाल सं० १७२२ है। इससे प्राचीन किसी हस्तलेख का पता नहीं चलता। खंडित प्रति कुछ समय बाद का हस्तलेख जान पड़ती है, उसकी शाखा पूर्ण प्रति से

भिन्न है। टीकाओं में से सूरति मिश्र की टीका अप्रकाशित है। उनकी इस रसगाहकचंद्रिका टीका का हस्तलेख मेरे प्रिय शिष्य श्रीलक्ष्मीशंकरजी व्यास से प्राप्त हुआ है। पहली टीका पद्य में है दूसरी पुराने गद्य में। यद्यपि पाठनिर्णय करने में बहुत सावधानी रखी गई है तथापि यत्रयत्र कुछ मतभेद की संभावना है। अनेकविध कार्यों में लगे रहने से तथा दृष्टि में मांद्य आ जाने से कुछ त्रुटियाँ संभावित हैं। उनके लिए क्षमार्थी हूँ।

रसिकप्रिया—

१ पूर्ण। लिपिकाल—सं० १७२१ प्राप्तिस्थान—श्रीबालकृष्णदासजी भारतेंदुभवन, चौखंभा, वाराणसी।

२ खंडित। लिपि०—×। प्राप्ति०—श्रीबालकृष्णदासजी, भारतेंदु-भवन, चौखंभा, वाराणसी।

३ पूर्ण। प्राप्ति०—काशिराज का पुस्तकालय।

हस्तलिखित हिंदी-ग्रंथों का विवरण (काशी नागरीप्रचारिणी सभा)

४ (०३-८६)। पूर्ण। लिपि-×। प्राप्ति०-काशिराज का पुस्तकालय।

५ (०४-१२८)। पूर्ण। लिपि०-सं० १८१४। प्राप्ति०-उल्लिखित नहीं है।

६ (१७-६६ ए)। पूर्ण। लिपि०-× प्राप्ति०-सेठ चंद्रशंकर, अनूपशहर, जिला बुलंदशहर।

७ (१७-६६ बी) खंडित। लिपि०-×। प्राप्ति०-श्रीदेवकीनंदनाचार्य पुस्तकालय, कामवन, भरतपुर।

८ (२०-८२ सी) खंडित लिपि०-सं १७७४। प्राप्ति०-पं० महावीरप्रसाद दीक्षित, मुहल्ला चंदनियाँ, फतेहपुर।

९ (२३-२०७ आई)। खंडित। लिपि०-×। प्राप्ति-पं० शंभूनाथ, गाँव बबुरी, डा० अलीगंज बाजार (सुलतानपुर)।

१० (२६-२३३ एफ्)। पूर्ण। लिपि० सं० १७३७। प्राप्ति-आनंदभवन पुस्तकालय, डा० बिसवाँ, जिला सीतापुर।

११ (२९-१९२ एफ्)। पूर्ण। लिपि०-सं० १९०८। प्राप्ति०-पं० उलफतरी बसायक नवीस, फतहाबाद, जिला आगरा।

'सभा'-संग्रह

१२ (६१-२६)। खंडित। प्रति से संलग्न उसी हस्तलिपि में लिखी 'बिहारी-सतसई' की पुष्पिका में लिपिकाल सं० १७७४ अंकित है।

१३ (६१-३०)। खंडित। लिपि०-सं० १८१६।

१४ (५३४-३८२) पूर्ण? पत्र १-२०५। लिपि०-×।

१५ (५५२-३६७) । खंडित । लिपि०—सं० १७८६ ।

१६ (१५६४-६१३) । खंडित । लिपि०—सं० १७८७ ।

१७ (१२०१–७८५) । पूर्ण ? । पत्र १–१२८ । लिपि०– × ।

१८–(२७०२–१६२०) । खंडित । लिपि०– × ।

याज्ञिक-संग्रह

१९ (७३–६) खंडित । लिपि०– × ।

२० (२०२–६) । खंडित । लिपि०– × ।

२१ (२०३–६) । खंडित । लिपि०– × ।

२२ (७३–६) । खंडित । लिपि०– × ।

२३ (१६–६) पूर्ण । लिपि०–१८६८ वि० ।

राजस्थान में हिंदी के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज

२४ (प्रथम भाग, १०७) पूर्ण । लिपि०—सं० १७०४ । प्राप्ति०—सज्जन-वाणी-विलास, उदयपुर ।

२५ (तृतीय भाग, ५३) पूर्ण ? । प्राप्ति०—सरस्वती-भंडार, भींडर ।

२६ (तृतीय भाग, ५३) । पूर्ण ? । प्राप्ति०—राव मोहनसिंह, उदयपुर ।

प्राचीन हस्तलिखित पोथियों का विवरण (बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, पटना

२७ (दूसरा खंड, ५) । पूर्ण । लिपि०—सं० १८६७ । प्राप्ति०—श्रीमन्नूलाल पुस्तकालय, गया ।

२८ (दूसरा खंड, ५७) । पूर्ण । लिपि०—सं० १६१६ । प्राप्ति०—श्री मन्नूलाल पुस्तकालय, गया ।

सरस्वती-भवन, संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

२९ नवीन संग्रह संख्या २; वेष्ठन नं० ७५ । संपूर्ण । लिपि० सं० १६३६ ।

३० नवीन संग्रह संख्या ३; वे० नं० ९८ । संपूर्ण । लिपि०—सं० १८२१ ।

३१ नवीन संग्रह संख्या १०; क्रम सं०२५०७; वे० नं० १३७ । संपूर्ण लिपि०– × ।

३२ आधुनिक प्रथम संग्रह; क्रम सं० ६२८; वे० नं० ६७ । अपूर्ण । लिपि०– × ।

३३ द्विवेदी संग्रह; क्रम सं० ८०३६ । अपूर्ण । लिपि०– × ।

३४ १८७४ । अपूर्ण । लिपि०– × ।

दि सेंसस आव् इंडिक मैनस्क्रिप्टस्

३५ (५८२६) लिपि०—सं० १७७६ । प्राप्ति०—न्यूयार्क पब्लिक लाइब्रेरी, न्यूयार्क सिटी ।

३६ (५८२७) प्राप्ति०—हारवर्ड यूनिवर्सिटी लाइब्रेरी, कैंब्रिज (१६८५)

३७ (५८२८) खंडित । लिपि०–१७ वीं शताब्दी । प्राप्ति०-मेट्रोपोलिटन म्यूजियम आव् आर्ट, न्यूयार्क सिटी ।

३८ (५८२६)। प्राप्ति०—हारवर्ड यूनिवर्सिटी लाइब्रेरी, कैंब्रिज (१६८६)।

३६ (५८३०) लिपि०—सं० १७४३। प्राप्ति० हारवर्ड यूनिवर्सिटी लाइब्रेरी, कैंब्रिज (१७०७)।

४० (५८३१) लिपि०—सं० १८१६। प्राप्ति०—हारवर्ड यूनिवर्सिटी लाइब्रेरी, कैंब्रिज (११६२)।

रसिकप्रिया—टीका

१ पूर्ण। लिपि०— × । प्राप्ति०—श्रीलक्ष्मीशंकरजी व्यास, दंडपाणि की गली, वाराणसी। 'रसग्राहकचंद्रिका' सूरति मिश्र की टीका।

हस्तलिखित हिंदी ग्रंथों का विवरण (काशी नागरीप्रचारिणी सभा)।

२ (०२—२५६)। खंडित। लिपि० सं० १७६४। प्राप्ति०—जोधपुरराज का पुस्तकालय।

३ (०२—२६०) प्राप्ति०—जोधपुरराज का पुस्तकालय।

४ (०४-५७)। पूर्ण। प्राप्ति०—काशिराज का पुस्तकालय। सरदार कवि की 'सुखविलासिका' टीका।

५ (०६—२४३ ए) लिपि०-सं० १८६६। प्राप्ति०- चरखारीराज का पुस्तकालय। सूरति मिश्र की 'रसगाहकचंद्रिका' टीका।

६ (०६-२४३ डी)। लिपि०-सं० १८८७। प्राप्ति०—लाला विद्याधर, होरीपुरा, दतिया। सूरति मिश्र की 'जोरावरप्रकाश' टीका।

७ (०६-१४७) पूर्ण। प्राप्ति०— उल्लिखित नहीं है। टीकाकार-कासिम, वाजिद के पुत्र।

८ (१७-१८६ ए) पूर्ण। लिपि०—सं० १६१८। प्राप्ति०-रमणलाल हरीचंद चौधरी, बाजार कोसी (मथुरा)। सूरति मिश्र की 'जोरावरप्रकाश' टीका।

६ (२३-१७६ एच्)। प्राप्ति० महाराज राजेंद्रबहादुरसिंह, भिनगाराज, बहराइच।

१० (२३ १७६ आई)। प्राप्ति०—बा० पद्मबक्ससिंह, लवेदपुर, बहराइच।

११ (२३—१७६ जे)। खंडित। प्राप्ति०—बा० पद्मबक्ससिंह, लवेदपुर, बहराइच।

१२ (२६—४७४ जी)। खंडित। लिपि०-सं० १७६१। प्राप्ति०-श्रीबलवंत सिंह। सूरति मिश्र की 'रसगाहकचंद्रिका' टीका।

१३ (२६—४७४ एफ्)। प्राप्ति० श्रीहनुमानसिंह, ग्राम गोधनी, डा० जयतिपुर, जिला उन्नाव।

१४ (२६-१६२ ए)। खंडित। लिपि० सं० १८६६। प्राप्ति०-श्रीमहाराजा प्रकाश-

सिंह, मल्लापुर जिला सीतापुर। राजा जगतसिंह की 'जगतविलास' टीका।

राजस्थान में हिंदी के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज

१५ (प्रथम भाग, १०८)। लिपि०-सं० १७६६। टीकाकार-कुशलधीर। टीका राजस्थानी भाषा में है। प्राप्ति०-सरस्वती-भंडार, उदयपुर।

१६ (प्रथम भाग, १०६)। पूर्ण। लिपि०-महाराणा शंभुसिंहजी के राज्य-काल में आरंभ तथा महाराजा सज्जनसिंहजी के राज्यकाल में समाप्त। सूरति मिश्र की 'जोरावरप्रकाश' टीका। सचित्र। प्राप्ति०-सज्जन-वाणी-विलास, उदयपुर।

१७ (द्वितीय भाग, पृष्ठ १३७)। संस्कृत टीका। टीकाकार-समर्थ। रचनाकाल-सं० १७५५। लिपि०-१७६६। प्राप्ति०-दानसागर भंडार, बीकानेर।

१८ (तृतीय भाग, ५४)। लिपि० सं० १६२६। सूरति मिश्र की 'जोरावर-प्रकाश' टीका। प्राप्ति०-राव मोहनसिंह, उदयपुर।

सरस्वती-भवन, संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

१६ (२५६६)। अपूर्ण। लिपि०-×। सरदार कवि की टीका।

'सभा'-संग्रह

२० (६२६-४४८)। खंडित। सूरति मिश्र और सरदार कवि की टीका से भिन्न।

२१ (६२५-४४७)। खंडित। लिपि०-सं० १७६१ सूरति मिश्र की 'रसगाहक-चंद्रिका' टीका।

कृतज्ञता-प्रकाश

'रसिकप्रिया' के इस 'तिलक' के सँजोने में कई हाथ लगे। बंधुवर श्रीमोहनवल्लभ पंत, शिष्यवर श्रीबदरीप्रसाद त्रिपाठी और श्रीराजेंद्रप्रसाद का नामोल्लेख हो चुका है। इधर मेरे प्रिय शिष्य श्रीरामबली पांडेय ने प्रतीकानुक्रमणी प्रस्तुत की। इसके संधान में कई अनुसंधायकों ने भी योग दिया—प्रस्तावना के कुछ अंश के वाग्लेखन में श्रीगोवर्धनलाल उपाध्याय ने, अनुलेखन में श्रीरामदास ने, ग्रंथों के संकलन में श्रीभर्ग्यनाथ दुबे ने और सामग्री-संग्रह में चिरंजीवी श्रीचंद्रशेखर मिश्र ने। इसके प्रस्तुत करने में अनेक हस्तलेखों और नानाविध संबद्ध वाङ्मय का आलोड़न करना पड़ा है। मुख्य सहायता श्रीबालकृष्णदासजी ने की जिन्होंने इसके प्राचीनतम हस्तलेख देकर पाठ-निर्णय का मार्ग अकंटकाकीर्ण किया। साथ ही श्रीलक्ष्मीशंकरजी व्यास ने श्रीदीनदयाल गिरि के प्रशिष्य और श्रीदंपतिकिशोरजी के शिष्य श्रीचुन्नीलालजी के संग्रह से 'रसगाहकचंद्रिका' का हस्तलेख देकर अर्थनिर्णय में अमूल्य सहायता पहुँचाई। विभिन्न पुस्तकालयों में मेरे शिष्यों को और मुझे अनेक प्रकार की सुविधाएँ मिली हैं। सबसे अधिक सहृदयता श्रीकृष्णजी पंत ने दिखाई, जिन्होंने वांछित पुस्तकें यथोप्सित अवधि के लिए देकर कार्य के संपन्न में सहयोग किया। हस्तलेखों के लेखकों, स्वामियो तथा पुस्तकालय के अध्यक्षों-निरीक्षकों सभी उपकारकों के प्रति मैं अपनी विनम्रतापूर्ण कृतज्ञता प्रकाशित करता हूँ। अंत में अपने स्वर्गीय गुरुदेव लाला भगवानदीनजी का प्रणतिपूर्वक स्मरण करता हूँ जिनकी आत्मा के परितोष के लिए ही यह संभार किया गया है।

वाणी-वितान भवन
ब्रह्मनाल, वाराणसी-१
रंगभरी, २०१५

विश्वनाथप्रसाद मिश्र

अनुक्रमणिका

रसिकप्रिया

प्रथम प्रभाव

अथ मंगलाचरण

(१) गणेशवंदना (छप्पय)

एकरदन गजबदन, सदनबुधि, मदनकदनसुत ।
गौरिनंद आनंदकंद जगबंद, चंदजुत ।
सुखदायक दायक सुकीर्ति जगनायक-नायक ।
खलघायक घायक दरिद्र सब लायक-लायक ।
गुरु गुनअनंत भगवंत भव भगतिवंत-भवभयहरन ।
जय केसवदास निवासनिधि लंबोदर असरनसरन ।१।

प्रियाप्रसाद तिलक

शब्दार्थ—एकरदन = एक दाँतवाले । वदन = मुख । सदनबुधि = बुद्धि के घर । मदन = कामदेव । कदन = नाश करनेवाले । मदनकदन = महादेव । गौरिनंद = पार्वती को आनंद देनेवाले । कंद = जड़ । जगबंद = (जगद्वंद्य) संसार के पूज्य । जगनायक = त्रिदेव (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) । नायक = स्वामी । घायक = (घातक) मारनेवाले । लायक-लायक = योग्यों में भी योग्य, सर्वश्रेष्ठ । गुरु = बड़े । भगवंत भव = संसार में समस्त ऐश्वर्यों से युक्त । (भग = षडैश्वर्य) । भगतिवंत = भक्त । भव = आवागमन । निवासनिधि = नव निधियों के घर ।

भावार्थ—एक दाँतवाले, गजमुख, बुद्धि के घर, कामदेव का नाश करने-वाले महादेव के पुत्र, अपनी माता पार्वती को आनंदित करनेवाले, आनंद की जड़, संसार के वंदनीय, ललाट पर चंद्रमा धारण करनेवाले, सुखदायक, कीर्ति देनेवाले, त्रिदेवों के भी स्वामी, दुष्टों को मारनेवाले, दरिद्रता को दूर करनेवाले, सब योग्यों से भी योग्य, असंख्य बड़े गुणवाले, संसार में समस्त समृद्धियों से संयुक्त, भक्तों का जन्ममरण का भय हरनेवाले, निधियों के निवास-स्थान, असहाय को भी आश्रय देनेवाले लंबोदर श्रीगणेशजी की जय हो ।

अलंकार—आशिष (केशव के मत से), उल्लेख ।

पाठांतर १—सुकीर्ति–सुकृति । जग–गन । गुरु–गुन–गुन–गन । भगति–भाग ।

सूचना—(१) 'जय' के प्रयोग से यह आशीर्वादात्मक मंगल है। (२) सरदार कवि ने अपनी टीका में इसका अर्थ प्रणव और श्रीकृष्ण पर भी घटाया है। (३) सूरति मिश्र ने 'रसग्राहकचंद्रिका' नाम्नी अपनी टीका में 'मदनकदन' को श्रृंगार में अप्रयुक्त प्रयोग मानकर इसका अर्थ 'धतूरा खानेवाला' किया है। फिर यह शंका उठाकर कि धतूरे के अनेक पर्यायवाचक शब्दों के होते हुए 'मदन' ही क्यों रखा गया, 'मदन' का अर्थ 'मद नहीं' और 'कदन' का अर्थ सृष्टिसंहारकर्ता रुद्र ग्रहण किया है। इसी प्रकार के अनेक प्रश्नोत्तर हैं। (४) 'जगनायक' का अर्थ 'त्रिदेव' करने में महादेव भी आते हैं। महादेव गणेश के पिता हैं। ये उनके भी नायक कहे जाएँ तो अनुचित है, ऐसा नहीं समझना चाहिए—'सुर अनादि जिय जानि।'

(२) **श्रीकृष्णवंदना**—(छप्पय)

श्रीवृषभानुकुमारिहेत श्रृंगाररूप भय।
बास हासरस हरे मातुबंधन करुनामय।
केसी प्रति अति रौद्र बीर मारो बत्सासुर।
भय दावानलपान पियो बीभत्स बकी उर।
अति अद्भुत बंचि बिरंचिमति, सांत संततै सोच चित।
कहि केसव सेवहु रसिकजन, नवरसमय ब्रजराज नित।२।

शब्दार्थ—श्रीवृषभानुकुमारि = श्रीराधिका। हेत = (हेतु) लिए। भय = (भए) हुए। बास हरे = गोपियों के वस्त्र हरण किए। मातुबंधन = कंस के कारागार में माता देवकी का बंधन। केसी = केशी राक्षस। बत्सासुर = एक राक्षस। दावानलपान = एकबार श्रीकृष्णवनाग्नि पी गए थे। बकी = पूतना (बकासुर की बहन)। उर पियो = स्तनपान किया। बंचि = ठगकर। बिरंचिमति = ब्रह्मा की बुद्धि। संततै = निरंतर ही। ब्रजराज = श्रीकृष्ण।

भावार्थ—जो श्रीकृष्ण श्रीराधिका के लिए श्रृंगाररस-रूप हुए, गोपिकाओं के चीरहरण में हास्यरस-रूप बने, माता देवकी का कारावास में कष्ट देखकर करुणरस-रूप हुए, केशी के प्रति क्रोध करके रौद्ररस-रूप दिखाई पड़े, वत्सासुर के मारने में वीररस-मय हुए, दावाग्नि का पान करके भयानकरस-युक्त हुए, पूतना का स्तनपान करके बीभत्सरस-मय दिखाई दिए, ब्रह्मा की बुद्धि को छलने में अद्भुतरस-युक्त प्रतीत हुए तथा अर्जुन का मोह देखकर चिंतित चित्त हो जाने के कारण शांतरस-मय लक्षित हुए, उन नवरसमय ब्रजराज की सेवा रसिकजन नित्य करें।

अलंकार—उल्लेख और तृतीय विशेष का संदेह-संकर तथा रत्नावली (क्रम से रसों का नाम आने के कारण)।

१—संततै—सांत से।

अथ कविवर्णन—(दोहा)

(३) नदी बेतवै-तीर जहँ, तीरथ तुंगारन्य।
नगर ओछड़ो बहु बसै, धरनीतल में धन्य। ३।

शब्दार्थ—तुंगारन्य = (तुंगारण्य) ओछड़े के चारों ओर का जंगल। बहु बसै = घना बसा हुआ।

(४) आश्रम चारि बसै जहाँ, चारि बर्न सुभ कर्म।
जप तप विद्या वेद-बिधि, सबै बढ़े धन धर्म। ४।

(५) दिनप्रति जहँ दूनो लहै, जहाँ दया अरु दान।
एक तहाँ केसव सुकबि, जानत सकल जहान। ५।

(६) अपने अपने धर्म तहँ, सबै सदा सुखकारि।
जासों देस बिदेस के, रहे सबै नृप हारि। ६।

(७) रच्यो बिरंचि बिचारि तहँ, नृपमनि मधुकरसाहि।
गहरवार कासीस-रबि, कुलमंडन जसु जाहि। ७।

(८) ताको पुत्र प्रसिद्ध महिमंडन दूलहराम।
इंद्रजीत ताको अनुज, सकल धर्म को धाम। ८।

(९) दीन्ही ताहि नृसिंहजू, तन मन रन जयसिद्धि।
हित करि लच्छन-राम ज्यों, भई राज की बृद्धि। ९।

(१०) तिन कबि केसवदास सों, कीन्हों धर्मसनेहु।
सब सुख दैकरि यों कह्यो, रसिकप्रिया करि देहु।१०।

शब्दार्थ—धर्मसनेहु कीन्हों = धर्म का स्नेह किया अर्थात् गुरु बनाकर दीक्षा ग्रहण की।

(११) संबत सोरह सै बरष, बीते अठतालीस।
कातिग सुदि तिथि सप्तमी, बार बरनि रजनीस।११।

शब्दार्थ—बरनि = बरनो, कहो।

भावार्थ—संवत् १६४८ कार्त्तिक शुक्ला सप्तमी सोमवार के दिन केशव ने 'रसिकप्रिया' का आरंभ किया।

(१२) अति रति-गति मति एक करि, बिबिध-बिबेक-बिलास।
रसिकन कों रसिकप्रिया, कीनी केशवदास।१२।

शब्दार्थ—रति-गति एक करि = अपनी प्रीति को सब ओर से खींचकर। मति एक करि = बुद्धि को एकाग्र करके।

भावार्थ—अन्य शास्त्रों से अपनी प्रीति को खींचकर और बुद्धि को

६—तहँ-तें। ९—राज की-राजसी। १०—कीन्हों०-कियो धर्म सों नेहु। १२—गति०-मति गति।

अत्यंत एकाग्र करके केशवदास ने विवेकपूर्वक अनेक रीतियों से रसिकों के लिए 'रसिकप्रिया' की रचना की।

(१३) **ज्यों बिनु दीठि न सोभिजै, लोचन लोल बिसाल।**
त्यों ही केसव सकल कबि, बिन बानी न रसाल।१३।

भावार्थ—जिस प्रकार दृष्टि के बिना बड़े और चंचल नेत्र भी शोभित नहीं होते उसी प्रकार रसिक कवि भी बिना वाणी के शोभा नहीं पाते।

अलंकार—उपमा।

(१४) **तातें रुचि सों सोचि पचि कीजै सरस कबित्त।**
केसव स्याम सुजान को, सुनत होइ बस चित्त ॥१४॥

भावार्थ—इसलिए रुचि से सोच विचार कर सरस श्रीकृष्णविषयक कविता करनी चाहिए जिसे सुनकर सबका चित्त वशीभूत हो जाय।

अथ नवरसवर्णन—(दोहा)

(१५) **प्रथम सिँगार सुहास्य रस, करुना रुद्र सु बीर।**
भय बीभत्स बखानिये, अद्भुत सांत सुधीर ॥१५॥

(१६) **नवहू रस के भाव बहु, तिनके भिन्न विचार।**
सबको केसवदास हरि, नायक है सृंगार ॥१६॥

अथ शृंगारसलक्षण—(दोहा)

(१७) **रति-मति की अति चातुरी, रतिपति-मंत्र विचार।**
ताही सों सब कहत हैं, कबि कोविद शृंगार ॥१७॥

शब्दार्थ—रति = प्रीति। रतिपति = कामदेव। कोविद = पंडित।

भावार्थ—जहाँ रति (प्रीति) संयुक्त बुद्धि की अत्यंत चतुरता और काम (कला) के विचार का वर्णन रहता है उसे कवि और पंडित लोग शृंगार कहते हैं।

अथ शृंगार के भेद—(दोहा)

(१८) **सुभ संजोग बियोग पुनि द्वै सिंगार की जाति।**
पुनि प्रच्छन्न प्रकाश करि, दोऊ द्वै द्वै भाँति ॥१८॥

अथ प्रच्छन्न-संयोग-शृंगार-लक्षण—(दोहा)

(१९) **सो प्रच्छन्न संजोग अरु, कहैं बियोग प्रमान।**
जानें पीउ प्रिया कि सखि, होइ जु तिनहिं समान ॥१९॥

भावार्थ—प्रच्छन्न संयोग और बियोग शृंगार वह है जिसे नायक-नायिका या उन्हीं के समान सखी ही जानें।

१३—सोभिजै—सोभिये। १४—सों—सुचि। १८—द्वै सिंगार—दोउ सिंगार। १९—प्रिया—पिया। होइ होंहि।

(२०) अथ प्रच्छन्न-संयोग-शृंगार, यथा—(सवैया)

बन में वृषभानुकुमारि मुरारि रमे रुचि सों रसरूप पियें।
कल कूजत पूजत कामकला बिपरीत रची रति केलि कियें।
मनि सोभित स्याम जराइ जरी अति चौकी चलै चल चारु हियें।
मखतूल के झूल झुलावत केसव भानु मनो सनि अंक लियें ॥२०॥

शब्दार्थ—मुरारि = कृष्ण। रसरूप पियें = सौंदर्यरस का पान किए हुए। कल = सुंदर। कूजत = बोलते हैं। पूजत = पूर्ण करते हैं। काम-कला= शृंगारिक चेष्टाएँ। बिपरीत रति = नायक नायिका की उलटी काम-क्रीड़ा। केलि कियें = काम क्रीड़ा करते हुए। मनि = माणिक, लाल रत्न। स्याम = नीलम। जराइ जरी = पच्चीकारी की हुई। चौकी = गले में पहनने का एक गहना, उरबसी, पदिक। चारु = सुंदर। हियें = वक्षःस्थल पर। मखतूल = काला रेशम। भानु = सूर्य। अंक = गोद।

भावार्थ—(नायिका की अंतरंग सखी नायक की अंतरंग सखी से कहती है) वन में श्रीराधिका और कृष्ण सौंदर्यरस का पान किए हुए रुचिपूर्वक रमण करने लगे, वे काम की कला को पूर्ण करनेवाले सुंदर शब्दयुक्त कामक्रीड़ा करते हुए विपरीत रति में संलग्न हुए। (उस समय राधिका जी के झूमने से उनके) गले में पड़ी हुई माणिक में नीलम से जटित अत्यंत सुंदर और चंचल चौकी का हिलना ऐसा प्रतीत होता हैं मानो सूर्य शनि को अपनी गोद में लिए हुए काले रेशम के झूले में झुला रहा है (यहाँ पर माणिक की बनी चौकी भानु और नीलम शनैश्चर है। जिसमें चौकी पिरोई हुई है वह काले रेशम का धागा झूले की डोर है)।

अलंकार—उक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा।

सूचना—सूरति मिश्र और उनके अनुगमन पर सरदार कवि ने इस सवैये पर कई शंकाएँ उठाई हैं, यथा—'शृंगार में मुरारि नाम, विपरीत रति में सूर्य और शनि (पिता-पुत्र) की उत्प्रेक्षा आदि। उन्होंने इनका अपने ढंग से समाधान भी किया है।

(२१) अथ प्रकाश-संयोग औ प्रकाश-वियोग-लक्षण—(दोहा)

सो प्रकास संजोग अरु, कहैं प्रकास बियोग।
अपने अपने चित्त में, जानैं सिगरे लोग ।२१।

भावार्थ—जिस संयोग और वियोग शृंगार को अंतरंग-बहिरंग सखी-सखा आदि सब जानें उसे प्रकाश संयोग और प्रकाश वियोग कहते हैं।

२०—किये–हिए। सोहत–सोभित।

(२२)　　　　प्रकाश संयोग यथा—(सवैया)

केसव एक समै हरि-राधिका आसन एक लसैं रँगभीनें।
आनँद सों तिय-आनन की दुति देखत दर्पन में दृग दीनें।
भाल के लाल में बाल बिलोकि तहीं भरि लाल न लोचन लीनें।
सासन पीय सबासन सीय हुतासन में मनो आसन कीनें।२२।

शब्दार्थ—रँगभीने = प्रेम से युक्त। लाल=माणिक। बाल = (बाला) नायिका (राधिका)। लालन = नायक (श्रीकृष्ण)। सासन=आज्ञा। पीय= प्रिय (रामचंद्र)। सबासन = वस्त्रों सहित (कपड़े पहने हुए)। हुतासन = अग्नि।

भावार्थ—(बहिरंग सखी की उक्ति बहिरंग सखी से) हे सखी, एक बार श्रीकृष्ण और राधिका प्रेमपूर्वक एक ही आसन पर विराजमान थे और श्रीकृष्ण दर्पण में आनंदसहित राधिका के मुख की छवि टकटकी लगाकर देख रहे थे। (दर्पण में राधिका का प्रतिबिंब पड़ रहा था। उस प्रतिबिंब में राधिका के भाल की लाल टिकुली में उनका—राधिका का—पुनः प्रतिबिंब पड़ रहा था।) उस भाल पर की बेंदी के माणिक में पड़नेवाले राधिका के प्रतिबिंब को देखकर तुरंत श्रीकृष्ण ने अपने नेत्रों में आँसू भर लिए। (श्रीकृष्ण को अपने रामावतार के उस समय की सुध आ गई जब पति की आज्ञा से सीता ने अग्निप्रवेश किया था।) मानो अपने पति रामचंद्र की आज्ञा से सीता ने (अग्निपरीक्षा के लिए) सवस्त्र अग्नि में प्रवेश किया हो।

अलंकार—स्मरण और उक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा का अंगांगिभाव संकर।

(२३) अथ श्रीराधिकाजू को प्रच्छन्न-वियोग शृंगार, यथा (सवैया)

कीट ज्यों काटत काननि कान्ह सों मानहूँ में कहि आवत ऊनो।
ताहि चलें सुनिकै चुप ह्वै रहे नीकहिं केसव एक न दूनो।
नेक अटें पट फूटति आँखि सु देखति हैं कब को ब्रज सूनो।
काहे कों काहू को कीजे परेखो'ब जीजे री जीव की नाक दै चूनो।२३।

शब्दार्थ—कहि आवत = कहा जाता था, कहते थे। ऊनो—बुरा। नीकहिं = भली भाँति। नेक = थोड़ा, थोड़ी देर के लिए। अटें पट = परदा पड़ जाने पर, घूँघट पड़ जाने पर। परेखो = परीक्षा। नाक चूनो दै जीजै = नाक में चूना लगाकर जीती हैं, बदनामी सहती हुई बेहयाई के साथ जी रही हैं।

भावार्थ—(नायिका का वचन सखी से) श्रीकृष्ण पहले मान में भी बुरी बात (बाहर चले जाने की बात) कहते थे तो वह जिन कानों को कीड़े के

२२—दर्पन में—दर्पन त्यों। बिलोकि०—बिलोकति ही। मनो—जनु।

२३—काटत-काट त्यों। कान्ह-कान। मानहूँ—मानहि। नीकहिं—नीके हीं। एक—एकहि। पट—पर। जीजै—जीजिए, जीय के।

काटने की तरह (दुःखदायिनी) लगती थी। (आज) उन्हीं के चले जाने पर (उनके चले जाने की बात) सुनकर भी (वे ही कान) एक नहीं, दोनों के दोनों, भली भाँति चुप हो गए हैं। (शांत हैं, ऐसा समाचार सुनकर कट नहीं गए) पहले श्रीकृष्ण के देखने में थोड़ी देर के लिए भी परदा पड़ जाने पर, घूँघट की आड़ में होने पर जो आँखें फूटने लगती थीं आज वे ही आँखें न जाने कब से ब्रज को (श्रीकृष्ण से) सूना देख रही हैं (और फूटती नहीं हैं)। किसी (अर्थात् अपने अंगों) की क्या परीक्षा ली जाय, अब तो अपने प्राणों को बेहयाई का टीका लगाकर जी रही हैं।

(२४) अथ राधिका की प्रकाश वियोग शृंगार यथा—(सवैया)

जिनके मुख की दुति देखत हीं निस-बासर केसव दीठि अटी।
पुनि प्रेम बढ़ावन की बतियाँ तजि आन कछू रसना न रटी।
जिनके पद पानि उरोज सरोज हिये धरिकै पल नैन घटी।
तिनके सँग छूटतहीं फटु रे हिय तोहिं कहा न दरार फटी।२४।

सूचना—यह छंद प्राचीनतम हस्तलिखित प्रतियों और लीथो वाली प्रति में नहीं है। सरदार कवि ने इस पर टीका नहीं लिखी है। नारायण कवि ने तो इसे 'केशव' का छंद ही नहीं माना है।

(२५) अथ श्रीराधिकाजू को प्रकाश-वियोग-शृंगार, यथा—(कवित्त)

सीतल समीर टारि चंद्रचंद्रिका निवारि,
केसौदास ऐसें ही तो हरषु हिरातु है।
फूलन फैलाइ डारि झारि डारि घनसारु,
चंदन कों ढारि चित्त चौगुनो पिरातु है।
नीरहीन मीन मुरझाइ जीवै नीर ही तें,
छीर छिरके तें कहा धीरजु धिरातु है।
पाई है तैं पीर कैधों यों ही उपचारु करै,
आगि को तौ डाढ्यो आँगु आगिहीं सिरातु है ॥२५॥

शब्दार्थ—टारि = हटा दे। चंद्रचंद्रिका = चंद्रमा की चाँदनी। निवारि = रोक दे। हरषु हिरातु है = हर्ष खोया जा रहा है। घनसा = कपूर। मीन = मछली। छीर० = दूध के छिड़कने से। धिरातु है = (धैर्य) धरा जा सकता है। पाई है तैं पीर = क्या तूने मेरी पीड़ा का मर्म समझा है (अर्थात् मेरी इस पीड़ा का क्या कारण है ?)। यों ही = व्यर्थ। उपचारु = उपाय (रोग-शांति के लिए औषध करना)। डाढ्यो = जला हुआ। सिरातुर है,। ठंढा हो जाता है।

२५—डारि–डारे। ढारि–टारु। मुरकाइ–मुरझाति। तें–पै। छिरके तें–के छिरीके। डाढ्यो–दाध्या। आँगु–अंग।

भावार्थ—(नायिका की उक्ति सखी से) हे सखी, शीतल वायु को हटा, चंद्रमा की चाँदनी को रोक, क्योंकि इसी प्रकार (के पदार्थों) से तो मेरा हर्ष खोया जा रहा है (इनसे मुझे कष्ट हो रहा है)। फूलों को फेंक दे, कपूर को झाड़ डाल, (घिसे) चंदन को (अन्यत्र) उड़ेल दे, क्योंकि इनसे मेरे चित्त में चौगुनी पीड़ा होती है। मछली जल से रहित होकर अचेत होती है तो जल पाने पर ही जी सकती है। उसके ऊपर दूध छिड़कने से उसे क्या धैर्य होगा (वह जल छिड़कने से ही जीती है, दूध से नहीं)। (नायक से मेरा वियोग हुआ है। अतः मैं उन्हीं को पाने पर जी सकती हूँ, इन उपचारों से नहीं)। तूने मेरी इस पीड़ा का मर्म समझ भी पाया है या यों ही इसके लिए उपचार कर रही है। (क्या तू नहीं जानती कि) आग का जला हुआ अंग आग द्वारा (सेंकने से) ही ठंढा होता है। (इन उपचारों से मेरी व्याधि दूर नहीं हो सकती, नायक के दर्शन होने पर ही इसका अंत होगा)।

अलंकार—व्याघात (शीतल उपचारों से विरहाग्नि के भड़कने से)।

(२६) श्रीकृष्ण को वियोग-शृंगार, यथा—(सवैया)

केसव रूठि रह्यो तुमहीं सों किधों भय काहू के भीत भयो है।
बेच्यो है काहू के हाथनि नाथ किधौं तुम काहू के साथ दयो है।
मेरी सौं मा सहुँ भानहु बेगि इहाँ मनु नाहिं कहाँ पठयो है।
साँची कहौ हरि हार्‌यो है काहू सों काहू हर्‌यो कि हिराइ गयो है।२६।

शब्दार्थ—सहुँ = से। भानहु = कहो। हिराइ० = खो गया है।

(२७) श्रीकृष्ण को प्रकाश-वियोग-शृंगार, यथा—(सवैया)

बात कहैं न सुनैं कछु काहू त्यों हेरैं नहीं कोउ कैसेहूँ हेरो।
खाइँ कछू न पियैं कछु केसौ छुवै न कछू कर कोंरो करेरो।
हूलि उठी ब्रज बैठी कहा उठि आवहु देखि कह्यो करि मेरो।
जानै को माइ कहा भयो कान्ह कों जोग-सँजोग बियोग कि तेरो।२७।

शब्दार्थ—कोंरो = कोमल। करेरो = कठोर। जोग० योग की किसी क्रिया का प्रभाव।

सूचना—संख्या २६-२७ नवलकिशोर प्रेस की प्रति में नहीं हैं।

(२८) (दोहा)

यों परछन्न प्रकास बिधि, बरने जोग बियोग।
अब नायक-लच्छन कहौं, गूढ़ अगूढ़ प्रयोग।।२८।।

२८—बिधि–सब।

शब्दार्थ—जोग = संयोग। गूढ़=असाधारण। अगूढ़=साधारण, सामान्य।

इति श्रीमन्महाराजकुमारइंद्रजीतविरचितायाँ
रसिकप्रियायाँ प्रच्छन्नप्रकाशसंयोग-
वियोग वर्णनं नाम प्रथमः
प्रभावः । १ ।

द्वितीय प्रभाव

(२९) अथ साधारण-नायक लक्षण—(दोहा)

अभिमानी त्यागी तरुन, कोककलानि प्रबीन।
भव्य छमी सुंदर धनी, सुचिरुचि सदा कुलीन।१।

शब्दार्थ—तरुन = युवा। कोककलानि प्रवीन = कामशास्त्र में पंडित। भव्य = रूपवान्। छमी=क्षमाशील। सुचिरुचि=पवित्र रुचि (इच्छा) वाला।

(३०) **ये गुन केसव जासु में, सोई नायक जानि।**
अनुकुल दछ सठ धृष्ठ पुनि, चौबिधि ताहि बखानि।२।

शब्दार्थ—अनुकुल = अनुकूल। दछ = (दक्ष) दक्षिण। चौविधि = चार प्रकार के (अनुकूल, दक्षिण, शठ और धृष्ट)।

(३१) अथ अनुकूल-लक्षण—(दोहा)

प्रीति करै निज नारि सों, परनारी-प्रतिकूल।
केसव मन-बच-कर्म करि, सो कहिये अनुकूल।३।

(३२) अथ प्रच्छन्न-अनुकूल, यथा—(सवैया)

और के हास-बिलास न भावत साधुनि को यह सिद्ध सुभावै।
बात वहै जु सदा निबहै हरि, कोऊ कहूँ कछु सोधु न पावै।
आसन बास सुबासन भूषन केसव क्योंहूँ यहौ बनि आवै।
मो बिन पान न खात जु कान्ह सु बैरु किधौं यह प्रीति कहावै।४।

शब्दार्थ—और=(अपर) अन्य। हास-बिलास=हंसी-विनोद। साधु= सज्जन। सिद्ध सुभावै=निश्चित प्रकृति ही है। सोधु=पता। बास = वस्त्र। सुबास = सुगंध। भूषन = गहना।

भावार्थ—(नायिका की उक्ति नायक प्रति) आपको जो (मेरा हास-विलास छोड़कर) किसी दूसरे का हास-विलास नहीं अच्छा लगता, वह सज्जनों का निश्चित स्वभाव ही है। किंतु हे हरि, बात वही करनी चाहिए जिसका सदा

१—कोक-केलि। २—जासु—जाहि। अनुकुल—अतुलदक्ष। ३—नारी—नारिनि। ४—जु—सु।

निर्वाह हो सके और जिसका कहीं किसी को कुछ पता भी न चल सके। (आपने मेरे प्रेम के कारण जो) आसन, वस्त्र, सुगंध और गहने छोड़ दिए हैं, यहाँ तक तो किसी प्रकार बात बनी है पर आप जो मेरे (खिलाए) बिना पान नहीं खाते, हे कन्हैया यह आप मेरे साथ प्रीति कर रहे हैं या वैर ? क्योंकि सखियाँ मेरी खिल्ली उड़ाती हैं जिससे मुझे क्लेश होता है)।

सूचना—इस सवैये में नायक के अनुकूलत्व वस्तु से लेशालंकार व्यंग्य है।

(३३) अथ प्रकाश अनुकूल, यथा—(सवैया)

केसव सूधे बिलोचन सूधी बिलोकनि कों अवलोकें सदाई।
सूधियै बात सुनें समुझें कहि आवति सूधियै बात सुहाई।
सूधी सी हाँसी सुधा निधि सो मुख सोधि लई बसुधा की सुधाई।
सूधे सुभाइ सबै सजनी बस कैसें किये अति टेढ़े कन्हाई।५।

शब्दार्थ—बिलोचन=(द्विलोचन) दोनों नेत्र। बिलोकनि = दृष्टि, नजर। सदाई=सदैव। सुधानिधि = चंद्रमा, श्लेष से सिधाई (सुधाई) का भांडार, अत्यंत सीधा। सोधि लई=खोज कर एकत्र कर ली। बसुधा= पृथ्वी। सुधाई=सीधापन; अमृतत्व।

भावार्थ—(सखी की उक्ति नायिका प्रति) हे सखी, तेरे नेत्र सीधे हैं और तू सीधी नजर से सदा देखती भी है। तू सीधी ही बात सुनती-समझती है और सदैव सीधी ही बात कहती भी है। तेरी हँसी भी सीधी है और तेरा मुख भी सुधाकर के समान है। तूने बसुधा का सारा सुधात्व (अमृतत्व और सीधापन) ढूँढ़-ढूँढ़कर एकत्र कर लिया है। इस प्रकार सब तरह के सीधे स्वभाव की होकर तूने अत्यंत टेढ़े श्रीकृष्ण को कैसे अपने वश में कर लिया ?

अलंकार—श्रीकृष्ण जो सबसे टेढ़े रहते है वे नायिका के वश में हैं, यही अनुकूलता है। नायक को वश में कर लेने की बात सब लोग जान गए इससे 'प्रकाश अनुकूल' है।

(३४) अन्यच्च (सवैया)

मेरे तो नाहिन चंचल लोचन नाहिन केसव बानी सुधाई।
जानौं न भूषन-भेद के भावनि भूलिहू मैं नहिं भौंह चढ़ाई।
भोरेहूँ ना चितयो हरि ओर त्यों घैरु करैं इहिं भाँति लुगाई।
रंचक तौ चतुराई न चित्तहि कान्ह भए बस काहे तें माई।६।

शब्दार्थ—बानी (वाणी)=बोली। सुधाई = अमृत की भाँति, मीठी।

५—कों-सों। सुधानिधि सो-सुधाकर से। सुभाइ-स्वभाव।

६—नाहिन-नाहिनैं। बानी०-बानि सुहाई। भावनि०-भाव के भेदनि। मैं नहिं—नैनहिं; नैनन। चतुराई०-चतुराइ चित्त न। काहे०-कासु कै।

भूषन-भेद के भाव = सोलहो श्रृंगार करके पति को रिझाना। भोरहूँ = भूलकर भी। घैरु = बदनामी। लुगाई = स्त्रियाँ। रंचक = किंचित्, थोड़ी। माई = हे सखी (स्त्रियों का संबोधन)।

भावार्थ—(नायिका की उक्ति सखी प्रति) हे सखी, न तो मेरे नेत्र ही चंचल हैं और न मेरी वाणी ही मनोहर है। न तो मैं सोलहो श्रृंगार करके पति को रिझाने का ढंग ही जानती हूँ और न मैंने उन्हें रिझाने के लिए कभी भौंहें ही चढ़ाई हैं (तिरछी नजर की है)। इसी प्रकार मैंने भूलकर भी कृष्ण की ओर वैसे नहीं देखा जैसी ये स्त्रियाँ मेरी बदनामी कर रही हैं। मेरे चित्त में (पति को वश में करनेवाली) चतुरता भी किंचिन्मात्र नहीं, पर न जाने श्रीकृष्ण मेरे वश में कैसे हो गए!

अलंकार—प्रथम विभावना।

सूचना—इस सवैये में 'भोरेहूँ ना चितयो' (भूलकर भी दृष्टिपात नहीं किया) को लेकर शंका की जाती है कि नायिका ने जब श्रीकृष्ण की ओर देखा ही नहीं तो उसमें स्वकीयत्व कहाँ रहा। पर 'त्यों' शब्द से नायिका का लक्ष्य 'घैरु' की अतिशयता की ओर है। इससे उक्त शंका का परिहार हो जाता है।

(३५) **अथ दक्षिण-लक्षण**—(दोहा)

पहिले सो हिय हेतु डर, सहज बड़ाई कानि।
चित्त चलेहूँ ना चलै, दच्छिन-लच्छन जानि। ७।

शब्दार्थ—पहिलो सो = पहले का सा ही। हेतु = प्रेम। सहज = स्वाभाविक। कानि = मर्यादा।

भावार्थ—दूसरी प्रेमिकाओं का प्रिय हो जाने पर भी जो पूर्व की प्रेमिका से पहले का सा ही प्रेम करे और डरता रहे, स्वभाव से ही जिसमें बड़प्पन की मर्यादा है और चित्त चलने पर भी जो अपने को सँभालता है, वह दक्षिण नायक है।

(३६) **अथ प्रच्छन्न दक्षिण, यथा**—(कबित्त)

हरि से हितू सों भ्रम भूलिहू न कीजै मान,
हातो कियें हियहूँ तें होति हित हानियै।
लोक में अलोक आनि नीकेहूँ कों लागतु है,
सीताजू कों दूत-गीत कैसे उर आनियै।
आँखिनि जो देखियति सोई साँची केसवदास,
काननि की सुनी साँची कबहूँ न मानियै।

७—पहिलौ सो-पहिलो सों। बड़ाई—बढ़ाई। ८—भ्रम—भ्रमि। मान—मन। कियें-करि। नीकेहूँ—नीके ही; नीकहू। को लागतु—लगावत। गीत—गीता। केसोदास-केसौराइ। की न—कहा।

गोकुल की कुलटा ये यौं हीं उलटावति हैं,
आजु लौं तौ वैसेई हैं कालि की न जानियै । ८।

शब्दार्थ—हातो कियें = दूर करने से । अलोक = निंदा, कलंक । नीकेहूँ = भले को भी । गीत = कथित वृत्तांत । दूत-गीत = (बहुब्रीहि) दूत का कहा (धोबी ने सीताजी पर अपयश लगाया था जिसे 'दुर्मुख' नामक दूत ने राम को सुनाया था)। कैसे उर आनियै = कैसे विश्वास किया जाय । कुलटा = व्यभिचारिणी । उलटावति हैं = उलटा-पलटा करती रहती हैं, कुछ का कुछ कह देती हैं ।

भावार्थ—(अंतरंग सखी की उक्ति नायिका से) तू श्रीकृष्ण सरीखे प्रेमी के संबंध में भ्रम भूलकर भी मत कर। यदि तू उन्हें अपने हृदय से दूर करती है तो भी प्रेम की हानि होती है । संसार में लोग भले को भी अपयश लगा देते हैं। भला दूत ने सीताजी के संबंध में जो (कलंकवाली धोवी की) बात कही थी उस पर कैसे विश्वास किया जा सकता है ? जो आँखों से देखी जाय उसी को सत्य मानना चाहिए। कान से सुनी (बात) को कभी सत्य न समझना चाहिए। ये गोकुल की कुलटाएँ इसी प्रकार बातें पलट दिया करती हैं। आज तक तो कृष्ण पूर्ववत् ही (निरपराध) हैं, कल की कौन (राम) जाने ।

अलंकार—काव्यलिंग, दृष्टांत ।

(३७) अथ प्रकाश दक्षिण, यथा—(सवैया)

चित चोप चितैबे की तैसियै है अरु तैसियै भाँति डरात घने ।
अरु तैसेई कोमल बोल गुपाल के मोहत हैं तिहिं भाँति मनै ।
गुन तैसेई, हास-बिलास सबै हुते तैसेई केसव कौन गनै ।
सखि तू कहै आन बधू के अधीन हैं सो परतीक किधौं सपनै । ९ ।

शब्दार्थ—चोप = चाव, इच्छा । घनै = अत्यंत । मनै = मन को । हुते = थे । आन = (अन्य) दूसरी । बधू = स्त्री । परतीक = (प्रत्यक्) प्रत्यक्ष, वास्तव में । सपने = स्वप्न अर्थात् झूठ ।

भावार्थ—(नायिका की उक्ति बहिरंग सखी से) हे सखी, श्रीकृष्ण में पहले ही जैसा मुझे देखने का चित्त में चाव है और वैसे ही वे मुझसे अब भी अत्यंत डरा करते हैं। उनकी वाणी भी वैसी ही (पूर्ववत्) कोमल है और वे वैसे ही मेरे मन को मोहते भी हैं। उनमें वैसे ही गुण अब भी हैं और वैसे ही (पहले के से) सब हास-विलास भी वर्तमान हैं। इन सब (बातों) को कौन गिनाए। इसलिए तू जो यह कह रही है कि वे अब दूसरी स्त्री के वश में हो गए हैं, यह प्रत्यक्ष सत्य है अथवा स्वप्न (झूठ) है। (मुझे विश्वास

९—परतीक-परतीत ।

नहीं होता कि श्रीकृष्ण ने किसी दूसरी स्त्री से प्रेम कर लिया है)।

(३८) **बहि-अंतर गूढ़-अगूढ़ निरंतर कामकला कुल कौन गनै।**
कहि केसव **हास-बिलास सबै प्रतिद्यौस बढ़ै रसरीति सनै।**
जिनको जिय मेरेई जीव जियै सखि काय मनो बच प्रीति घनै।
तिनकों कहैं आन बधू के अधीन हैं सो परतीक किधौं सपने।१०।

शब्दार्थ—बहि = बहिः, बाहर। अंतर = भीतर।

सूचना—सरदार इस सवैये को केशव का नहीं मानते।

(३९) **अथ शठ-लक्षण**—(दोहा)

मुँह मीठी बातैं कहै, निपट कपट जिय जानि।
जाहि न डरु अपराध को, सठ करि ताहि बखानि।११।

शब्दार्थ—निपट = अत्यंत। जानि = जानो। सठ करि = 'शठ' नाम से। बखानि = बखानो, कहो।

(४०) **अथ प्रच्छन्न शठ, यथा**—(सवैया)

रुचि पंकज चंदन बंदन कंचन रंच न रोचनहू की बची।
कहिये किहिं कारन को इते लायक का पर भामिनि भौंह नची।
अनुमानत हौं अँखियाँ लखि लाल ये नाहिंनै राति के रोष रची।
तन तेरे बियोग तप्यो तरुनी तिहिं मानहुँ मो हिय माँह तची।१२।

शब्दार्थ—रुचि = छबि, शोभा। पंकज = (यहाँ पर) लाल कमल। चंदन = लाल चंदन। बंदन = सिंदूर। कंचन = सोना। रंच = थोड़ा। रोचन = रोली। कों इते लायक = इस योग्य कौन है, इसका पात्र कौन है। भामिनी = स्त्री (संबोधन में)। भौंह नची = भौंह चढ़ाई है। तची = तप्त हुई।

भावार्थ—(नायक की उक्ति मानिनी नायिका से) तुम्हारे नेत्रों के द्वारा लाल कमल, रक्त चंदन, सिंदूर, सोना और रोली की शोभा कुछ भी बच न सकी (उन्हीं की भाँति ये लाल हैं)। इसका क्या कारण है? कौन इस (क्रोध) के योग्य है जिस पर तुमने भौंहें चढ़ाई हैं? तुम्हारी लाल आँखें देखकर अनुमान करता हूँ कि ये (मेरी अनुपस्थिति के कारण) रात में किए गए रोष से लाल नहीं हैं। प्रत्युत मेरा शरीर (रात में) तुम्हारे वियोग में तप रहा था इसी कारण मानो तुम्हारी आँखें मेरे हृदय (की वियोगाग्नि) से तपकर लाल हो गई हैं। (क्योंकि तुम मेरे हृदय में निवास करती हो)।

अलंकार—सापह्नव हेतूत्प्रेक्षा।

१०—तिनकों-तिनसों। १२—रंचन-चंपक। बची-रची। अनुमानत-नमजानत।

अथ प्रकाश शठ, यथा—(कबित्त)

(४१) काननि के रँगे रंग नैननि के डोलौ संग,
नासा-अंग रसना के रसहीं समाने हौ।
और गूढ़ कहा कहौं मूढ़ हौ जू ? जानि जाहु,
प्रौढ़िरूढ़ केसवदास नीके करि जाने हौ।
तन आन, मन आन, कपट-निधान कान्ह,
साँची कहौ मेरी आन काहे कौं डराने हौ।
वे तो हैं बिकानी हाथ मेरें, हौं तिहारें हाथ,
तुम ब्रजनाथ हाथ कौन के बिकाने हौ ? ।१३।

शब्दार्थ—काननि के रँगे रंग = कानों के रंग में रँगे हुए हो अर्थात् जिसकी प्रशंसा अपने कानों से सुनते हो उसी को देखने के लिए उतावले हो जाते हो। नासा-अंग = नासिका के अंग में। नासा० = नासिका के अंग में या रसना के रस में ही डूबे रहते हो। नासिका जिस नायिका की गंध की ओर खींचती है उधर को जाते हो। जीभ जो कहने को कहती है वही कहते हो। गूढ़ = भेद की बात। प्रौढ़ि=ढिठाई। रूढ़=विचार में दृढ़। नीकें करि = भली भाँति। आन=(अन्य) दूसरी बात। निधान=खजाना। आन = सौगंध, कसम। हौं = मैं।

भावार्थ—(बहिरंग सखी की उक्ति नायक से) तुम कानों के रंग में रँगे हुए हो (कान से जिसकी प्रशंसा सुन पाते हो उसी को देखने के लिए उत्सुक हो जाते हो)। तुम अपने नेत्रों के संग-संग घूमते फिरते हो (नेत्र जिसके रूप पर मुग्ध होते है, उसे देखने के लिए नेत्रों के इशारे पर घूमते रहते हो)। यही नहीं, नासिका जिस गंध की ओर ले जाती है उधर ही जाते हो, जीभ जो कहलाती है वही कहते हो (नाक में जिस किसी की सुगंध पहुँचती है, वाणी द्वारा उसी से बात करने के लिए उत्कंठित हो उठते हो)। अधिक गूढ़ बातें और क्या कहूँ तुम नादान तो हो नहीं (कि समझाने की आवश्यकता पड़े, बस इतने से ही) समझ लो कि तुम ढिठाई के रंग-ढंग में निपुण हो और इसे लोग भली भाँति जानते भी हैं। तुम्हारे शरीर (मुख) में कुछ और मन में कुछ (और बात) रहा करती है। कृष्ण, तुम बड़े कपटी हो। तुमको मेरी सौगंध है, सच बताओ तुम क्यों डर रहे हो ? वे (नायिका) तो मेरे हाथ बिकी हैं (मेरे वश में हैं) और मैं तुम्हारे हाथ बिकी हूँ (तुम्हारे इच्छानुकूल कार्य करने को तत्पर रहती हूँ)। पर यह तो बताओ कि हे

१३—काननि०-कान रंग रँगे नैन तिनही के डोलैं संग। समाने-सौं साने। प्रौढ़िरूढ़-प्रौढ़ि रूढ़ि।

व्रजनाथ, तुम किसके हाथ बिके हो ? (तुमने किस दूसरी नायिका से प्रेम कर लिया है ?) ।

अलंकार—एकावली (चतुर्थ चरण में) ।

सूचना—'प्रौढ़िरूढ़' शब्द का प्रयोग अभी तक केवल केशव की ही कविता में मिला है । इसका प्रयोग 'रामचंद्रचंद्रिका' में भी किया गया है—
प्रौढ़िरूढ़िकोस मूढ़ गूढ़ गेह में गयो ।—रामचंद्रचंद्रिका (१६।२४) ।

अथ धृष्ट-लक्षण—(दोहा)

(४२) लाज न गारिहु मार की, छाँडि दई सब त्रास ।
देख्यौ दोष न मानही, धृष्ट सु कहिये तास ।१४।

शब्दार्थ—लाज० = गाली पाने और मार खाने की भी लज्जा नहीं है। त्रास = डर । देख्यौ० = दोष करते हुए पाए जाने पर भी अपने दोष को स्वीकार नहीं करता।

अथ प्रच्छन्न धृष्ट, यथा—(दोहा)

(४३) नेह-भरे लै लै भाजत भाजन कौन गनै दधि दूध मठाए ।
गारि दिये तें हँसै बरजें घर आवत हैं जनु बोलि पठाए ।
लाज की और कहा कहौं केसव जे सुनिये ते सबै गुन ठाए ।
मामी पियै इनकी मेरी माइ को हैं हरि आठहुँ गाँठ अठाए ।१५।

शब्दार्थ—नेह = स्नेह अर्थात् मक्खन, घी आदि । भाजन = पात्र । मठाए = मट्ठे वाले (भाजन) । बरजें = मना करने पर भी । बोलि पठाए = बुला भेजे गए । जे सुनिये ते = जो गुण सुने जाते थे वे सब । ठाए = हैं । मामी पीना = (मुहावरा) जिम्मेदारी के साथ इनकार करना, मुकर जाना । मामी = पानी (किसी कार्य के संबंध में पवित्र पानी को हाथ में लेना या पीना उस कार्य के अस्वीकार के लिए प्रमाण होता है) । आठहुँ गाँठ = सब प्रकार से (आगे छंद १६ में आठ गाँठों का उल्लेख है ।), भली भाँति । अठाए = शरारती । आठ गाँठ अठाई = छँटा हुआ धूर्त ।

भावार्थ—(नायिका की उक्ति अंतरंग सखी से) कृष्ण मेरे मक्खन, घी आदि से भरे बर्तन ले लेकर भाग जाते हैं, दही, दूध और मट्ठे के बर्तनों की तो गिनती ही नहीं । वे गाली देने पर हँसते हैं और मना करने पर भी घर में इस प्रकार आते हैं, मानो बुला भेजे गए हों। लाज की और बातें क्या कहूँ, इनके जितने गुण (अवगुण) सुने जाते थे वे सबके सब इनमें हैं। हे सखी,

---

१४—मानही–मानई । कहियै०–केसवदास । १५—मठाए–मिठाए । ते सबै०-गुन ते सब ठाए । मामी–मीमी । अठाए–हठाए ।

इनकी शरारत के लिए कहाँ तक इनकार किया जा सकता है ये तो सब प्रकार से छँटे हुए उपद्रवी हैं।

अलंकार—लोकोक्ति (चतुर्थ चरण में)।

अथ प्रकाश धृष्ट-लक्षण—(दोहा)

(४४) मनसा बाचा कर्मना, बिहँसनि चितवनि लेखि।
चलनि चातुरी आतुरी, आठौ गाँठ बिसेषि।१६।

शब्दार्थ—लेखि = लेखो, समझो। चलनि = चाल।

अथ प्रकाश, धृष्ट यथा—(सवैया)

(४५) सौंह को सोचु सकोचु न पाँच को डोलत साहु भए करि चोरी।
बैननि बंचकताई रची रति नैनन के सँग डोलत डोरी।
लाज करै न डरै हित-हानि तें आनि अरे जिय जानिकै भोरी।
नाहिनै केसव साख जिन्हैं बकिकै तिनसों दुखवै मुख को री।१७।

शब्दार्थ—सौंह = सौगंध। पाँच = पंच। साहु = (साधु) सच्चे, ईमानदार। बैन = (वचन) वाणी। वंचकताई = धूर्तता। रति = प्रीति, अनुराग। डोरी = डोरियाई हुई, संग लगी हुई। आनि=आकर। अरे = अड़ गए। जिय जानि कै भोरी = यह जानकर कि भोली भाली हूँ (मूर्ख हूँ)। साख = प्रमाण, एतबार। बकिकै = बकवाद करके। दुखवै = पीड़ित करे, कष्ट दे।

भावार्थ—(नायिका की उक्ति बहिरंग सखी से) हे सखी, श्रीकृष्ण को न तो सौगंध की ही परवा है और न पंच का ही कोई संकोच है। वे चोरी करके भी साहु बने फिरते हैं (दूसरी स्त्री के साथ प्रेम करके भी अपने को निर्दोष बतलाते हैं)। उनकी बातों में धूर्तता भरी है और अनुराग नेत्रों के साथ डोलता है (उनके नेत्रों में दूसरी स्त्रियों की प्रीति समाई हुई है) उन्हें न तो लज्जा ही आती है न वे अपने हित की हानि से ही डरते हैं। वे मुझे भोली भाली समझकर यहाँ पर आ डटे हैं। जिनकी बातों का कोई एतबार नहीं उनके साथ बकवाद करके अपने मुख को कौन पीड़ा दे (उनसे बात भी नहीं करना चाहती)।

अलंकार—विशेषोक्ति (प्रथम चरण में)।

(दोहा)

(४६) बरने कबि-नायक सबै, नायक इहि अनुसार।
सब-गुन-लायक नायिका, सुनि अब बहुत प्रकार।१८।

इति श्रीमन्महाराजकुमारइंद्रजीतविरचितायां रसिकप्रियायां चतुर्विधनायकप्रच्छन्नप्रकाशवर्णनं नामद्वितीयः प्रभावः।२।

१७—डोलति–डोरति। जानिकै–जानि कि। कै तिन–ऐसेनि।

१८—बरने–बरनेहँ।

तृतीय प्रभाव

अथ नायिका-जाति-वर्णन—(दोहा)

(४७) प्रथम पद्मिनी चित्रिनी, जुवती जाति प्रमान।
बहुरि संखिनी हस्तिनी, केसवदास बखान।१।

अथ पद्मिनी-लक्षण—(दोहा)

(४८) सहज सुगंध सरूप सुभ, पुन्यप्रेम सुखदानि।
तनु तनु भोजन रोष रति, निद्रा मान बखानि।२।

शब्दार्थ—सहज = स्वाभाविक। पुन्यप्रेम = पवित्र प्रेम। सुखदानि = सुखदायक। तनु = दुबला, थोड़ा, सूक्ष्म। तनु = शरीर।

(४९) सलज सुबुद्धि उदार मृदु, हास बास सुचि अंग।
अमल अलोम अनंग-भुव, पद्मिनी हाटक-रंग।३।

शब्दार्थ—सलज = लज्जावती। बास=वस्त्र। अलोम=लोमरहित। अनंगभुव=काम-क्रीड़ा की भूमि। हाटक-रंग = सुवर्ण।

पद्मिनी, यथा—(कवित्त)

(५०) हँसत कहत बात फूल से झरत जात,
गूढ़ भूरि हाव-भाव कोक की सी कारिका।
पन्नगी नगी-कुमारि आसुरी सुरी निहारि,
डारौं वारि किन्नरी नरी गँवारि नारिका।
तापै हौं कहा ह्वै जाउँ बलि जाउँ केसोदास,
रची बिधि एक ब्रजलोचन की तारिका।
भौंर से भँवत अभिलाष लाख भाँति दिव्य,
चंपे की सी कली बृषभान की कुमारिका।४।

शब्दार्थ—भूरि = बहुत। कोक = कोकशास्त्र के रचयिता कोकदेव। की सी = समान। कारिका = (कोकशास्त्र के) नियमों के श्लोक। गूढ़० = गूढ़ हाव-भावों के निमित्त कोक की कारिका के समान है (कोक के सूत्रों में जिन हाव-भावों का वर्णन है उनका मूर्तिमान् रूप है)। पन्नगी = सर्पिणी।

१—केसव०-केसवराइ सुजान। ३—सलज-सहज। भुव-भू। ४—डारौं०-वारि डारौं, डारौं नारि। गँवारि-गमारि। केसौ०-केसोराइ। भँवत-भ्रमत।

नगी-कुमारि = पर्वत-कन्या । नरी = मानवी । नरी० = गँवार मानवी स्त्रियाँ उसके सामने क्या हैं (कुछ नहीं)। तापै हौं कहा ह्वै जाउँ = उस पर मैं और क्या हो जाऊँ (सिवा निछावर होने के)। बिधि = ब्रह्मा। ब्रजलोचन की तारिका = ब्रजवासियों के नेत्रों की पुतली। बृषभान = राधिका के पिता।

उक्ति—सखी द्वारा रूपवर्णन।

अलंकार—उपमा।

सूचना—चंपे के पास भौरों के घूमने का भाव यह है कि जिस प्रकार भौंरा चंपे के चारो ओर मँडराया करता है उसपर बैठ नहीं सकता उसी प्रकार राधिकाजी के लाखों अभिलाष होते रहते हैं।

व्याकरण—'अभिलाष' शब्द पुंलिंग है।

अथ चित्रिणी-लक्षण—(दोहा)

(५१) नृत्य गीत कबिता रुचै, अचल चित्त चल दृष्टि।
बहिरति रति अति सुरत-जल, मुख सुगंध की सृष्टि ।५।

शब्दार्थ—बहिरति = बहिर्रति, बाहरी रति (आलिंगन, चुंबन, स्पर्श, मर्दन, नखदान, रददान, अधरपान)। रति = प्रेम। सुरत-जल = काम-सलिल, स्मरजल।

(५२) बिरल लोम तन मदन-गृह, भावत सकल सुबास।
मित्र-चित्र-प्रिय चित्रिनी, जानहु केसोदास ।६।

चित्रिणी, यथा—(सवैया)

(५३) बोलिबो, बोलनि को सुनिबो, अवलोकनि कै अवलोकनि जोते।
नाचिबो गाइबो बीन बजाइबो रीझि रिझाइ कों जानति तोते।
राग बिरागनि के परिरंभन हास बिलासनि तें रति कोते।
तौ मिलतौ हरि मित्रहि कों सखि ऐसे चरित्र जौ चित्र में होते।७

शब्दार्थ—अवलोकनि = चितवन। जोते = (जोवते) हम देखते। तोते = तुमसे। राग = प्रेम, अनुराग। बिराग = मान, उदासीनता। परिरंभन = आलिंगन। रति कोते = प्रेम बढ़ाते।

भावार्थ—(सखी की उक्ति नायिका से) हे सखी, स्वयम् बोलना और दूसरों की बोली सुनना, स्वयम् देखना और देखकर दूसरे की चितवन देखना नाचना, गाना, बाँसुरी बजाना, रीझना, दूसरों को रिझाना (जिस प्रकार श्रीकृष्ण को तुमसे जानती समझती हूँ, उसी प्रकार इस चित्र का भी तुमसे जानती समझती)। (अनुकूल रहने पर) प्रेमपूर्वक स्वयम् रूठने पर विराग-भरा, उदासीनतायुक्त आलिंगन तथा हास-विलास से प्रेम का संवर्धन भी उसी प्रकार यह करता जिस प्रकार श्रीकृष्ण करते हैं। यदि इस चित्र में ये सब

५—बहिरति–बिहरत। रति-रत। मुख–मधु।

अलंकार—अन्योक्ति और रूपकातिशयोक्ति ।

सूचना—सपत्नी के यहाँ से लौटकर आनेवाले नायक पर नायिका रुष्ट हो रही है । यहाँ कदली से अभिप्राय नायिका की जंघाओं से है, बदरी सपत्नी के टीले रोम हैं, चंपकली की स्थली नायिका की नासिका है, मलिन नलिनी मुख है, नाग-लवंग आदि उसके मुख की बास है, छुहारा और दाख अधर-रस ह, ऊँटकटारा सपत्नी के शरीर की तीखी गंध है ।

अथ हस्तिनी-लक्षण—(दोहा)

(५७) थूल अंगुरी चरन मुख, अधर भृकुटि कटि बोल ।
मदन-सदन, रद कंधरा, मंद चालि चित लोल ।११।

शब्दार्थ—थूल = मोटी । 'थूल' का अन्वय 'अंगुरी' से 'बोल' तक है । रद = दांत । कंधरा = गर्दन । 'मंद' का अन्वय 'रद कंधरा, चालि' से करें । 'मंद' का अर्थ 'रद' के साथ लघु, 'कंधरा' के साथ 'छोटी', 'चालि' के साथ 'धीमी' । (अथवा 'कंदरा' का अर्थ गुफा या गड्ढा करके 'रदकंदरा' का अर्थ 'विरलदंती' कर लें । तब 'मंद' का अन्वय 'चालि' से ही होगा ।)

(५८) स्वेद मदन-जल द्विरद-मद-गंधित भूरे केस ।
अति तीछन बहु लोम तन, भनि हस्तिनि इभ-भेस ।१२।

शब्दार्थ—मदन-जल = कामसलिल । द्विरद = हाथी । इभ = हाथी ।

हस्तिनी, यथा—(सवैया)

(५९) सब देह भई दुरगंधमई मतिअंध दई सुख पावत कैसे ।
कछु साल तें लोम बिसाल से हैं स्रुतिताड़न केसव बोल अनैसे ।
अलि ज्यों मलिनी नलिनी तजिकै करिनी के कपोलनि मंडित तैसे ।
छिति छोड़िकै राजिसिरी बस पाप निरैपद राज बिराजत जैसे ।१३।

शब्दार्थ—मतिअंध = बुद्धिहीन । साल = (शल्य) कांटा । बिसाल = बढ़कर । स्रुतिताड़न = कर्णकटु । अनैसे = (अनिष्ट) बुरे । करिनी = हस्तिनी । छिति = (क्षिति) पृथ्वी । राजिसिरी = राज्यश्री । बस पाप = पाप के कारण । निरै = (निरय) नरक । पद = स्थान ।

भावार्थ—(नायिका की उक्ति सखी से) हे सखी, भ्रमर अपने मन में कमलिनी को मलिन समझकर त्याग देता है और बुद्धिहीन होकर दुर्गंधयुक्त देहवाली, काँटे से भी बढ़कर कष्टप्रद रोमवाली और कर्णकटु एवम् अप्रिय वचन बोलनेवाली हस्तिनी के गंडस्थल पर मड़राता है । उसका ऐसा करना

११—कटि-कठि; कटु । कंधरा-कंदरा । १२—इभ०-इहि बेस । १३—भइ-मई । मई-गई ।

वैसा ही है जैसे पाप के कारण कोई राजा पृथ्वी की राज्यश्री छोड़कर नरक-लोक में निवास करे।

अलंकार—उदाहरण, रूपकातिशयोक्ति और अन्योक्ति।

सूचना—यहाँ नायिका के कहने का तात्पर्य है कि नायक मुझ जैसी पद्मिनी (नायिका) को छोड़कर गंदी एवम् कर्कशा हस्तिनी (नायिका) के पास जाता है। नलिनी और करिनी शब्दों के दुहरे अर्थ के कारण इस सवैये का अर्थ हस्तिनी नायिका और नायक (भ्रमर) पर घटित होता है।

(दोहा)

(६०) ता नायक की नायिका, ग्रंथनि तीनि प्रमान।
स्वीया परकीया अवर, स्वीया-परकीया न।१४।

शब्दार्थ—अवर = (अपर) और। स्वीया-परकीया न = स्वकीया और परकीया नहीं अर्थात् सामान्या, गणिका।

सूचना—नायिकाओं के ये भेद धर्मानुसार किए जाते हैं।

अथ स्वकीया-लक्षण

(६१) संपति बिपति जो मरनहू, सदा एक अनुहारि।
ताहि स्वकीया जानिये, मन-बच-कर्म बिचारि।१५।

शब्दार्थ—अनुहारि = समान। बच=वचन।

स्वकीया-भेद

(६२) मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ गति, तिनकी तीनि बिचारि।
एक एक की जानियहुँ, चारि चारि अनुहारि।१६।

शब्दार्थ—गति = अवस्था।

मुग्धा-भेद

(६३) नवलबधू नवजोबना, नवलअनंगा नाम।
लज्जा लिये जु रति करै, लज्जाप्राय सु बाम।१७।

शब्दार्थ—लज्जाप्राय = लज्जाप्राया। बाम = स्त्री।

अथ नवलवधू-मुग्धा-लक्षण

(६४) तासों मुग्धा नवबधू, कहत सयाने लोइ।
दिन दिन दुति दूनी बढ़ै, बरनि कहै कबि कोइ।१८।

१४—प्रमान—बखान। स्वीया—स्वकिया। स्वीया०—सामान्या सु प्रमान। **१५—ताहि—ताको। जानियै—जानिजहुँ। बच कर्म—क्रम बचन। १६—गति—गनि। की जानियहुँ—के जानिये। १७—जोबना—यौवना। बाम—धाम—। १८—तासों—आसों। कोइ—सोइ।**

यथा—(सवैया)

(६५) मोहिबो मोहन की गति कों गतिही पढ़ी बैन कहा धौं पढ़ैगी।
ओप उरोजनि की उपजें दिन, काइ मढ़ अँगिया न मढ़ैगी।
नैननि की गति गूढ़ चलाचल केसवदास **अकास चढ़ैगी।**
माई, कहाँ यह माइगी दीपति जौ दिन द्वै इहि भाँति बढ़ैगी।१९।

शब्दार्थ—मोहन = श्रीकृष्ण और मोहन मंत्र। गति = मनोगति, मन की चेतना। गति ही = चाल ही। बैन = (वचन) वाणी। ओप = कांति (बाढ़)। उपजैं = उत्पन्न होने पर। दिन = दिनदिन, नित्य। काइ = काया। चलाचल = चंचल तथा स्थिर। अकास चढ़गी = (मुहावरा) सर्वोपरि होगी। माइगी = अँटेगी।

भावार्थ—(सखी की उक्ति सखी से) हे माई, जब चाल ही से यह मोहन की चेतना को मोहित करना पढ़ चुकी है (चाल से ही मोहन को मोह लेती है) तब वचनों से (बोलकर) न जाने क्या (मंत्रादि) पढ़ेगी (कैसा जादू डाल देगी)। कुचों में कांति (बाढ़) उपजने पर काया तो स्थूल हो जाएगी पर वे स्वयम् चोली में न अँट सकेंगे। नेत्रों की गूढ़, चंचल एवम् अचंचल गति (यदि इसी प्रकार बढ़ती रही तो) सर्वोपरि हो जायगी। यह (शरीर की) शोभा यदि दो (कुछ) दिनों तक इसी भाँति बढ़ती रही तो कहाँ अँट सकेगी ? (कहीं नहीं)।

अलंकार—अधिक (आधेय से आधार के अधिक होने में)।

अथ नवयौवनभूपिता-मुग्धा-लक्षण—(दोहा)

(६६) सो नवजोबनभूषिता, मुग्धा को यह बेस।
बालदसा निकसै जहाँ, जोबन को परबेस।२०।

शब्दार्थ—बेस = (वेश) रूप। बालदसा = शिशुता, लड़कपन। निकसै = छुटे, हटे। परबेस = (प्रवेश)।

यथा—(सवैया)

(६७) केसव फूलि नचीं भृकुटीं कटि लूटि नितंब लई बहुकाली।
बैननि सोच सँकोच सु नैननि छूटि गई गति की चल चाली।
थोसक धीर धरौ न धरौ अब लै तुमकों मिलिबो बनमाली।
वाको अयान निकारन कौं उर आए हैं जोबन के अबिताली।२१।

शब्दार्थ—फूलि = प्रसन्न होकर। बहुकाली = बहुत दिनों की। सँकोच = लज्जा। चल = चंचल। थोसक = थोड़े समय तक। बनमाली = श्रीकृष्ण (संबोधन में)। वाकौं = उस (नायिका) का। अयान = (अज्ञान) भोलापन। अबिताली = अफताली, प्रबंधक (किसी स्थान पर पहले से जाकर राजा के ठहरने का प्रबंध करनेवाले)।

१९—पढ़ी–पढ़ै। काइ–काहि।

भावार्थ—(सखी की उक्ति नायक से) हे कृष्ण, थोड़े समय तक धैर्य धरो अथवा न धरो अब मैं (उस नायिका को, लेकर तुमसे मिलूँगी। क्योंकि उसके (लड़कपन के) भोलेपन को निकालने के लिए यौवन का अफताल (प्रबंध) उसके हृदय (वक्षस्थल) में हो चुका है। जिसके कारण हर्ष से उसकी भौंहें नाच उठी हैं। बहुत दिनों की (लड़कपन की पाली हुई) उसकी कमर को नितंबों ने लूट लिया है (कमर पतली और नितंब स्थूल हो गए हैं)। वह सोच समझकर बोलने लगी है। नेत्रों में लज्जा आ गई है तथा उसकी चाल से चंचलता दूर हो गई है।

अलंकार—समाधि (यौवनावस्था के आगमरूप कारण की प्राप्ति से मिलाने का कार्य सुगम होने से)।

सूचना—(१) खंडित हस्तलिखित प्रति और लीथोवाली प्रति में इसके अनंतर यह सवैया मिलता है—

धनु भ्रू धरि लोचन लोल अभोल सो बान कटाच्छ की कोर कढ़ी।
मुख-माधुरी बानी बसी चतुराई सु केसव मोहिनी साथ पढ़ी।
कुच तंबू तने तन लाज बिराजति बार गहे चहुँ ओर मढ़ी।
न बढ़ो दुति बालहिं बालकता हरि, अंग अनंग की फौज चढ़ी।

(२) खंडित प्रति में एक और उदाहरण भी इसके आगे मिलता है। वही लीथोवाली प्रति में नवलअनंगा के उदाहरण में दिया गया है। देखिए आगे छंदसंख्या २३ की सूचना (२)।

अथ नवलअनंगा-मुग्धा-लक्षण—(दोहा)

(६८) नवलअनंगा होइ सो, मुग्धा केसवदास।
खेलै बोलै बालबिधि, हँसै त्रसै सबिलास।२२।

शब्दार्थ—बालबिधि = लड़कपन की भाँति। त्रसै = डरै।

यथा—(कबित्त)

(६९) चंचल न हूजै नाथ, अंचल न ऐंचो हाथ,
सोवै नेक सारिकाहू सुक तौ सुवायौ जू।
मंद करौ दीप-दुति चंद-मुख देखियत,
दौरिकै दुराइ आऊँ द्वार त्यों दिखायौ जू।
मृगज - मराल - बाल बाहिरे बिडारि देहुँ,
भायौ तुम्हें केसव सु मोहू मन भायौ जू।

२१—नचौं–नचैं। अयान–अपान। अबिताली–अवताली।

[पाठांतर—लोल०–लोलत मेल सु कांड। मोहिनी०–मोहनता सु। हरि–हति।]

छल के निवास ऐसे बचन - बिलास सुनि,
चौगुनो सुरतिहूँ तें स्याम सुख पायौ जू।२३।

शब्दार्थ—हाथ = हाथ से। सारिकाहू = सारिका (मैना) भी। द्युति= ज्योति, प्रकाश। डुराइ आऊँ= बंद कर दूँ। दिखायौ = दिखाई पड़ता हुआ, खुला हुआ। मृगज = मृग के छौने। मराल-बाल= हंस के बच्चे (जो पाले गए हैं)। बाहिरै बिडारि देहुँ = बाहर निकाल दूँ। छल के निवास= कपट-क्रीड़ा में कुशल (श्याम का विशेषण)। बिलास = क्रीड़ा। सुरतिहूँ = रतिजन्य आनंद से भी।

भावार्थ—(नायिका की उक्ति नायक से) हे नाथ, उतावली मत कीजिए। हाथ से आँचल मत खींचिए। तोते को तो सुला दिया, अब जरा सारिका को भी सो जाने दें। दीपक बुझा दीजिए। चंद्र का मुख (बिंब) दिखाई पड़ रहा है। जरा दौड़कर खुले हुए दरवाजे को तो बंद कर आऊँ। हिरण तथा हंस के बच्चों को (कमरे से) बाहर कर आऊँ। जो कामक्रीड़ा आप चाहते हैं वही मेरे मन को भी भाती है (मैं भी वही चाहती हूँ)। कपट-क्रीड़ा में कुशल श्रीकृष्ण ने जब ये आनंददायक वचन सुने तो उन्हें रतिजन्य आनंद से भी अधिक आनंद मिला।

अलंकार—द्वितीय प्रहर्षण।

सूचना—(१) यहाँ नायिका का त्रास वर्णित है। वह सन्नाटा और एकांत चाहती है।। मुग्धात्व प्रमाणित करने के लिए सूरति मिश्र ने ये वचन शुक-सारिका के माने हैं।

(२) इस छंद के आगे लीथोवाली प्रति में एक कवित्त और दिया गया है। यही खंडित प्रति में 'नवयौवनभूषिता' के बढ़े उदाहरण में पाया जाता है—

अन्यच्च—(कवित्त)

मुकतामनीन की है मुकतिपुरी सी नाक,
दार्‌यों दंत दाननि कों हँसति बतीसी है।
मोहन के मंत्रनि के अखरानि की सी रेख,
भृकुटी सुबेष भाव-भेद छबि-छी सी है।
चित्त-चतुराई उझकी सी उझके से उर,
कुच सकुचौ तो नयननि उझकी सी है।
केसौदास रूप की सी साला प्रेम की सी माला,
आजु लौं न देखी सुनी जैसी आजु दीसी है।

२३—ऐंचो खेंचो। सारिका हू—सारिकाऊ। दौरिके—दौतिके। त्यौं—ता। चौगुनो—सौगुनो।

अथ लज्जाप्रायारति-मुग्धा-लक्षण (दोहा)

(७०) **मुग्धा लज्जाप्रायरति, बरनत कबि इहिं रीति।**
करै जु रति अति लाज सों, पतिहिं बढ़ावति प्रीति।२४।

यथा—(सवैया)

(७१) **बोली न हौं वे बुलाइ रहे हरि पाइ परे अरु ओलियौ ओड़ी।**
केसव **भेंटिबे कौं भरि अंक छुड़ाइ रहे जक हौं नहिं छोड़ी।**
सूधें चितैबे कौं केतौ कियो सिर चाँपि उठाइ अँगूठनि ठोढ़ी।
मैं भरि चित्त तऊ चितयो न रही गड़ि नैननि लाज निगोड़ी।२५।

शब्दार्थ—ओलियौ ओड़ी='ओली ओड़ना' का अर्थ है—दुपट्टा या अंचल पसारकर किसी वस्तु की भिक्षा माँगना, भीख चाहना। केतो कियो= अनेक उपाय किए। निगोड़ी = निरवंसी, एक प्रकार की गाली।

भावार्थ—(नायिका की उक्ति सखी प्रति) हे सखी, नायक ने मुझे बुलाना चाहा परंतु मैं (लज्जा के कारण) नहीं बोली। तब वे मेरे पैरों पड़े और ओली ओड़ी। आलिंगन करने के लिए कहा, पर मैंने हठ नहीं छोड़ा (अस्वीकार ही करती रही)। तब उन्होंने संमुख देखते रहने के लिए अनेक उपाय किए। उन्होंने एक हाथ (के अँगूठे) से सिर दबाया और दूसरे (दाहिने) हाथ के अँगूठे से ठोढ़ी दबाई (हाथ से सिर ऊपर किया पर) मैंने उन्हें चित्त भर नहीं देखा। निगोड़ी लज्जा मेरे नेत्रों में कुछ ऐसी ही गाड़ी बैठी थी।

अलंकार—विशेषोक्ति।

मुग्धाशयन-लक्षण—(दोहा)

(७२) **मुग्धा सोइ रहै नहीं, पियसँग सुनहु सुजान।**
जौ क्यों हूँ सोवै सखी, सुख नहिं ताहि समान।२६।

यथा—(सवैया)

(७३) **पाइ परें मनुहारि कियें पलिका पर पाउँ धरयो भय-भीने।**
सोइ गई कहि केसव **कैसहूँ कोरहिं कोरिक सौंहनि कीने।**
साहस कै मुख सों मुख छ्वै छिन में हरि मानि सबै सुख लीने।
एक उसाँसहिं के उससे सिगरेई सुगंध बिदा-करि दीने।२७।

[पाठांतर—दंत०-कैसे। दाननि कों-दांत मुख; नीको अति। हँसति-लखति। अखरानि-आखरन। सकुचौ०-सकुचे से बैन नैन। केसोदास-केसौराइ। आजु-अब। देखी०-सुनी जैसी तैसी।]

२४—कबि-हैं। बढ़ावति-बढ़ावै। २५—हौं नहिं-मैं पै न। गड़ि-गहि। २६—सुनहु-सुनो। २७—कियें-करें। कोरहिं०-कोरक रोर हूँ। सबै-महा।

शब्दार्थ—मनुहारि कियें=चिरौरी करने पर। पलिका=पलंग। भय-भीनै=भयभीत। कोरहिं=क्रोड़ में, गोद में। कोरिक=करोड़, बहुत अधिक। उससे=निकलने पर।

भावार्थ—(सखी की उक्ति सखी से) हे सखी उस (नायिका) ने (नायक द्वारा) पैरों पड़ने और चिरौरी करने पर (किसी प्रकार) भयभीत होकर पलंग पर पर रखा। (पुनः) करोड़ों कसमें खाने पर (किसी प्रकार) गोद में सो गई। तब साहस करके उन्होंने (नायक ने) मुख से मुख छुलाया। क्षण मात्र के इस सुख में उन्होंने सभी सुख प्राप्त कर लिए। उस (नायिका) के एक ही उछ्वास के निकलने से और सभी सुगंधें बिदा हो गईं। (दब गईं—उसके मुख की सुवास के सर्वोत्कृष्ट होने के कारण)।

अलंकार—हेतु।

मुग्धा के सुख-लक्षण—(दोहा)

(७४) मुग्धा सुख्ख करै नहीं, सपनेहूँ सिख मानि।
छल-बल कीनें होति है, सुख-सोभा की हानि।२८।

शब्दार्थ—कीनें=करने से।

यथा—(कवित्त)

(७५) सुख दै सखीनि बीच दै कै सौहैं ग्वाइ कै,
खवाइ कछू स्वाइ बस कीनी बरुबसु है।
कोमल मृनालिका सी मल्लिका की मालिका सी,
बालिका जु डारी मीड़ि मानुसु कि पसु है।
जानै न बिभात भयो केसव सुनै को बात,
देखौ आनि गात जात भयो किधौं असु है।
चित्र सी जु राखी वह चित्रिनी बिचित्र यह,
देखौ धौं नए रसिक या में कौन रसु है।२६।

शब्दार्थ—सुख दै=सुख की सामग्रियाँ जुटाकर। बीच दै=मध्यस्थ बनाकर। सौंह=शपथ। खवाइ कछू=कुछ मादक द्रव्य खिलाकर। बरु-बसु=बल से, जबरन। मृनालिका=कमलनाल। मल्लिका=बेला। मीड़ि=मसलकर। मानुसु=मनुष्य। बिभात=प्रभात, प्रातःकाल। आनि=आकर। गात=(गात्र) शरीर। असु=प्राण। धौं=क्यों नहीं। रसु=आनंद।

२८—सिख-सुख। २६—ग्वाइ-खाइ। कि-के। वह-यह। यह-अति; गति। देखौ-कहि; कहो

भावार्थ—(सखी की उक्ति नायक से) आपने बरबस उसे (नायिका को) सुख देकर (सुख की सामग्रियाँ जुटाकर), सखियों को मध्यस्थ बनाकर, शपथ खाकर, कुछ नशीली वस्तुएँ खिलाकर तथा सुलाकर अपने वश में किया। फिर कमलनाल सी कोमल एवम् बेले की माला की भाँति (सुकुमार एवम् सुगंध) बाला को मसल डाला। आप मनुष्य हैं या पशु ? (क्योंकि आपके कर्म कठोर हैं, निर्दयतापूर्ण हैं) आपको अभी तक यही पता नहीं चला कि प्रभात हो गया है (अभी तक आपने उसे मुक्त नहीं किया)। मेरी बात ही नहीं सुन रहे हैं। जरा इसके शरीर को तो देखिए, जान पड़ता है प्राण निकल से गए हैं। उस चित्रिनी (नायिका) को आपने विचित्र गति (ढंग) से रखा है, वह तो चित्र-सी (स्थिर निर्जीव) हो गई है। हे नए रसिक, देखते क्यों नहीं ? आपको ऐसा कृत्य करने में कौन-सा आनंद मिला ?

अलंकार—विषम।

मुग्धा को मान—(दोहा)

(७६) **मुग्धा मान करै नहीं, करै तौ सुनहु सुजान।**
त्यों डरपाइ छुड़ाइयै, ज्यों डरपै अज्ञान।३०।

शब्दार्थ—डरपाइ = भयभीत करके।

यथा—(सवैया)

(७७) **बोलै न बाल बुलावतहूँ नख-रेख लिखै भुव प्रेम-परेखौ।**
आपनो हाथ बिलोकि-बिलोकि कह्यो तब केसव बुद्धिबिसेखौ।
छोटी-बड़ी बिधि-रेख लिखी जुग आयु की रेख सु कौन जु लेखौ।
प्रेम तें बोल सह्यो न पर्‌यो अकुलाइ कह्यो पिय कैसी है देखौ।३१।

शब्दार्थ—बाल = नायिका। भुव = भूमि। प्रेम-परेखौ = प्रेम की परीक्षा में, प्रेम के मान में। बुद्धिबिसेखौ = विशेषबुद्धिवाले (नायक) ने। बिधि = ब्रह्मा। जुग = दो। सु = वह। लेखै = समझी जाए। देखौ = देखा जाए।

भावार्थ—(मुग्धा ने सखियों के कहने से मान किया है, नायक चतुराई से उसे भयभीत करके मान छुड़ा रहा है) नायिका (नायक के) बुलाने पर भी नहीं बोलती, प्रेम का मान ठानकर नखों से पृथ्वी पर रेखाएँ खींच रही है। यह देखकर चतुर नायक ने अपना हाथ देख-देखकर यह कहना आरंभ किया कि ब्रह्मा ने छोटी-बड़ी दो रेखाएँ बनाई हैं। इनमें आयु की रेखा कौन सी मानी जाय ? प्रेम के कारण नायिका इन वचनों को सह न सकी (वह डर गई कि कहीं आयु की रेखा छोटी ही न हो, नायक की आयु कम ही न

३०—करै–करहि। सुनहु०–सुनौ–निदान। त्यों–यों ज्यों। ३१—परेखौ, लेखौ आदि–परेखैं, लेखैं आदि।

हो), उससे मौन नहीं रहा गया। उस (नायिका) ने व्याकुल होकर कहा—'प्रियतम, कैसी रेखा है, देखें तो'।

अलंकार—विशषोक्ति (बुलावतहूँ न बोलै), पर्यायोक्ति (दूसरी)।

(७८) अथ मध्या के चतुर्भेद—(दोहा)

मध्या आरुढ़जोबना, प्रगलभबचना जानि।
प्रादुर्भूतमनोभवा, सुरतिबिचित्रा आनि।३२।

शब्दार्थ—आनि = अन्य।

(७९) अथ मध्या-आरूढ़यौवना-लक्षण—(दोहा)

मध्या आरुढ़जोबना, पूरन जोबनवंत।
भाग सुहाग भरी सदा, भावति है मन कंत।३३।

यथा—(कबित्त)

(८०) चंद को सो भाग भाल, भृकुटी कमान ऐसी,
मैन कैसे पैने सर नैननि बिलासु है।
नासिका सरोज, गंधबाह से सुगंधबाह,
दारयों से दसन कैसौ बीजुरी सो हासु है।
भाई ऐसी ग्रीव-भुज, पान सो उदर अरु,
पंकज से पाइ गति हंस की सी जासु है।
देखी है गुपाल एक गोपिका मैं देवता सी,
सोने सो सरीर सब सोंधे की सी बासु है।३४।

शब्दार्थ—चंद को भाग = चंद्र के भाग सा, आधे चंद के समान। भाल = ललाट। कमान = धनुष। मैन = मदन, कामदेव। पैने = तेज, तीक्ष्ण। सर = बाण। बिलासु = खेल, नेत्रों की गति। गंधबाह = सुगंध को वहन करनेवाली, सुगंधित वायु। सुगंधबाह = सुगंध का प्रवाह (मुखवास)। दारयों = अनार। दसन = दाँत। भाई = खराद पर से उतारी हुई (सुडौल)। पान = पत्ता (पीपल का)। पंकज = कमल। देवता = देवबाला। सोंधे = सुगंध। बासु = वास, सुगंध।

भावार्थ—(सखी की उक्ति नायक से) हे गोपाल, मैंने एक देवबाला सी (अत्यंत रमणीय) गोपिका देखी है। उसका भाल चंद्रार्ध के समान है, भौंहें धनुषाकार हैं, नेत्रों का विलास काम के तीक्ष्ण बाणों के समान है। नासिका कमल सी, मुखवास सुगंधित पवन के समान है। दाँत अनार के दाने के समान हैं और हास बिजली के समान है। ग्रीवा और भुजाएँ खराद पर से उतारी हुई सी हैं। उदर (पीपल के) पत्र के समान है, चरण कमल की भाँति

३२—जानि-जान। आनि-मान। ३४—ऐसी—की सी। कैसो-कैसी।

हैं। चाल हंस की सी है। उसके सोने की भाँति (गोर) शरीर में समस्त सुगंधों की सी सुगंध है (सोने में सुगंध नहीं होती परंतु इसके शरीर में सुगंध भी है)।

अलंकार—धर्मलुप्तोपमा की माला।

सूचना—(१) नायिका के सौंदर्य की अधिकता वस्तु से नायक क मिलाना वस्तु व्यंग्य है। (२) केशव ने 'देवता' शब्द को संस्कृत की ही भाँति स्त्रीलिंग माना है। (३) 'बासु' शब्द स्त्रीलिंग है। उसमें उकारांत रूप मिथ्यासादृश्य से और तुकांत के अनुरोध से है।

अथ प्रगल्भवचना-मध्या-लक्षण—(दोहा)

(८१) **प्रगलभबचना जानि तिहि, बरनौं केसवदास।**
बचननि माँझ उराहनो, देइ दिखावै त्रास।३५।

शब्दार्थ—तिहि = उसको। माँझ = में। उराहनो = उपालंभ।

यथा—(सवैया)

(८२) **कान्ह भलें जु भलें ढँग लागे भलें इन नैननि के रँग रागे।**
जानति हौं सबहीं तुम जानत आपु से केसव लालच लागे।
जाहु नहीं; अहो जाहु चले, हरि जात जितै दिनहीं बनि बागे।
देखि कहाँ रहे धोखें परे उबटौगे जू देखौ ब देखहु आगे।३६।

शब्दार्थ—भलें ढँग लागे = अच्छा ढंग पकड़ा है। नैननि के रँग रागे= नेत्रों के रंग में अनुरक्त होकर (जिससे नेत्र मिल जाते हैं उसी के साथ प्रेम कर बैठते हैं)। लालच लागे = लोभ में लगे हुए। दिनहीं बनि बागे = जहाँ प्रतिदिन वेशभूषा बनाकर जाते हैं। उबटौगे = चित्त से उतर जाओगे। देखौ ब देखहु आगे = अभी क्या है, आगे देखिए इस करतूत से आप दिन-दिन चित्त से उतरते ही जाएँगे।

भावार्थ—(नायिका नायक की अन्यस्त्री-विषयक प्रीति को लक्षित करके व्यंग्यपूर्वक उलाहना देती है) हे कान्ह, आप बड़े भले हैं और आपने अच्छा ढंग पकड़ा है। यह भी अच्छा ही किया कि नेत्रों के प्रेम में अनुरक्त हुए (अन्य नायिकाओं से नेत्र मिलाकर उन पर आसक्त हुए), मैं (खूब) समझती हूँ। स्वयम् लोभ में पड़े हुए आप औरों को भी अपनी तरह (लालची) समझते हैं। जाइए, जाते क्यों नहीं। जहाँ आप प्रतिदिन वेशभूषा बनाकर जाया करते हैं, वहीं जाइए न। आप धोखे में पड़े हुए मुझे क्या देख रहे हैं। ऐसी करतूतों से चित्त से उतर गए हैं और उतर जाइएगा। अभी क्या है, आगे इस प्रकार की करनी से अधिकाधिक चित्त से उतरते ही जाएँगे।

३५—बरनौं–बरनैं। देइ–देखि। ३६—इन्ह–ह्वैहै, ह्वै ह्वै। जितै–जहाँ। दिन-नित। उबटौगे जू०–उभिटे किसे देखिबे।

विवेचन—'उबटोगे' का अर्थ सरदार कवि ने भिन्न किया है। उन्होंने 'उबटबो' का अर्थ माना है—किसी बात से जो अभिमान की वृद्धि हो जाए उसके प्रदर्शन को 'उबटना' कहते हैं। 'हिंदी शब्दसागर' में दूसरा पाठ स्वीकृत किया गया है और 'उभिटना' का अर्थ 'ठिठकना, हिचकना, भिटकना' किया गया है। प्रसंग से 'ठिठकना' ही समुचित हो सकता है। 'आप जिसे देखने की घात लगाए रुके हैं' ऐसा अर्थ दूसरे पाठ का भासित होता है। 'शब्दसागर' में पाठ यों है—'उभिटे कैसे! देखिबो देखहुँ आगे'।

अथ प्रादुर्भूतमनोभवा-मध्या-लक्षण—(दोहा)

(८३) **प्रादुर्भूतमनोभवा मध्या कहौं बखानि।**
तन मन भूषित सोभियै केसव कामकलानि।३७।

शब्दार्थ—सोभियै = शोभित होती है।

यथा—(सवैया)

(८४) **आजु मैं देखी है गोपसुता इक, होइ न ऐसी अहीर की जाई।**
देखतहीं रहियै दुति देह की देखे तें और न देखी सुहाई।
एक ही बंक बिलोकनि ऊपर वारैं बिलोकि त्रिलोक-निकाई।
केसवदास कलानिधि सो बर बूझियै काम कि मेरो कन्हाई।३८।

शब्दार्थ—जाई = पुत्री। कलानिधि = चंद्रमा। देखे तें = देखने से। देखौ—देखी हुई (सुंदरियाँ)। बर = पति। बूझियै = जान पड़ता है।

शब्दार्थ—(सखी की उक्ति सखी प्रति) हे सखी, आज मैंने एक अतीव सुंदर गोपकन्या देखी है। अहीर की पुत्री (गोपिका) ऐसी सुंदर नहीं हुआ करतीं। जिसके शरीर की कांति ऐसी है कि बराबर देखते रहने की ही इच्छा होती है। अन्य ऐसी देखी हुई सुंदरियाँ उसे देख लेने पर अच्छी ही नहीं लगतीं। मैं उसकी एक ही टेढ़ी चितवन देखकर, तीनो लोकों की सुंदरता उस पर न्यौछावर कर देती हूँ। ऐसी सुंदरी का पति या तो चंद्रमा होगा या कामदेव ? (इस पर सखी ने उत्तर दिया कि नहीं) मेरे श्रीकृष्ण।

सूचना—चौथी पंक्ति में 'कि' के स्थान पर 'की' पाठ मानकर यह अर्थ भी लगाया जाता है—'संपूर्ण काम की कलाओं की निधि मेरे कन्हाई ही इसके बर जान पड़ते हैं'।

अलंकार—उत्तर।

अथ सुरतविचित्रा मध्या-लक्षण—(दोहा)

(८५) **अति बिचित्रसुरता सु तौ, जाको सुरत बिचित्र।**
बरनत कविकुल कों कठिन, सुनत सुहावै मित्र।३९।

३७—सोभियै-सोभिजै, सोहियै। ३८—देखे तें-देखतें। बारैं-बारौं। बूझियै-बूझिहै। कि—की।

भावार्थ—हे मित्र, विचित्रसुरता नायिका वह है जिसकी रति विचित्र हो। कवियों के लिए भी इसका वर्णन कठिन है, पर इसका चरित्र सुनने से आनंद-दायक होता है।

यथा—(कबित्त)

(८६) **केसौदास सबिलास मंदहासजुत अवि-**
लोकनि अलापनि को आनँद अपार है।
बहिरति सात पुनि अंतरति सात पुनि,
रति बिपरीतनि को बिबिध बिचार है।
छूटि जाति लाज तहाँ भूषन सुदेस केस,
टूटि जात हार सब मिटत सिँगार है।
कूजि कूजि उठैं रतिकूजतनि सुनि खग,
सोई तौ सुरत सखी और बिवहार है।४०।

शब्दार्थ—सबिलास = विलासपूर्वक। अलाप = बोली, वाणी। बहिरति = बहिर्रति, बाह्य रति (इनका उल्लेख आगे है)। अंतरति = अंतर्रति, आंतर-आभ्यंतर रति। बिपरीत रति = (नायक नायिका के) विपर्यय से रतिक्रीड़ा। सुदेस = सुंदर। रतिकूजतनि = कामक्रीड़ा की ध्वनियों को (सुनकर)। कूजि कूजि० = उस ध्वनि को सुनकर पक्षी धोखा खाकर उसे पक्षी का कूजना समझकर उस ध्वनि के प्रत्युत्तर में स्वयम् कूजने लगते हैं। और बिवहार है = और (रति) तो व्यावहारिक अर्थात् साधारण है, मामूली है।

अथ सात बहिर्रति-वर्णन—(दोहा)

[८७] **आलिंगन, चुंबन, परस, मर्दन नख-रद-दान।**
अधरपान सो जानियै, बहिरति सात सुजान।४१।

शब्दार्थ—परस = स्पर्श। नख-रद-दान = नखदान (नखक्षत) और रद (दंत) दान (दंतक्षत)।

अथ सात अंतररति-वर्णन—(दोहा)

[८८] **थिति, तिर्यक, सनमुख, बिमुख, अध, ऊरध, उत्तान।**
सात अंतरति समुझियै केसवराइ सुजान।४२।

शब्दार्थ—अंतरति = संभोग के आसन। थिति = स्थित (खड़े)। तिर्यक = तिरछे (करवट)। बिमुख = उलटे। अध = अधोमुख। ऊरध = ऊर्ध्वमुख। उतान = उताने, चित्त।

४०—पुनि—सुभ, अरु. भाँति। सात—पाँच। अंतरति—अंतरित। पुनि—सुनि। तहाँ—जहाँ। ४१—जानियै—समुझियै। ४२—समुझियै—जानियै। उत्तान—उभान। केसवराइ—केसव सकल।

सूचना—इसके अनंतर निम्नलिखित दोहा छपी प्रति में मिलता है। यह खंडित प्रति में भी है, पर पूरी हस्तलिखित और लीथोवाली प्रतियों में नहीं है—

सोरहई सिंगार सब, सोरह सुरत समान।
बुधि बिबेक बल समुझियै, केसव सकल सुजान॥

अथ षोडश शृंगार-वर्णन—(कबित्त)

(८९) प्रथम सकल सुचिमंजन अमल बास,
जावक सुदेश केस-पास को सुधारिबो।
अंगराग भूषन बिबिध मुखबास राग,
कज्जल-कलित लोल लोचन निहारिबो।
बोलनि हँसनि मृदु चातुरी चितौनि चारु,
पलपल प्रति पतिव्रत प्रतिपारिबो।
केसौदास सबिलास करहु कुँवरि राधे,
इहि बिधि सोरह सिंगारनि सिँगारिबो।४३।

शब्दार्थ—सुचि मंजन = पवित्रता से स्नान करना। अमल बास = स्वच्छ वस्त्र पहनना। जावक = महावर। सुदेस = बढ़िया। केस-पास = केशों का समूह सँवारना, केशों को भली भाँति बाँधना। अंगराग = शरीर की शोभा के लिए लेप आदि का प्रयोग [ये पाँच प्रकार के कहे गए हैं—सिंदूर, खौर या मस्तक में तिलक, चिबुक में गोदना, मेंहदी और अरगजा या चंदन का लेप] भूषन बिबिध = अनेक प्रकार के गहने [ये भी दो प्रकार के होते हैं—मणि-सोने के और पुष्पों के]। मुखबास राग=मुखबास और मुखराग। मुखराग दो प्रकार के होते हैं—दंतमंजन और एला-लवंगादि का चर्वण। मुखराग = अधरों में रंग लगाना या तांबूल से उन्हें लाल करना। कज्जल-कलित = काजल से युक्त। लोल = चंचल। निहारिबो = देखना। पल पल प्रति = प्रतिपल, प्रतिक्षण। प्रतिपारिबो = [प्रतिपालन] पालन करना।

सूचना—हस्तलिखित (पूरी) प्रति में और लीथोवाली प्रति में यह छंद नहीं है।

अथ सुरतांत—(सवैया)

(९०) सुंदरता पय पावक जावक पीक हियें नखचंद नए हैं।
चंदन चित्र सुधा, बिष अंजन, टूटि सबै मनिहार गए हैं।
केसव नैननि नींदमई मदिरा मद घूमत मोहमए हैं।
केलि कै नागर नागरी प्रात उजागर सागर-भेष भए हैं।४४।

४३-मंजन-मज्जन। सुधारिबो-सम्हारिबो। निहारिबो-बिहारिबो। मृदु-चितु। चातुरी-चलनि। प्रतिपारिबो-परिपारिबो। इहि-एही। ४४—नागर०—नागरि नागर।

शब्दार्थ—पय = जल। पावक = अग्नि, बाड़वाग्नि। पीक = पान की। हियें = हृदय में। नखचंद नए = नवीन नखक्षत। चित्र = लेप या चंदन से बने चित्र। उजागर = प्रकट।

भावार्थ—(सखी की उक्ति सखी से) सुंदरता (कांति) ही जल है, महावर और पान की लगी पीक ही बाड़वाग्नि है, हृदय (छाती) में (ताजा) लगे हुए नखक्षत ही नए चंद्र (द्वितीया का चंद्रमा) है, चित्रित चंदन ही अमृत है, अंजन ही विष है, मणियों के टूटे हुए हार (ही रत्न फैले हुए) हैं, नेत्रों में भरी हुई नींद ही मदिरा है, जिसके नशे में बेहोश होकर वे इधर उधर घूम रहे हैं। अतः नागरी (प्रवीण नायिका) और नागर (प्रवीण नायक) कामक्रीड़ा करने के बाद प्रभात के समय प्रत्यक्ष सागर के वेश में दिखाई पड़ रहे हैं।

अथ मध्याधीरादि-भेद—(दोहा)

[६१] **सिगरी मध्या तीन बिधि, धीरा और अधीर।**
धीराधीरा तीसरी, बरनत हैं कबि धीर।४५।

शब्दार्थ—सिगरी = सब।

[६२] **धीरा बोलै बक्र बिधि, बानी बिषम अधीर।**
पिय सों देइ उराहनो, सो धीरा न अधीर।४६।

शब्दार्थ—वक्रविधि = व्यंग्य वाणी से। विषम = टेढ़ी, कड़ी, चुभती। अधीर = अधीरा। धीरा न अधीर = धीराधीरा।

अथ मध्या धीरा, यथा—[सवैया]

[६३] **ज्यों ज्यों हुलास सों केसवदास बिलास निवास हियें अवरेख्यो।**
त्यों त्यों बढ्यो उर कंप, कछू भ्रम भाँति भयो किधौं सीत बिसेख्यो।
मुद्रित होत सखी बरहीं मेरे नैन-सरोजनि साँच कै लेख्यो।
तैं जू कह्यो मुख मोहन को अरबिंद सो है सु तौ चंद सो देख्यो।४७।

शब्दार्थ—हुलास = आनंद। बिलास-निवास = रतिविलासों का निवास (स्थल)। हियें = हृदय (वक्षस्थल) में। अवरेख्यो = लक्षित किया। भ्रम = चक्कर। भाँति = समान, सा। बिसेख्यो = विशेष रूप में बढ़ गया। मुद्रित होत = बंद होते हुए। बरहीं = बलपूर्वक। लेख्यो = समझा।

भावार्थ—(नायिका की उक्ति सखी से) हे सखी, उल्लासपूर्वक ज्यों ज्यों मैंने उनके वक्षःस्थल पर के रतिचिह्नों को ध्यान से देखा त्यों त्यों मेरे हृदय में कंप होने लगा, कुछ चक्कर सा आने लगा, किंवा ठंढक की अधिकता

४५—हैं कबि०-सुकबि अमीर। ४६—सों-को। ४७—बढ्यो-भयो। भाँति-भीत।

सी जान पड़ने लगी। मेरे नेत्रकमलों ने बलपूर्वक बंद होते हुए (आज) सचमुच इसे समझ लिया कि तू उनके मुख को जो कमल सा कहती थी वह बात नहीं है, वह तो चंद्रमा की भाँति दिखाई पड़ रहा था।

सूचना—'कमल' कहने से सखी का तात्पर्य नायिका ने उसे दोषरहित, स्वस्थानसेवी और समशीलप्रदर्शक मान रखा था, पर आज उसने उसे 'चंद्रवत्' कहकर कलंकी, भ्रमणशील, न्यूनाधिक्य को प्राप्त होनेवाला बतलाया।

अथ मध्या अधीरा यथा,—(कवित्त)

(६४) तात को सो गात सब बल बल बीर को सो,
मात को सो मुख महामोह मन भायो है।
थल सो अचल सील, अनिल सो चल चित्त,
जल सो अमल, तेज तेज को सो गायो है।
केसौदास बसत अकास के प्रकास घोष,
घटघट घरघर घैरु घनो छायो है।
रति की सी रति, नाथ, रूप रतिनाथ को सो,
कहौ केसौराइ झूठ कौन यह पायो है।४८।

शब्दार्थ—तात = पिता (नंद)। गात = शरीर, देह। बल बीर = भाई बलदाऊजी। मात = यशोदा। मोह = ममता। थल = (स्थल) पृथ्वी। अचल = अचंचल, क्षमाशील। अनिल = वायु। सील = गुण। अमल = निर्मल। तेज = आभा। तेज = अग्नि। प्रकास = भाँति, ढंग से। घोष = शब्द; गाँव (ग्वालों का)। घैरु = (१) घेर, विराव; (२) बदनामी। घनी = अत्यधिक। रति = कामदेव की स्त्री। रति = प्रीति। रतिनाथ = कामदेव। केसौराइ = श्रीकृष्ण। यह = इस कथन में।

भावार्थ—(नायिका-वचन नायक से) पिता (नंद) जी की तरह आपका शरीर है (जैसे वे वृद्धावस्था के कारण काँपते हैं आप भी वैसे ही काँप रहे हैं), भाई बलदाऊजी का सा बल आपमें है (वे मदिरा पीकर मतवाले होते हैं और आप भी मतवाले हैं)। माता (यशोदा) का सा आपका मुख है (वे मस्तक पर टीका लगाती हैं आपके मस्तक पर भी टिकुली चिपकी है) जैसा महामोह (ममत्व) उनमें है वैसा ही मोह (मूर्च्छा, जागरण के कारण झपकी लेना) आपमें भी है, जो मन को रुचता है। (पंच तत्त्वों के गुण भी आपमें मौजूद हैं)। पृथ्वी की भाँति आप अचल गुण वाले हैं (पृथ्वी सर्वंसहा है, आप भी सब कुछ कही सुनी सह लेते हैं)। पवन की तरह आप चंचल हैं। जल की भाँति आपका चित्त निर्मल है (जल नीचे की ओर जाता है, आप भी नीचे की ओर जा रहे हैं)। अग्नि की सी ही आपकी प्रभा (मुँह की सुर्खी) है।

४८—को सो–कैसो। मुख–मुँह। मोह–मोहूँ। अनिल–अनल।

आकाश की ही भाँति आपका शब्द और स्थिति घटघट में और घरघर में भली भाँति व्याप्त है। (आकाश के ही कारण शब्द होता है और प्रत्येक घट एवम् घर-मठ में उसकी व्याप्ति है—घटाकाश और मठाकाश रूप में। आपकी बदनामी, गाँव में घटघट (सबके हृदय में) और घरघर व्याप्त है)। काम की पत्नी की भाँति आपका प्रेम है (प्रिय के त्याग पर उसे रोना था आप भी उस प्रिया के त्याग से दुखी हैं)। हे नाथ आपका रूप कामदेव की तरह है (कामदेव अरूप है। आप भी अरूप—बेढंगा रूप—धारण किए हुए हैं)। आप ही बतलाइए कि मेरी इन बातों में आपको कौन सी बात झूठ जान पड़ती है? (मैं ठीक ही कह रही हूँ न!)।

अलंकार—उपमाश्रित उल्लेख।

अथ मध्या धीराधीरा, यथा—(सवैया)

(६५) कान्ह भले जु भले समुझाइहौं मोहसमुद्र कि ज्यों उमह्यो हो।
केसव आपनो मानिक सो मन हाथ पराए दै कोनें लह्यो हो।
नैननिहीं मिलिबो करियै अब बैनंनि को मिलिबो तौ रह्यो हो।
जाइ कह्यो तुम जैसे सखीनि सों एहो गुपाल मैं ऐसो कह्यो हो।४६।

शब्दार्थ—उमह्यो हो = उमड़ा था। रह्यो हो = समाप्त हो गया।

भावार्थ—(नायिका की उक्ति नायक से) हे कान्ह, मैं आपको भली भाँति समझाऊँगी कि मोहरूपी समुद्र का उमड़ना कैसा हुआ था। क्या किसी ने माणिक सा अपना मन दूसरे के हाथ देकर (वापस) पाया है? अब तो नेत्रों का मिलन रह गया (कभी कभी दर्शन भर कर लूँगी) वचनों का मिलन तो समाप्त हो गया (आपसे बात न करना ही ठीक है)। आपने जाकर सखियों से जैसा (उलटा सीधा) कहा है, क्या गोपाल, मैंने ऐसा ही कहा था? (आप इधर उधर की बातें बहुत किया करते हैं)।

अथ प्रौढ़ा-भेद चतुर्विध—(दोहा)

(६६) सुनि समस्तरसकोबिदा, चित्तविभ्रमा जाति।
अति आक्रामित नाइका, लब्धायति सुभ भाँति।५०।

शब्दार्थ—सुनि = सुनो। जाति = भेद।

अथ समस्तरसकोविदा-लक्षण—(दोहा)

(६७) सो समस्तरसकोबिदा, कोबिद कहत बखानि।
जो रस भावै प्रीतमहिं, ताहो रस की दानि।५१।

शब्दार्थ—कोबिदा=पंडित। रस = आनंद।

४६—कि–को, की। उमह्यो–उमड्यो, उमहो। हो–है। अब–सब। जैसे-जैसों, ऐसो। ५०—चित्र०–चित बिभ्रम या जाति, अक्रामितपति आन। लब्धायति०–लुब्धापति०, लब्धापतिहु बखान। ५१—दानि–खानि।

यथा—(कवित्त)

(९८) देखी है गुपाल एक गोपिका मैं देवता सी,
सोने तें सलोनी बास सोंधे तें सुहाई है।
सोभा ही सुभाउ अवतार लियो घनस्याम,
किधौं यह दामिनीयै कामिनी ह्वै आई है।
देवी कोउ मानवी न दानवी न होइ ऐसी,
भानवी न हावभाव भारती पढ़ाई है।
केसौदास सब सुख-साधन की सिद्धि यह,
मेरे जान मनहीं सों मैनका की जाई है।५२।

शब्दार्थ—सलोनी = सुंदर। बास = (वास) सुगंध। दामिनीयै = बिजली ही। भानवी = भानु से उत्पन्न। मेरे = जान पड़ता है। भारती = सरस्वती। मैन = (मदन) कामदेव। मैनका = एक अप्सरा।

भावार्थ—(दूती का वचन नायक से) हे गोपाल, मैंने एक अनुपम सौंदर्य वाली गोपिका देखी है जो सोने से भी (अधिक) सलोनी है और जिसके शरीर की सुगंध साक्षात् सुगंध से भी बढ़कर है। हे श्याम, या तो स्वयम् सुहावनी शोभा ने ही उसके रूप में अवतार लिया है, या साक्षात् विद्युत ही स्त्री बनकर चली आई है। कोई देवी, दानवी, सूर्यसमुद्भूता या मानवी ऐसी नहीं दिखाई पड़ती। ऐसा जान पड़ता है कि स्वयम् सरस्वती ने ही उसे हावभाव की शिक्षा दी है। वह सभी सुखों के साधन की सिद्धि रूप है, मुझे ऐसा जान पड़ता है कि स्वयम् कामदेव ने उसे मेनका अप्सरा से उत्पन्न किया है।

अथ विचित्रविभ्रमा-प्रौढ़ा-लक्षण—(दोहा)

(९९) अति बिचित्रबिभ्रम सु वह, प्रौढ़ा कहत बखानि।
जाकी दीपति दूतिका, पियहि मिलावै आनि।५३।

यथा—(सवैया)

(१००) है गति मंद मनोहर केसव आनँदकंद हियें उलहे हैं।
भौंह बिलासनि कोमल हासनि अंगसुबासनि गाढ़े गहे हैं।
बंक बिलोकनि कों अवलोकि सु मार ह्वै नंदकुमार रहे हैं।
एई तौ काम के बान कहावत फूलनि के बिधि भूलि कहे हैं।५४।

शब्दार्थ—कंद=जड़। उलहे = उल्लसित। बिलास = भंगिमा, चलाना।

५२—मैं देवता सी—अनूप रूप। सुभाउ—सुहाई। लियो०—लियो स्याम कीधौं, घनस्याम कीधौं। मानवी-दानवी। दानवी—मानवी। भानवी—मानवी। हावभाव—होय भावे। पढ़ाई—पठाई। मैनका—मैनकी। ५३—सु वह—सदा। कहत—प्रगट। ५४—उलहे-उमहे। एई तौ—एक तो। कहे—गहे।

सु = सो। मार = काम।

भावार्थ—(सखी की उक्ति सखी से) उसकी गति मंद और मनोहारिणी है, आनंदकंद (श्रीकृष्ण) जिसे देखकर हृदय से उल्लसित हो रहे हैं। भ्रूभंगिमा, कोमल हँसी और शरीर की सुगंध ने उन्हें भली भाँति पकड़ लिया है (वश में कर लिया है)। उसकी टेढ़ी चितवन देखकर नंदकुमार कामदेव हो रहे हैं (और सोच रहे हैं कि) असल में काम के बाण तो ये ही हैं। ब्रह्मा ने भूलकर काम के बाणों को फूलों के बाण कहा है।

अलंकार—अपह्नुति।

अथ आक्रामितनायिका-प्रौढ़ा-लक्षण—(दोहा)

(१०१) **सो आक्रामित नाइका, प्रौढ़ा कहि दै चित्त।**
मनसा बाचा कर्मना, जिनि बस कीनो मित्त।५५।

शब्दार्थ—दै = देकर, लगाकर। मित्त = मित्र, प्रिय, पति।

यथा—(सवैया)

(१०२) **तो हित गाइ बजावत नाचत बार अनेक सिँगारु बनायो।**
जीहू में आन कौ आनिबो छाड़्यो री तौऊ न तेरो भयो मनभायो।
भावै सो तूँ करिबो करि भामिनि भाग बड़े बस तैं करि पायो।
कान्ह त्यों सूधें जु चाहति नाहि सु चाहति है अब पाइ लगायो।५६।

शब्दार्थ—हित = लिए। जीहू में = हृदय में भी। आन = अन्य (दूसरी स्त्रियों को)। पाइ लगायो = पैर पड़वाना।

भावार्थ—(सखी की उक्ति नायिका से) तेरी प्रसन्नता के लिए वे (श्रीकृष्ण) गाकर बाँसुरी बजाते हैं, नाचते हैं, और अनेक बार उन्होंने अपना शृंगार (वेशभूषा) भी बनाया। अब वे हृदय में भी किसी दूसरी स्त्री का ध्यान ले आना छोड़ चुके हैं। इतने पर भी तेरा मनचाहा नहीं हुआ। बड़े भाग्य से तूने उन्हें इस प्रकार वश में कर पाया है, अतः तुझे जो अच्छा लगे वह कर। कान्ह ऐसे सीधे को तू (प्रसन्नतापूर्वक) प्यार तो करती नहीं, अब चाहती यह है कि वे (अपनी भूल के लिए) तेरे पैरों पड़ें।

अथ लब्धायति-प्रौढ़ा-लक्षण—(दोहा)

(१०३) **सो लब्धायति जानियें, केसव प्रगट प्रमान।**
कानि करै पति कुल सबै, प्रभुता प्रभुहि समान।५७।

---

५५ कहि दै–कहियै, करिबे। जिनि-जिहि। कीनो–कीन्यौ। ५६–छाड्यो री-छाँडिबो। तौऊ०–तेरो तऊ न। करि–को। तैं करि–है करि, चौकड़ि। त्यों–ज्यों। नाहि–नाहीं सो।

यथा—(सवैया)

(१०४) आज बिराजत हैं कहि केसव श्रीवृषभानु-कुमारि कन्हाई।
बानि बिरंचि बहिक्रम काम रची जु बची सु बधूनि बनाई।
अंग बिलोकि त्रिलोक में ऐसी को नारि नहीं जिन नारि नवाई।
मूरतिवंत सिँगार-समीप सिँगार कियें जनु सुंदरताई।५८।

शब्दार्थ—बानि = (बाणी) सरस्वती। बिरंचि = ब्रह्मा। बहिक्रम = वयःक्रम, वयःसंधि। काम = कामना। नारि = स्त्री। नारि = गर्दन। नवाई = झुकाई।

भावार्थ—(सखी की उक्ति सखी से) आज श्रीवृषभानु की पुत्री राधिका और श्रीकृष्ण अत्यंत सुशोभित हो रहे हैं। ब्रह्मा ने वयःसंधि की कामना से (उसी वृषभानुकुमारी की सुंदरता से ही कुछ लेकर) सरस्वती की रचना की, जो बचा उससे संसार की अन्य सुंदर रमणियों का निर्माण किया। इसी से उसका अंग देखने पर त्रिलोक में ऐसी कोई स्त्री नहीं दिखाई देती जिसकी गर्दन न झुक जाए। ऐसा जान पड़ता है मानो साक्षात् शृंगार (श्रीकृष्ण) के समीप मूर्तिमयी सुंदरता (राधिका) ही अपना रूप सँवारे विराजमान हो।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

अथ प्रौढ़ा-धीरा-लक्षण—(दोहा)

(१०५) आदर माँझ अनादरै, प्रकट करै हित होइ।
आकृति आप दुरावई, प्रौढ़ा धीरा दोइ।५६।

शब्दार्थ—हित होइ = हितुआ बनकर।

प्रौढ़ा सादरा धीरा, यथा—(सवैया)

(१०६) आवत देखि लिये उठि आगें ह्वै आपुहि केसव आसनु दीनो।
आपुहि पाइ पखारि भलें जल, पानी को भाजन लाइ नवीनो।
बीरी बनाइकै आगें धरी जब बैहर कौं कर बीजना लीनो।
बाँह गही हरि, ऐसे कह्यो हँसि मैं तौ इतौ अपराध न कीनो।६०।

शब्दार्थ—बीरी = पान की गिलौरियाँ। बीजना = (व्यजन) पंखा।

भावार्थ—(सखी की उक्ति सखी से) श्रीकृष्ण को (सपत्नी के यहाँ से) आते देखकर (नायिका ने) आगे बढ़कर उन्हें लिया और स्वयम् ही (बैठने को) आसन दिया। पानी का नवीन बर्तन लाकर स्वच्छ जल से स्वयम् ही (परिचारिका द्वारा नहीं) पैर भी धोए। स्वयम् पान के बीड़े भी बनाकर

५८—बहिक्रम-बहो क्रम। बची-बरो। नहीं जिन०-निहारि निनारि बनाई।

(तश्तरी में) आगे रखे दिए। इसके अनंतर जब उसने (नायिका ने) श्रीकृष्ण को झलने के लिए अपने हाथ में पंखा लिया तब उन्होंने हाथ पकड़ लिया और हँसकर कहने लगे कि मैंने तो इतना अपराध नहीं किया है (जिसका मुझे यह दंड दिया जा रहा है)।

सूचना—चौथे चरण के 'एतौ अवराधन कीनौ' पाठ से भी अच्छा अर्थ लग सकता है—श्रीकृष्ण ने हाथ पकड़ लिया और हँसकर कहा कि बहुत अधिक सेवा (आराधना) हो चुकी (अब बस करो)।

अथ आकृतिगुप्ता प्रौढ़ा धीरा, यथा—(सवैया)

(१०७) चितवौ चितवाएँ हँसाएँ हँसौ हो बुलाएँ तें बोलौ रहौ नतु मौने।
सौंह अनेकनि आवहु अंक, करौ रति कों प्रति रैन की रौने।
ख्वाएँ तें खाहु बरयाइ बिरी जनु आई हौ केसव आज ही गौने।
मोहन के मन मोहन कों सु कहौ यह धौं सिखई सिख कौने।६१।

शब्दार्थ—रौने = रोदन ही। अथवा रौना = द्यागमन। ख्वाएँ = खिलाने से। बरयाइ = मुश्किल से।

भावार्थ—(सखी की उक्ति नायिका से) देखने के लिए जब प्रेरित किया जाता है तब तुम देखती हो, हँसाया जाता है तो हँसती हो, बुलाने से बोलती हो नहीं तो चुपचाप ही रहती हो। अनेक कसमें खाने पर गोद में आया (जाया) करती हो। प्रत्येक रात की प्रीति के लिए रोदन सा ठाने रहती हो (अथवा) प्रीति को रौने के समान संकोचशील किए रहती हो)। खिलाने पर भी बड़ी कठिनाई से पान की बीरी खाती हो, मानो आज ही गौने आई हो। मोहन (जो सबको मोह लेता है) के मन को मोहने के लिए यह शिक्षा न जाने किसने तुम्हें दी है।

सूचना—'रौने' का अर्थ 'रौना ही, द्यागमन ही' करने पर दूसरी पंक्ति तीसरी के स्थान पर बदल दी जाए तो अच्छा हो। क्योंकि रौना गौने के अनंतर होता है।

पुनर्यथा—(सवैया)

(१०८) हित कै इत देखहु देख्यो सबै हित-बात सुनौ जु सुनी सब ही हैं।
यह तौ कछु और वहै सब ही अरु सौंह करौ ब करी जु तही हैं।

६०—आगें ह्वै आगेहि। बीरी-बीरा। धरी-धरो। जब-जबै। जब०—सो जबै हरि। कर-बर। ऐसे-ऐसो। मैं तौ-एतौ। अपराध न-अवराधन।

६१—हौ-औ। नतु—तित। ख्वाएँ०-कोइ खवाए तें खाओ बिरी। मोहन कों—मोहिबे कों।

समुझाइ कहौं समुझी सब केसव झूठी सबै हमसौं जु कही हैं।
मान कियो अपमान करौ तौ हँसौ अब कै हँसिबे कों रही हैं।६२।

शब्दार्थ—हितु कै=प्रेमपूर्वक। अरु=(अड़) हठ। अब कै=इस बार (एक बार)।

भावार्थ—(नायक-नायिका का संवाद) (नायक) 'प्रेमपूर्वक इधर देखो'। (नायिका) 'सब देख चुकी'। (नायक) 'अच्छा प्रेम की बातें ही सुनो'। (नायिका) 'हाँ, मैंने सब सुन लिया'। (नायक) 'यह तो कुछ और ही बात है'। (नायिका) (अगर मेरा हठ समझते हो तो) कसम खाओ (खाकर बतलाओ) कि वहाँ (सपत्नी के यहाँ) 'तुमने क्या क्या कर्म किए हैं'? (नायक) 'मैंने तो समझाकर कह दिया'। (नायिका) मैंने समझ लिया कि आपने मुझसे सब झूठी बातें कही हैं। (नायक) (मैं समझ गया) 'तुमने मान किया है'। (नायिका) (ऐसा कहकर तो आप मेरा) 'अपमान कर रहे हैं'। (नायक)(अगर ऐसी बात नहीं है) 'तो इस बार हँसो तो'। (नायिका) 'मैं तो हँस चुकी (मैं नहीं हँसूगी)'।

अथ प्रौढ़ा-अधीरा-लक्षण—(दोहा)

(१०९) पति को अति अपराध गनि, हतन कहैं हित मानि।
कहत अधीरा प्रौढ़ तिहि, केसवदास बखानि।६३।

यथा—(सवैया)

(११०) हौं सुख पाइ सिखाइ रही सिख सीखे न ए सखि तैं हूँ सिखाई।
मैं बहुतै दुख पाइहु देख्यौ पै केसव क्योंहूँ कुटेव न जाई।
दंड दियें बिनु साधुनिहूँ सँग छूटति क्यों खल की खलताई।
देखहु दै मधु की पुट कोटि मिटै न घटै बिष की बिषमाई।६४।

शब्दार्थ—मधु=शहद। बिषमाई=भयंकरता, कटुता।

भावार्थ—(नायिका नायक की उपस्थिति में सखी से कह रही है) मैं सुखपूर्वक (बिना अपनी अपनी अप्रसन्नता व्यक्त किए) सिखा चुकी, पर इन्होंने शिक्षा नहीं ग्रहण की (कहना नहीं माना), तूने भी तो सीख दी (क्या परिणाम हुआ! कुछ नहीं)। मैंने (इनकी टेव बदलने के लिए) बहुत कष्ट उठाकर भी देख लिया, पर इनकी बुरी बान किसी प्रकार छूटती ही नहीं। साधुओं के संग में रहने पर भी खलों की दुष्टता बिना दंड दिए छूटती नहीं। विष में शहद का चाहे करोड़ों पुट दिया जाय पर विष की कटुता (शहद की मिष्टता से) दूर नहीं हो सकती।

६२—देखहु-देखो जू। सब ही-निबही। सब हौ-सब है। अब-अब। ज-जू। तही-तुही। कहो-कह्यो। समुझौ०-समुझाइ कै। सब-हम। कियो-किए। करो तो-करै जो।६३—हतन-हितन। कहै-करै। तिहि-तिय। ६४-पाइ-खाइ। सखि-सिख। बहुतै दुख पाइ-बहुतैहूँ सवाइ। दंड-देहु।

अलंकार—दृष्टान्त ।

सूचना—लीथोवाली और छपी प्रतियों में यह छंद नहीं है, पर हस्त-लिखित प्रतियों में है ।

अथ प्रौढ़ा-धीराधीरा-लक्षण—(दोहा)

(१११) **मुख रूखी बातें कहै, जिय मैं पिय की भूख ।**
धीराधीरा जानिये, जैसी मीठी ऊख ।६५।

यथा—(सवैया)

(११२) **हो मन मैलो न जौ लौं कछू अब छाड़हु बोलिबो बोल हँसौंहैं ।**
केसव औरनि सों रसरासि रस्यो रसबाद सबै हम सौं हैं ।
देखहु धौं इक बार सँकोचनि आरस-लोचन आरसी सौंहैं ।
आए जू वैसेई साज सौं आजु सु भूलि गई पिय काल्हि की सौंहैं ।

शब्दार्थ—मैलो = मलिन, उदासीन । रसरासि=आनंदपूर्ण बातें । रस्यो=की । रसबाद = (प्रेम के) झगड़े । सँकोच = लज्जा । सौंहैं = सामने । सौंहैं=शपथें ।

भावार्थ—(नायिका की उक्ति नायक से) हे प्रिय, (जान पड़ता है कि) आपको कल की शपथें भूल गईं ? क्योंकि आप आज भी वैसे ही साज (वेश) से यहाँ आए हैं ? मेरा मन आपके प्रति तब तक उदासीन ही रहेगा जब तक आप अपने ये, हँसीवाले बोल बोलना नहीं छोड़ देते । आप औरों (सौतों) से तो आनंदपूर्ण बातें किया करते हैं, सारे झगड़े केवल मेरे ही साथ होते हैं । एक बार जरा अपने संकोच और आलस्य से भरे नेत्रों को दर्पण के सामने देख आइए (फिर मुझसे बातें कीजिए) । (रात्रि के जागरण की गवाही आपका चेहरा दे रहा है) ।

इति स्वकीया ।

अथ परकीया-लक्षण—(दोहा)

(११३) **सब तें पर परसिद्ध जग, ताकी जु प्रिया होइ ।**
परकीया तासों कहैं, परम पुराने लोइ ।६७।

शब्दार्थ—सब तें=लोक और वेद दोनो से । पर=अन्य (परपुरुष) । परसिद्ध=प्रसिद्ध, प्रख्यात । लोइ = लोग ।

अथ परकीया के भेद—(दोहा)

(११४) **परकीया द्वै भाँति पुनि, ऊढ़ा एक अनूढ़ ।**
जिन्हैं देखि सुनि होत बस, संतत मूढ़ अमूढ़ ।६८।

शब्दार्थ—ऊढ़ा=विवाहिता । अनूढ़=अनूढ़ा, अविवाहिता । अमूढ़=पंडित ।

६५—धीराधीरा-धीर अधीरा । ६६—हो-हौं । मैलो-मैले । जौ लौं-बोलौं । रस्यो-रसौ । ६७—जग-जो । ६८—जिन्हैं जिनहीं । सुनि-सब । सब-हैं ।

अथ ऊढ़ा-अनूढ़ा-लक्षण—(दोहा)

(११५) ऊढ़ा होइ बिबाहिता, अबिबाहिता अनूढ़ ।
तिनके कहौं बिलास अब, केसव गूढ़ अगूढ़ ।६६।

शब्दार्थ—गूढ़ = गुप्त । अगूढ़ = प्रकट ।

ऊढ़ा, यथा—(सवैया)

(११६) बैठी सखीनि की सोभै सभा सब ही के सु नैननि माँझ बसै ।
बूझे तें बात बरयाइ कहै मन ही मन केसवराइ हँसै ।
खेलति है इत खेल उतै पिय चित्त खिलावति यौं बिलसै ।
कोउ जानै नहीं दृग दौरि कबै कित ह्वै हरि आनन छ्वै निकसै ७०

शब्दार्थ—सोभै = सुशोभित होती है । सु = सो, वह । सब ही० = सभी ध्यान से उसे देख रहे हैं । बूझे तें = पूछने पर ही । बरयाइ = बड़ी कठिनाई से । बिलसै = शोभा पाती है । कोउ...निकसै = न जाने कब उसके नेत्र दौड़-कर किधर से श्रीकृष्ण के मुख को छूते हुए निकल जाते हैं ।(बीच बीच में वह नायक को बड़ी सफाई से देख लेती है) ।

अनूढ़ा, यथा—(सवैया)

(११७) बैठी हुती ब्रजनारिनि में बनि श्रीवृषभानुकुमारि सभागी ।
खेलति ही सखी चौपर चारु भई तिहिं खेल खरी अनुरागी ।
पीछे तें केसव बोलि उठे सुनिकै चित चातुरी आतुरी जागी ।
जानी न काहू कबै हरि के सुर-मारगहीं सर सी दृग लागी ।७१।

शब्दार्थ— हुती = थी । बनि = शृंगार करके । सभागी = भाग्यवती । ही = थी । खरी = अत्यंत । बोलि उठे = श्रीकृष्ण आकर बोले । चित = चित्त में । चातुरी = चातुर्य । आतुरी = आतुरता । सुर-मारगहीं = स्वर के मार्ग से, जिधर से उनकी वाणी आ रही थी ।

भावार्थ—(सखी का वचन सखी से) श्रीवृषभानु की पुत्री भाग्यवती राधिका ब्रजबालाओं के बीच बैठी हुई थीं और हे सखी, सुन्दर चौपड़ खेल रही थीं । उस खेल में जब वे अत्यंत अनुरक्त (लीन) हो गईं (तब) इसी बीच में श्रीकृष्ण आए और वे पीछे की ओर से कुछ (बातें) बोल उठे, जिन्हें सुनकर उन (राधिका) के मन में चतुरता और आतुरता दोनो जग गईं । किसी को पता ही नहीं चला कि कब श्रीकृष्ण के स्वरमार्ग से (जिधर से उनकी वाणी की ध्वनि आ रही थी उधर) उनके नेत्र श्रीकृष्ण के नेत्रों में बाण की भाँति जा लगे ।

६९—अबिबाहिता—अनब्याहिता । अब—सब । ७०—सु—जु । तें-हि । केसवराइ—केसवदास । ७१—चारु—चारि । मारगहीं—मार गही ।

(दोहा)

(११८) काहू सों न कहै कछू, बात अनूढ़ा गूढ़ ।
सखी सहेली सों कहै, ऊढ़ा गूढ़ अगूढ़ ।७२।

शब्दार्थ—सखी = अंतरंग सखी । सहेली = बहिरंग सखी । गूढ़ = गुप्त । अगूढ़ = प्रकट ।

सूचना—यह छंद पूर्ण हस्तलिखित प्रति में नहीं है ।

ऊढ़ा वचन, यथा—(सवैया)

(११९) केसवराइ की सौंहैं करै कछू एकनि आपु मैं होड़ परी ।
एक चितै मुसकाइ इतै, उत बात कहैं बहु भाइ भरी ।
चारु चकोर बिलोचन भा सो चहूँ दिसि तें अँगुरी पसरी ।
सखि काल्हि गई हुती गोकुल हौं सबहीं मिलि द्वैज को चंद करी ७३

शब्दार्थ—सौहैं = शपथ, कसम । एकनि = कुछ लोगों में । आपु में = आपस में । होड़ = लागडाँट, यहाँ वादविवाद । चहूँ दिसि तें अँगुरी पसरी = चारो ओर से गोपिकाओं ने अंगुली दिखाकर संकेत किया ।

भावार्थ—(ऊढ़ा का वचन बहिरंग सखी से) मैं आज गोकुल गई थी । वहाँ मुझे देखकर कुछ स्त्रियाँ शपथ कर करके मेरे बारे में आपस में वाद-विवाद करने लगीं (कोई कहती थी कि यही श्रीकृष्ण की प्रेमिका है और कोई कहती थी नहीं) । कुछ स्त्रियाँ एक ओर तो मुझे देखकर मुसकाती थीं और दूसरी ओर अपनी संगिनी स्त्रियों से अत्यंत भावभरी बातें करने लगती थीं । चारो ओर से उनकी उँगलियाँ मुझे इंगित कर रही थीं । उन सबने मिलकर तो मुझे द्वितीया का चंद्रमा ही बना डाला था । (जैसे द्वितीया के चंद्रमा को देखकर दूसरों को दिखाने के लिए लोग उँगली से इंगित करते हैं उसी प्रकार वे मुझ पर उँगली उठा रही थीं) ।

सूचना—यह छंद भी पूर्ण हस्तलिखित प्रति में नहीं है ।

(दोहा)

(१२०) जगनायक की नायिका, बरनी केसवदास ।
तिनके दरसन रस कहौं, सुनौ प्रछन्न प्रकास ।७४।

इति श्रीमन्महाराजकुमारइन्द्रजीतविरचितायां रसिकप्रियायां स्वकीया-परकीयादिभेदवर्णनं नाम तृतीयः प्रभावः ।३।

७३—केसवराइ-केसवदास । काल्हि-आजु । ७४—सुनौ-सुनहु, सुनि । प्रछन्न-प्रच्छन्न ।

चतुर्थ प्रभाव

अथ दर्शन-लक्षण—(दोहा)

(१२१) ए दोऊ दरसैं दरसु, होहिं सकाम सरीर।
दरसन चारि प्रकार को, बरनत हैं कबि धीर।१।

शब्दार्थ—चारि प्रकार=साक्षात् या प्रत्यक्ष-दर्शन, चित्र-दर्शन, स्वप्न-दर्शन और श्रवण-दर्शन।

(१२२) एक जु नीके देखियै, दूजें दरसन चित्र।
तीजें सपने देखियै, चौथें श्रवननि मित्र।२।

शब्दार्थ—नीकें देखियै = अर्थात् प्रत्यक्ष।

सूचना—'सरदार' की *टीका में एक दोहा इसके बाद यह भी दिया गया है—

दरसन नीके दरसि यहि, दंपति प्रति सुख मान।
ताहि कहत साक्षात हैं, केसवदास सुजान।

साक्षात् दर्शन—(दोहा)

(१२३) नींद भूख दुति देह की, गई सुनतहीं जाहि।
को जानै ह्वै है कहा, केसव देखें नाहि।३।

शब्दार्थ—देखें = देखने पर।

सूचना—'सरदार' की टीका में इसके बाद भी एक दोहा और दिया गया है और कहा गया है कि केशव का नहीं जान पड़ता—

देखन को प्रिय रूप दृग, तजे सकल जगकाज।
कोटि जतनहूँ कै रही, रहे नैन गड़ि लाज॥

श्रीराधिकाजू को प्रच्छन्न साक्षात् दर्शन, यथा—(सवैया)

(१२४) कहि केसव श्रीबृषभानु-कुमारि सिँगार सिँगारि सबै सरसै।
सबिलास चितै हरिनायक त्यों रतिनायक-सायक से बरसै।
कबहूँ मुख देखति दर्पन लै उपमा मुख की सुखमा सरसै।
जनु आनँदकंद सँपूरन चंद दुरयो रबि-मंडल में दरसै।४।

शब्दार्थ—सिँगार सिँगार सबै सरसै = सब प्रकार के शृंगार सजकर सुशोभित होती है। सबिलास = भंगिमासहित, शृंगारी चेष्टाओं से युक्त।

१—कबि-मति। २—नीकें-नीकेंहि, नीको। दूजें-दूजो। तीजें-तीजो। सपने०-सपनो जानियें। चौथें-चौथो। श्रवननि०-श्रवन सु मित्र।
४-सिंगार०-सिंगारि सिंगार। लै-मैं। सँपूरन-सुपूरन।

त्यों=ओर। रतिनायक-सायक=कामदेव के बाण। उपमा०=मुख की उपमा इस शोभा को स्पर्श करती है, मुख की शोभा ऐसी जान पड़ती है। दुरयो=छिपा हुआ। जनु......दरसै=मानो आनंददायक पूर्ण चंद्र रविमंडल में छिपा हुआ दिखाई पड़ रहा है (दर्पण रविमंडल है, मुख पूर्ण चंद्र है)।

अलंकार—उक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा।

श्रीराधिकाजू को प्रकाश साक्षात् दर्शन, यथा—(सवैया)

(१२५) पहिले तजि आरस आरसी देखि घरीकु घसे घनसारहि लै।
पुनि पोंछि गुलाब तिलौंछि फुलेल अँगौछे में आछे अँगौछनि कै।
कहि केसव मेद जुबाद सों माँजि इते पर आँजे में अंजन दै।
बहुरयो दुरि देखौं तौ देखौं कहा सखि लाज तौ लोचन लागियै है।५।

शब्दार्थ—घरीकु=घड़ी भर। घनसार=कपूर। फुलेल=फूलों में वास कर निकाला गया सुगंधित तेल। तिलौंछि=तेल से (लगाकर) साफ करके। अँगौछे=(अँगौछे से) पोंछा। आछे=भली भाँति। अँगौछनि कै=अँगौछों से, रूमाल से। मेद=कस्तूरी। जुबाद=(फारसी) बिलाव के अंडकोश से निकली हुई एक प्रकार की कस्तूरी।

भावार्थ—(नायिका की उक्ति सखी से) हे सखी, पहले मैंने आलस्य छोड़कर नेत्रों को दर्पण में देखा और घड़ी भर कपूर लेकर उनमें मला। इसके बाद भली भाँति गुलाब से उन्हें पोंछा। फुलेल लगाकर उन्हें साफ किया। भली भाँति अँगौछों से उन्हें पोंछा। इतना ही नहीं प्रत्युत कस्तूरी और जुबाद से भली भाँति माँजकर (रगड़कर) उनमें अंजन लगाया। इसके बाद मैंने छिपकर नायक को देखा, पर इतने पर भी नेत्रों में लज्जा लगी है (निकली नहीं)।

अलंकार—विशेषोक्ति (पूर्ण कारण के होते हुए भी कार्य न होने से)।

सूचना—'कविप्रिया' के छठे प्रभाव में गुरु वस्तुओं के वर्णन में यह सवैया लज्जा का गुरुत्व दिखाने के लिए उदाहरण में दिया गया है।

श्रीकृष्णजू को प्रच्छन्न साक्षात् दर्शन, यथा—(सवैया)

(१२६) भाल गुही गुन लाज लटैं लपटी लर मोतिन की सुखदैनी।
ताहि बिलोकति आरसी लै कर आरस सों इक सारसनैनी।
केसव कान्ह दुरें दरसी परसी उपमा मति की अति पैनी
सूरज-मंडल में ससि-मंडल मध्य धँसी जनु जाइ त्रिबैनी।६।

५-घरीकु-कछुक। घसे-घसै, घस्यौ। जुबाद-जिबाद, जबाद, जबादि। बहुरयो-बहुरौं, बहुरे। तौ-जौ। देखौं०-तौ देखि रो। लागियै है-लागेइ है, लागि ग्रहै। ६—श्रीकृष्णजू-नायक। सवैया-विजै छंद। मति की-मति कौं मति त। जनु-मनु। जाइ-ताहि, जाहि।

शब्दार्थ—गुन लाल = लाल डोरा। सारस = कमल। दुरे = छिपे हुए। दरसी = दिखाई पड़ी। परसी = स्पर्श की। पैनी = तीखी।

भावार्थ—(सखी की उक्ति सखी से) हे सखी, उस (नायिका) ने अपने मस्तक पर की उन लटों को लाल डोरे से गुहा जिनमें मोतियों की सुखदायिनी लड़ियाँ लिपटी हुई थीं। (गुहने के बाद) वह कमलनेत्रवाली हाथ में दर्पण लेकर उसे (उसकी शोभा को) आलस्यपूर्वक (देर लगाकर) देखने लगी। (उसकी इस क्रिया को) श्रीकृष्ण छिपे हुए देख रहे थे। वह उस समय उन्हें ऐसी दिखाई पड़ी और उनकी मति को ऐसी अत्यंत तीखी (उत्कृष्ट, अनोखी) उपमा ने स्पर्श किया, मानो सूर्य-मंडल (लाल मणि के दर्पण) में चंद्रमंडल (मुख) हो और त्रिवेणी धँसी हो (जा पहुँची हो) (केशकलाप श्यामवर्ण होने से यमुना, लाल डोरे सरस्वती और मोती उज्ज्वल वर्ण होने से गंगा की शोभा दे रहे थे)।

अलंकार—उक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा।

श्रीकृष्णजू को प्रकाश साक्षात् दर्शन, यथा—(सवैया)

(१२७) इक तौ उर और उरोज अनूपम तैसे मनोहर हार महा री।
सखि चित्त चलै तरुनीनिहूँ को तरुनैन की केसव बात कहा री।
हितु सौं हित की कहि आवति है पर कौ लगि होउँ री कौतुकहारी
अब अंचल दै नँदलाल बिलोकत री दधि नोखी बिलोवनहारी।७।

शब्दार्थ—चित्त चलै तरुनीनिहूँ को = स्त्रियों का भी मन आकृष्ट हो जाता है। तरुनैन की = तरुण युवकों (पुरुषों) की। हितु = मित्र, संगिनी। अंचल दै = अंचल से ढक। नोखी = अनोखी, विचित्र। बिलोवनहारी = मथनेवाली।

भावार्थ—(सखी की उक्ति नायिका से) एक तो तेरे उर (वक्षःस्थल) और स्तन यों ही अनुपम हैं और इतने पर (इन उरोजों पर) हार भी तद-नुरूप अत्यंत मनोहर पड़े हुए हैं। तेरी यह शोभा देखकर युवती स्त्रियों का मन भी चलायमान हो जाता है (तेरी शोभा पर आकृष्ट हो जाता है), फिर तरुण पुरुषों की तो बात ही क्या ! अपनी संगिनी से भलाई की बात कहनी ही पड़ती है। (आखिर) मैं कब तक तमाशबीन (तेरा यह तमाशा देखनेवाली) बनी रहूँ ? अब तो (इन स्तनों को) अंचल से ढक, नंदलाल (श्रीकृष्ण खड़े खड़े) उसकी छटा देख रहे हैं (और तू दही मथने का बहाना करके उन्हें देखने का मौका दे रही है) तू तो अनोखी दही मथनेवाली निकली!

अलंकार—काव्यार्थापत्ति और अनुगुण।

७—उर-तरु। **आवति०—है बनि आवति, है परि आवति, ही परि आवति। होउँ०—होहुँ री, होंव री।**

सूचना—मुद्रित प्रति में यह दोहा भी है—

प्रकट काम को कल्पतरु, कहि न सकति मति मूढ़।
चित्रहु में हरि-मित्र की, अति अद्भुत गति गूढ़॥

श्रीराधिकाजू को प्रच्छन्न चित्रदर्शन, यथा—(सवैया)

(१२८) लोचन ऐंचि लिये इत कों मन की गति जद्यपि नेहनही है।
आनन आइ गए श्रम-सीकर रोम उठे तन कंप लही है।
तासों कहा कहियै कहि केसव लाज-समुद्र में बूड़ि रही है।
चित्रहु में हरि-मित्रहि देखत यौं सकुची जनु बाँह गही है।८।

शब्दार्थ—नही=नधी, जुड़ी, युक्त। श्रम-सीकर = पसीने की बूँदें।

भावार्थ—(सखी की उक्ति सखी से) यद्यपि नायिका ने चित्र पर से अपनी दृष्टि इधर की ओर खींच ली है तथापि मन की गति अब भी स्नेहयुक्त है। क्योंकि उसके मुख पर पसीने की बूँदें आ गई हैं। रोएँ खड़े हो गए हैं और शरीर ने कंप ग्रहण कर लिया है। उससे कहा भी जाय तो क्या कहा जाय जो स्वयम् लज्जा के समुद्र में डूब रहा हो। चित्र में भी अपने प्रिय श्रीकृष्ण को देखकर वह इस प्रकार सकुच गई है मानो उन्होंने प्रत्यक्ष ही उसकी बाँह पकड़ ली हो।

अलंकार—द्वितीय विभावना।

सूचना—इसके बाद यह सवैया भी मुद्रित प्रति में है, जिसे सरदार ने केशव का नहीं माना है—

तैं जनु मोहन कों चितयो कछु ऐसें कही जनु मोसों कही है।
लाज तजै नहिं खेलत ही मन की गति गूढ़ कहाँ धौं लही है।
केसव चित्रित मंदिर आजु दिखावत ही मति रीझि रही है।
चित्रहु में हरि-मित्रहि देखत यों सकुची जनु बाँह गही है।

(१२९) श्रीराधिकाजू को प्रकाश चित्रदर्शन, यथा—(कवित्त)

केसौदास नेहदसा दीपक सजोय कैसे,
ज्योति ही के ध्यान तम-तेजहि नसायहै।
आँखिन सों बाँधे अन्न काहू की बुझानी भूख,
पानी की कहानी रानी प्यास क्यों बुझायहै।
ए री मेरी इंदुमुखी इंदीवर-नैनी लखें,
इंदिरा के मंदिर में संपति सिधायहै।
ऐसे दिन ऐसें ही गँवावति गँवारि कहा,
चित्र देखें मित्र के मिले को सुख पायहै।९।

८—गति-मति। तन-उर, अति, उठि। कंप०-कंप गही, कंपत ही।९—सँजोय-सँजोग। तम-तप। अन्न-अन्य। बुझानी-न भागी। रानी०-प्यास कैसे कै। इंदीवर०-इंदीवरनैन। में-क्यों। सिधायहै-समाइ है। देखें-बिना।

शब्दार्थ—नेह=तेल; प्रेम। दसा=अवस्था; बत्ती। सँजोय= जला, बाल। ज्योति ही के=प्रकाश के ही। तम-तेज=अंधकार का आधिक्य; मन का मालिन्य। अन्न=अन्न, भोजन। आँखिन०=सिर्फ अन्न ही आँख से देखते रहने से। इंदुमुखी=चंद्रमुखी। इंदीवर०=कमल के से नेत्रवाली। इंदिरा=लक्ष्मी। गँवारि=मूर्ख, पगली।

भावार्थ—(सखी की उक्ति नायिका से) तू स्नेह-दशा (प्रेम की अवस्था; तेल और बत्ती) से दीपक जला (प्रियतम से मिल) केवल ज्योति (प्रिय के शरीर की कांति) का ध्यान करने से तम का तेज (अंधकार की प्रचंडता, उदासी की अधिकता) कैसे नष्ट कर सकेगी। क्या आँखों में अन्न बाँध लेने से (आँखों से अन्न देखते रहने से) किसी की भूख मिटी है (या तेरी ही भूख मिट जायगी)। सिर्फ पानी की कथा कहने से, मेरी रानी, प्यास कैसे बुझेगी ? ऐ मेरी चंद्रमुखी कमलनयनी सखी क्या लक्ष्मी का चित्र ही लिख देने से घर में संपत्ति भर जाएगी ? इन दिनों को (जब कि प्रियतम से मिलने के अनेक अवसर प्राप्त हो सकते हैं) ऐ पगली इस प्रकार (केवल चित्र देखने में) तू बिताए दे रही है। क्या प्रिय का चित्र देखने से ही तुझे प्रिय से मिलने का सुख प्राप्त हो जाएगा।

श्रीकृष्णजू को प्रच्छन्न चित्रदर्शन, यथा—(कवित्त)

(१३०) **रूठिबे को तूठिबे को मृदु मुसक्याय कै,**
बिलोकिबो को भेद कछू कह्यौ न परतु है।
केसौदास बोले बिनु बोलनि के सुनें बिनु,
हिलनि मिलनि बिनु मोहि क्यों सरतु है।
कौ लगि अलोनो रूप प्याय प्याय राखौं नैन,
नीर देखें मीन कैसे धीरज धरतु है।
चित्रिनी बिचित्र चित्र नीकें ही चितैयै मन,
चित्र में चिताएँ चित्त चौगुनो जरतु है।१०।

शब्दार्थ—रूठिबे को=खीझने का। तूठिबे को=रीझने का। हिलनि= निकट जाना। मिलनि=भेंटना, आलिंगन करना। मोहिं=मुग्ध होकर। सरतु है=पूरा होता है। अलोनो रूप=सजीव लावण्य से रहित सौंदर्य (चित्र में लिखा होने के कारण)। नीके ही=सँभलकर। चिताएँ=सचेत करने से, संतोष दिलाते रहने से; सुलगाने से।

भावार्थ-(नायक की स्वगत उक्ति) उस (प्यारी) के खीझने-रीझने,कोमल मुसकान के साथ देखने का रहस्य कुछ कहा नहीं जा सकता। बिना उससे

१०—कह्यौ-कहि। मोहि-मोह। देखें-बिना। चित्र०-किन नीकेई। में चिताएं-चितए तें, चितए में।

बोले तथा बिना उसकी बोली सुने एवम् बिना उससे हिले मिले केवल मुग्ध होकर रह जाने से ही तो काम चल नहीं सकता। अपने नेत्रों को कब तक अलोना रूप (चित्र के दर्शन से) पिला पिलाकर शांत रखूँ। (केवल चित्र में उसकी छाया देख लेने से नेत्रों की तृप्ति नहीं होती)। क्या जल (पानिप, शोभा) देख लेने पर मछली (आँख) धैर्य धारण कर सकती है ? (चित्र देखने पर उसको प्रत्यक्ष देखने की उत्कट इच्छा होना नेत्रों के लिए स्वाभाविक है)। ऐ मन, उस चित्रिणी का विचित्र चित्र सँभलकर देख, चित्र देख देखकर संतोष करते रहने से तो चित्त चौगुना जलता है (अभिलाष उत्कट होता जाता है)।

श्रीकृष्णजू को प्रकाश चित्रदर्शन, यथा—(सवैया)

(१३१) अंतरिच्छ-गच्छनीनि यच्छनि सुलच्छनीनि,
अच्छी अच्छी अच्छनीनि छबि छमनीय है।
किंनरी नरी सुनारि पन्नगी नगी कुमारि,
आसुरी सुरीनिहूँ निहारि नमनीय है।
भोगिन की भामिनी कि देह धरे दामिनी कि,
काम ही की कामिनी कि ऐसी कमनीय है।
चित्रहू में चित्तहि चुरावति है केसौदास,
राम की सी रमनी रमा सी रमनीय है।११।

शब्दार्थ—अंतरिच्छ-गच्छनी = आकाशचारिणी। यच्छनी = यक्षिणी। सुलच्छनी = शुभलक्षणसंयुक्ता। अच्छनीनि = नेत्रोंवाली। छमनीय है = क्षमा करने योग्य है, क्षमा करने की योग्यता रखती है। किंनरी = किंनरों की स्त्रियाँ। नरी = मानवी। सुनारि = सुंदर स्त्रियाँ। पन्नगी = नागकुमारी। नगी = पर्वतकन्याएँ। निहारि = देखकर, देखने पर। भोगिन की भामिनी = पातालवासियों की स्त्री। कि = अथवा। नमनीय = नमस्कार करने योग्य। देह धरे = मूर्तिमती। दामिनी = बिजली। काम कामिनी = कामदेव की स्त्री रति। कमनीय = सुंदर। राम कैसी रमनी = सीता सी। रमा = लक्ष्मी। रमनीय = मन को लुभानेवाली।

भावार्थ—(नायक-वचन सखी प्रति) आकाशचारिणी, सुलक्षणा यक्षिणी सुनयनाओं की शोभा को भी यह क्षमा करनेवाली है (इसकी शोभा ऐसी है कि वे ईर्ष्या करती हैं और यह उन्हें अपने सौंदर्याधिक्य के कारण क्षमा कर देती है—अर्थात् इसकी शोभा उनसे बहुत बढ़ी चढ़ी है) किंनरियाँ, सुंदर मानवी स्त्रियाँ, नागकन्याएँ, पर्वतकन्याएँ, असुरपत्नियाँ और सुरपत्नियाँ

११—कि-यौ। काम०-कामनीयौ कहा। चुरावति०-चुराए लेति कोऊ यह।

इसकी शोभा देखकर प्रणाम करतीं हैं। पातालवासियों की स्त्रियाँ अथवा मूर्तिमती विद्युत् अथवा कामदेव की ही कामिनी रति भी क्या ऐसी सुंदर है? (नहीं)। यह चित्ररूप में ही चित्त चुराए ले रही है। यह तो रामपत्नी सीता और लक्ष्मी सी सुंदर है।

अलंकार—प्रतीप और उपमा (चतुर्थ चरण में)।

अथ स्वप्नदर्शन-लक्षण—(दोहा)

(१३२) केसव दरसन स्वप्न को, सदा दुरयोई होय।
कबहू प्रगट न जानियै, यह जानै सब कोय।१२।

शब्दार्थ—दुरयोई=छिपा हुआ अर्थात् केवल प्रच्छन्न।

श्रीराधिकाजू को प्रच्छन्न स्वप्नदर्शन, यथा—(सवैया)

(१३३) आतुर ह्वै उठि दौरी अली, जन आतुर ज्यों गहिये सु गही त्यों।
हो मेरी रानी कहा भयो तो कहुँ बूझति केसव बूझियै री ज्यों।
डीठि लगी, किधौं प्रेत लग्यो कि लग्यो उर प्रीतम जाहि डरो यों।
आनन सीकर सी कहिये धक सोवत तें अकुलाइ उठी क्यों।१३।

शब्दार्थ—बूझत = पूछते हैं। डीठि = नजर। सीकर = पसीने की बूंदें। धक = एकाएक।

भावार्थ—(अंतरंग-सखी-वचन नायिका प्रति) हे सखी, उतावलों की तरह तू उठकर दौड़ी है और जैसे उतावला जन किसी को पकड़ता है उस प्रकार तूने मुझे पकड़ रखा है। ऐ मेरी रानी, तुमको क्या हो गया है? मैं तुझसे वैसे ही पूछ रही हूँ जैसे (इस अवसर पर) पूछा जाता है। तुझे नजर लग गई है या भूत-प्रेत लग गया है या प्रियतम ने हृदय से लगाया जिससे तू इस प्रकार डर गई है। तेरे मुख पर पसीने की बूंदें छाई हैं, तू सी सी कर रही है। एकाएक सोते से व्याकुल होकर आखिर क्यों उठ पड़ी?

श्रीकृष्णजू को प्रच्छन्न स्वप्नदर्शन, यथा—(कवित्त)

(१३४) नख-पद-पदवी को पावै पदु द्रौपदी न,
एको बिसौ उरबसी उर में न आनिबी।
लोम सी पुलोमजा न तिल सी तिलोत्तमा न,
मैलहू समान मन मेनका न मानिबी।
जानियै न कौन जाति अब ही जगाएँ जाति,
जीवन तौ जानिहौं जौ ताहि पहिचानिबी।

१२—जानियै—देखियै। जानै—जानत। १३—ह्वै—ज्यों। जन—जनि। हो—है। बूझति बूझत। बूझियै०—बूझि रही त्यौं।

बातक सी बानी माँह, भाव सी भवानी माँह,
केसौदास रति में रतीक ज्योति जानिबी ।१४।

शब्दार्थ—पदवी = उच्चता । एकौ बिसौ = थोडा भी । उरवसी = स्वर्ग की एक अप्सरा । उर में न आनिबी = उसके उर की बराबरी के ध्यान में नहीं चढ़ती । पुलोमजा = इंद्राणी । तिलोत्तमा = एक अप्सरा । जान्...... पहिचानिबी = यदि उसे पहचान लूँगा तो अपने जीवन को बचा समझूँगा (तभी जान में जान आएगी । बातक = बात ही बात । भाव = भावना,कल्पना।

भावार्थ—(नायक उक्ति सखी से) नख और पद की उच्चता का पद द्रौपदी नहीं प्राप्त कर सकती, उर की समता के लिए उर्वशी मन में नहीं लाई जा सकती । उसके रोएँ की समता पुलोमजा (इंद्राणी) से नहीं हो सकती, उसके तिल की समता में तिलोत्तमा कुछ नहीं है । उसके मैल के समान भी मेनका अप्सरा नहीं मानी जा सकती । न जाने वह किस जाति की (सुर नर आदि में से) है । अभी वह मुझे सोते से जगाकर चली जा रही है । अगर उसे पहचान सका (वह मिल गई) तभी मैं अपने प्राणों को बचा समझूँगा । यही नहीं फिर तो मैं यही समझूँगा कि सरस्वती में छटा की बात ही बात है, पार्वती में शोभा की कल्पना ही कल्पना है और रति में भी रत्ती भर ही ज्योति है ।

अलंकार—प्रतीप ।

सूचना—(१) यहाँ केवल वर्णमैत्री के लिए उर्वशी, तिलोत्तमा आदि उपमानों का नाम लिया गया है, किसी विशेष प्रसिद्धि के कारण नहीं ।

(२) इसके बाद मुद्रित प्रतियों में निम्नलिखित दो दोहे भी मिलते हैं जो 'केसवदास' के नहीं माने गए हैं—

भूल होइ जिहि बात की, बिन देखत ही पीव ।
सखी सुनावै गुन स्रवन, अंग अंग सब जीव ।१।
सील रूप गुन समुझि कै, सखी सुनावै आन ।
केसव ताको कहत हैं, दर्सन स्रवन बखानि ।२।

श्रीराधिकाजू को प्रच्छन्न श्रवणदर्शन, यथा—(सवैया)

(१३५) सौंहैं दिवाय दिवाय सखी इक बारक काननि आनि बसाए ।
जानै को केसव काननतें कित ह्वै कब नैननि माँझ सिधाए ।
लाज के साज धरेई रहे सब नैननि लै मनहीं सों मिलाए ।
कैसी करौं अब क्यों निकसैं री हरेंई हरें हिय में हरि आए ।१५।

१४—द्रौपदी–पद्मिनी । जीवन०—जान जानिहौं जौ जाहि केहूँ । बातक सी–बात कैसी । भाव सी–भाव सो । १५—कब–हरि । सब–तब ।

शब्दार्थ—सौहैं दिवाय० = शपथें दिला दिलाकर। इक बारक=सिर्फ एक बार। काननि० = कानों में ला बसाया। नैननि = नेत्रों ने। हरेंई हरें = धीरे धीरे।

श्रीराधिकाजू को प्रकाश श्रवणदर्शन, यथा—(कबित्त)

(११६) कौ लौं पीहौ कानरस, रूप की बुझैहै प्यास,
केसौदास कैसें न नयन भरि पीजियै।
बीर की सौं मेरी बीर बारी है जु वारौं आनि,
नेक ;किन हसहि बलाय तेरी लीजियै।
बरसक माँहि यह बैस अलबेली बीतें,
दैहौ सुख सखिन क्यौं अबहीं न दीजियै।
एरी लड़बावरी अहीरी ऐसी बूझै तोहि,
नाह सों सनेह कीजै नाह सों न कीजियै।१६।

शब्दार्थ—कौ लौं=कब तक। रस = आनंद; पानी। बीर=सखी। बीर=संबोधन। बारी=बालिका, छोटी। वारौ आनि=आकर निछावर होती हूँ। नेक=जरा। लड़बावरी=प्रेम में पागल, अनाड़ी। बूझै=समझ में आता है, मन में बात उठती है। नाह=नाथ, पति। नाह=नहीं।

भावार्थ—(बहिरंग सखी की उक्ति नायिका से) तू कब तक कान से रस (प्रियगुणश्रवण) का पान करती रहेगी, क्या इसी से रूपदर्शन की प्यास बुझ जाएगी ? यदि नेत्र भर पिया न गया तो पीने ही से क्या ? तेरी शपथ मेरी प्यारी, क्या तू छोटी है (जो इस तरह की बातें कह रही है) ? मैं आकर तुझ पर निछावर हो रही हूँ, जरा हँस तो दे मैं तेरी बला लेती हूँ। हाँ तो कर दे। कोई वर्ष भर में यह अवस्था निकल जायगी तब सखियों को क्या सुख दे सकेगी ? इसलिए ऐ अलबेली, अभी यह सुख क्यों नहीं देती ? (प्रिय से मिल, जिससे सखियों को पुरस्कार आदि की प्राप्ति हो) हे प्रेमपगली अहीरी, तेरे बारे में यह बात (शिक्षा) मन में आती है कि तू प्रिय से प्रेम कर, 'नहीं' से प्रेम मत कर।

अलंकार—विरोधाभास (अंत में)।

श्रीकृष्णजू को प्रच्छन्न श्रवणदर्शन, यथा—(कबित्त)

(१२७) लंघतु है लोक, लोकलीक न उलंघी जात,
सबही तूँ समझावै तोहि समझावै को।

१६—कैसें-कैसो। न नयन-जो न नैन, नयननि। पीजियै-पीजई, लीजई आदि। है-हो। वारौं-वारी। किन हसहि-हँसि कहिहौ, हँसि हाँ करि। माँहि-मांझ। बूझै-बूझौं।

छोड़न कहत तनु तनक न छूटै लाज,
धन मीत राखि दोऊ कोबिद कहावै को।
सोच को सँकोचहू को पूरब-पछिम पंथ,
केसौदास एक काल एक जन धावै को।
दुख-सुख दूरीदुरा दूरिहूँ तें मेरे मन,
जैसी सुनी तैसी तोहि आँखिन दिखावै को।१७।

शब्दार्थ—कोबिद = पंडित। दूरीदुरा=दूर करके, हटाकर।

भावार्थ—(नायिका की उक्ति मन से) हे मन, तू लोकों तक का उलंघन तो कर जाता है, पर लोकमर्यादा का उल्लंघन किया ही नहीं जा सकता। तू तो सबको समझाता है, तब तुझे कौन समझाए ? तू शरीर छोड़ने को कहता है पर लज्जा तो थोड़ी भी तुझसे छूटती नहीं (शरीर क्या छोड़ा जाएगा ?)। धन को भी और मित्र (की मित्रता) को भी दोनो को बनाए रखकर कौन पंडित कहला सकता है ? सोच और संकोच का पूर्व और पश्चिम (विपरीत) मार्ग है। इन दोनो मार्गों पर एक ही समय में एक ही व्यक्ति कैसे दौड़ सकता है ? इसलिए दुख सुख को दूर करके ऐ मेरे मन, जैसी छवि उनकी सुन रखी है वैसी दूर से ही सही तुम्हें आँखों से कौन दिखा सकता है ? (उनके श्रवणदर्शन हो रहे हैं, पर प्रत्यक्ष दर्शन नहीं होते)।

श्रीकृष्णजू को प्रकाश श्रवणदर्शन, यथा—(कबित्त)

(१३८) निपट कपट हर प्रेम को प्रकट कर,
बीस बिसे बसीकर कैसें उर आनियै।
काम को प्रहरषन कामना को बरषन,
कान्ह को सँकरषन सब जग जानियै।
किधौं केसौदास महि मोहनी को भूषन है,
किधौं ब्रजबालनि को दूषन बखानियै।
सुनतहीं छूट्यो धाम बन बन डोलैं स्याम,
राधे तेरो नाम कै उचाटमंत्र मानियै।१८।

शब्दार्थ—बीस बिसे = पूर्ण रूप से। सँकरषन = खींचनेवाला।

भावार्थ—(सखी की उक्ति नायिका से) यह अत्यंत कपट को हरनेवाला, प्रेम को प्रकट करनेवाला और पूर्णरूप से वश में करनेवाला है, हृदय में कैसे धारण किया जा सकता है ? काम को प्रहर्षित करनेवाला, कामनाओं का

१८—महि--मन।

वर्षण करनेवाला, कृष्ण को आकृष्ट करनेवाला है, इसे सब जग (लोग) जान गया है। यह पृथ्वी में मोहनी (विद्या) के लिए भूषण (अनुकूल) है या व्रजबालाओं के लिए दूषण (विपरीत) है ? इसके सुनते ही घर छूट गया है और श्याम वन वन घूम रहे हैं यह तेरा नाम है या उच्चाटन मंत्र ?

सूचना—राधिका के नाम और उच्चाटन मंत्र दोनो पर विशेषण घटित होंगे।

(दोहा)

(१३९) दरस रमन रमनीनि के, कहे परम रमनीय।
प्रगटन प्रेम प्रभाव अब, कहौं कछू कमनीय।१९।

इति श्रीमन्मन्महाराजकुमारइंद्रजीतविरचितायां रसिकप्रियायां चतुर्विध-दर्शनप्रच्छन्नप्रकाशवर्णनं नाम चतुर्थः प्रभावः ॥४॥

पंचम प्रभाव

अथ दंपति-चेष्टा-वर्णन—(दोहा)

(१४०) तिनके चित की जानि सखि, पिय सों कहै सुनाय।
कहै सखी सों प्रीतमै, आपुन तें अकुलाइ।१।

श्रीराधिकाजू की सखी को वचन कृष्ण प्रति—(सवैया)

(१४१) काल्हि की ग्वालि तो आजहू लौं न सँभारति केसव कैसेहूँ देहै।
सीरी ह्वै जाति, उठै कबहूँ जरि जीव रह्यौ कै रही रुचि-रेहै।
कोरि बिचार बिचारति है उपचारनि के बरसैं सखि मेहै।
कान्ह बुरौ जिन मानो तिहारी बिलोकनि मैं बिस बीस बिसै है।२।

शब्दार्थ—ग्वालि=गोपिका। देहै=शरीर को। रुचि=चमक, कांति। रेहै=रेखा ही। रही रुचि-रेहै=कांति की रेखामात्र रह गई। कोरि=करोड़। मेहै=मेघ ही। बिस=विष।

भावार्थ—हे कृष्ण, आपने जिस गोपिका को कल देखा था वह आज तक भी किसी प्रकार अपने शरीर को सँभाल नहीं पा रही है। कभी वह ठंढी पड़ जात है और कभी जल उठती है। पता नहीं चलता कि उसके शरीर में प्राण हैं या वह कांति की रेखा मात्र ही रह गई है (प्राण उड़ गए हैं)। सखियाँ उसको होश में लाने के लिए करोड़ों उपाय सोचती हैं, वे उपचार की वर्षा कर रही हैं (अत्यधिक उपचार कर रही हैं) फिर भी वह होश में नहीं आ रही है। बुरा मत मानिएगा (मुझे ऐसा जान पड़ता है कि) आपकी

१९—दरस०—दर्सनरस रमनीब के।१—तिन—तिय। २—रह्यौ—ह्यो है कै।

चितवन में बीसो बिस्वा (पूर्ण रीति से, निश्चय ही) विष भरा हुआ है (नहीं तो ऐसा क्यों होता)।

सूचना—विष खानेवाले का शरीर कभी ठंढा पड़ता है, कभी गरम हो जाया करता है, कभी जान निकल गई सी जान पड़ती है, इसलिए यहाँ पर विष के प्रभाव और चितवन के प्रभाव का साम्य दिखलाकर चितवन का विष होना कहा गया है।

अलंकार—रूपक, काव्यलिंग।

श्रीकृष्णजू को वचन राधिका की सखी प्रति—(कबित्त)

(१४२) प्यास ह्वै रही उदास, भागी भूख गहि त्रास,
केसौदास नींदहू की निंदा नित ठानी है।
मति को मतौ न लेय बिद्या की बिदाई देय,
सोभा सुकी सेय सेय सब सुख सानी है।
बिष से लगत गीत, केलि की न परतीत,
प्रीत उर पाहुनी सी पचि पहिचानी है।
तो बिन कहै को गाथ धीरता न ताके साथ,
मोहिं को मिलावै हाथ लाज के बिकानी है।३।

शब्दार्थ—नींदहूँ ..ठानी है=अर्थात् निद्रा भी नहीं आती। मतौ=राय, संमति।

भावार्थ—(नायक की उक्ति सखी से) उस (नायिका) की प्यास उदास हो गई है, भूख भयभीत होकर भाग गई है, निद्रा की भी नित्य निंदा करती है (अर्थात् प्यास-भूख और नींद नहीं हैं)। बुद्धि की सलाह नहीं लेती, विद्या को भी बिदाई दे दी है (न बुद्धि ठिकाने है और न विद्या से ही काम ले रही है)। सोभारूपी सुग्गी को सेने में ध्यान लगाकर सुख का अनुभव कर लेती है (अन्यथा दुख ही दुख है)। गीत (गान) तो उसे विष से जान पड़ते हैं, केलि (क्रीड़ा) का भी विश्वास जाता रहा। प्रीति बड़ी कठिनाई से नई आई पाहुनी की तरह उसके द्वारा पहचानी गई है। तेरे बिना समाचार कौन कह सकता है ? उसके पास धीरता नहीं हैं। मुझे उससे कौन मिला सकता है ? वह तो इस समय लज्जा के हाथ बिक गई है।

अथ चेष्टा-लक्षण—(दोहा)

(१४३) पिय सों प्रगटन प्रीति कहँ, जितने करौ उपाय।
ते सब केसवदास अब बरनौं सबनि सुनाय।४।

३—गहि त्रास--गई बास। नित-दिन। सोभा०- सेज सूनी। सुख--दुख। धीरता०--धीरजता लै कै साथ। ४—करौ-करहि, करत। बरनौं--बरनत।

शब्दार्थ—पिय = प्रिय, नायक। प्रगटन प्रीति कहँ = प्रेम को प्रकट करने के लिए। करौ = किए जाते हैं।

(१४४) **जब चितवै पिय अनत ही, तब चितवै निहसंक।**
जानि विलोकत आपु त्यों, अलिहि लगावै अंक।५।

शब्दार्थ—अनत = अन्यत्र। निहसंक = निःशंक, शंकारहित। आपु त्यों = अपनी ओर। अलिहि=सखी को। अंक=अँकवार छाती (से)।

(१४५) **कबहूँ श्रुति-कंडू करै, आरस सों ऐंड़ाइ।**
केसवदास बिलास सों, बार बार जमुहाइ।६।

शब्दार्थ—श्रुति-कंडू=कान खुजलाना। आरस = आलस्य। ऐंड़ाइ = देह तोड़ती है। बिलास = भावभंगिमा, आकर्षक चेष्टा। जमुहाइ = जँभाई लेती है।

(१४६) **झूठेहीं हँसि हँसि उठै, कहै सखी सों बात।**
ऐसें मिसहीं मिस प्रिया, पियहि दिखावै गात।७।

शब्दार्थ—मिस = बहाना। प्रिया = नायिका।

(१४७) **यों हीं पीय पियानि प्रति, प्रगटत अपनी प्रीति।**
सो प्रच्छन्न प्रकास करि, बुधिबल करत समीति।८।

शब्दार्थ—पीय = नायक। करि = भेद करके। समीति करत = एकत्र करते हैं।

श्रीराधिकाजू की प्रच्छन्न चेष्टा, यथा—(कवित्त)

(१४८) **चोरि चोरि चित चितवति मुँह मोरि मोरि,**
काहे तें हँसति हियें हरष बढ़ायो है।
केसौदास की सौं तूँ जँभाति कहा बार बार,
बीरी खाइ मेरी बीर आरस जौ आयो है।
एँड़ सों एँड़ाति अति अंचल उड़ात, उर
उघरि उघरि जात गात छबि छायो है।
फूलि फूलि भेंटति रहति उर झूलि झूलि,
भूलि भूलि कहति कछू तैं आज खायो है।९।

शब्दार्थ—चोरि चोरि = चुरा चुराकर। एंड = गर्व की मुद्रा। उर= वक्षःस्थल। फूलि फूलि = प्रसन्न हो होकर। उर = हृदय में। झूलि झूलि = झूम झूमकर।

५—निहसंक-निरसंक। ७—प्रिया—तिया। ८—यों-त्यौं। प्रगटत-- प्रगटै। करत--कहत। ९—केसौदास-केसोराइ। जौ-त्यौं। बीरी०-बिस खाइ मेरी बीर ओर जोर आयो है। उड़ात—उठात। उघरि०—उरज उघरि जात। खायो-पाय।

अलंकार—पिहित ।

श्रीकृष्णजू की प्रच्छन्न चेष्टा, यथा—(कबित्त)

(१५०) छोरि छोरि बाँधौ पाग आरस सों आरसी लै,
अनत ही आन भाँति देखत अनैसे हौ।
तोरि तोरि डारत तिनूका कहौ कौन पर,
कौन के परत पाइ बावरे ज्यों ऐसे हौ।
कबहूँ चुटकि देति चटकि खुजावौ कान,
मटकि ऐंड़ाउ जुरी ज्यों जँभात तैसे हौ।
बार बार कौन पर देत मनिमाला मोहि
गावत कछू के कछू आज कान्ह कैसे हौ।११

शब्दार्थ—पाग=पगड़ी। आरसी=(आदर्श) दर्पण। अनत=अन्यत्र। आन भाँति=दूसरे ढंग से। अनैसे=(अनिष्ट) बेढंगे। तिनूका=तिनका। चुटकि=देत=चुटकी बजाते हो। चटकि=जल्दी से। जुरी=ज्वरी, ज्वरग्रस्त। जुरी०=ज्वर से पीड़ित व्यक्ति की भाँति जँभाते हो। कौन पर=किसके लिए।

(१५१) श्रीकृष्णजू की प्रकाश चेष्टा, यथा—(सवैया)

जा लगि लाँच लुगाइनि दै दिन नाच नचावत साँझ पहाऊँ।
केसव मंत्र करौ बसकारक हारक जंत्र कहाँ लौं गनाऊँ।
हारि रहे हरि क्योंहूँ मिली न मिलाऊँ जौ ताहि तौ माँगौं सो पाऊँ।
ठाढ़ी वै जाइ मिलौ मिलिबे कहँ और कछू कनियाँ करि लाऊँ।१२।

शब्दार्थ—लाँच=घूस, रिश्वत। दिन=नित्य, प्रतिदिन। पहाऊँ=प्रभात, सबेरे। हारक=थका देनेवाले।

भावार्थ—(सखी की उक्ति नायक प्रति) जिसको आपने वश में करने के लिए नित्य दूतियों को घूस देकर साँझ-सबेरे नाच नचाया (परेशान किया), फिर आपने अनेक वशीकरण मंत्रों का प्रयोग किया तथा थका देने वाले जंत्रों का भी प्रयोग किया, मैं कहाँ तक उनकी गिनती करूँ। आप अब हार मान बैठे, वह किसी प्रकार मिली नहीं। ऐसी नायिका को यदि मैं आपसे ला मिलाऊँ तो अवश्य ही जो माँगूँ वह मिलेगा (तुझे इसका पूरा विश्वास है)। अच्छा जाइए, वे मिलने को खड़ी हैं, क्या उन्हें गोद में लाना पडेगा ?

११—बाँधौ–बाँधै। कहौ–तुम। ऐंडाउ–पौंडाउ, ऐंड़ात। तैसे–वैसे, जैसे। के–को। १२—लाँच–लोच। पहाऊँ–महाऊँ। हारक–हारे कै। क्यों हूँ–केहूँ। सो–सु। जाइ–जाहु। कछू–कहा। लाऊँ–ल्याऊँ।

अथ स्वयंदूतत्व-लक्षण—(दोहा)

(१५२) जौ क्योंहूँ न मिलै कहूँ, केसव दोऊ ईठ।
तौ तब अपने आप ही, बुधिबल होत बसीठ।१३।

शब्दार्थ—ईठ = (इष्ट) मित्र। अपने आप ही = स्वयम् ही। बसीठ = (अवसृष्ट विसृष्ट) दूत।

(१५३) श्रीराधिकाजू को प्रच्छन्न स्वयंदूतत्व, यथा—(सवैया)

दूरि तें देखिबे कौं ह्वै दीन मनाई हुती लिखि ही लिखि चीठी।
देखें मिल्यो मनु हौं हू मिली मिलि खेलिबे हूँ कों मिली मति मीठी।
ऐसे में और चलाइहौ केसव कैसहूँ कान्ह कुमार दै ढीठी।
लागै न बार मृनाल के तार ज्यों टूटैगी लाल हमैं तुम्हैं ईठी।१४।

शब्दार्थ—हुती = थी। मीठी = अच्छी। ढीठी = धृष्टता। बार = देर। ईठी = मित्रता।

भावार्थ—(नायिका की उक्ति नायक प्रति) अत्यंत दीन हो होकर दूर से ही देख लेने के लिए चिट्ठियाँ लिख लिखकर आपने मनाया। देखने पर मन मिल गया। मैं भी आपसे मिली। मिलकर खेलने के लिए मधुर मति भी मिल गई (खेल खेलने की सुहावनी बुद्धि भी जगी) ऐसे अवसर पर हे कान्ह कुमार, यदि धृष्टतापूर्वक और कोई चर्चा चलाएँगे (जाने की बात करेंगे) तो हे लाल, हमारी आपकी मित्रता टूट जायगी, मृणाल तार की भाँति उसके टटने में कुछ भी देर न लगेगी (यह आपने चलने का क्या झगड़ा छोड़ दिया)।

अलंकार—दृष्टांत।

सूचना—प्रमुद्रित प्रतियों में इसके बाद एक सवैया और मिलता है जो पूर्ण हस्तलिखित प्रति में नहीं है।

पुनः प्रिया को स्वयंदूतत्व, यथा—(सवैया)

छुवौ जनि हाथ सों हाथ किये पल ही पल बाढ़त प्रेमकला।
न जानियै जी मैं कहा बसि जाइ चलै पुनि केसव कौन चला।
भले ही भले निबहै जो भली यह देखिबे ही की हला हू भला।
मिलो मन तौ मिलिबोई कहूँ मिलिबो न अलौकिक नंदलला।

श्रीराधिकाजू को प्रकाश स्वयंदूतत्व, यथा—(सवैया)

(१५४)धाई नहीं घर दाई परी जुर,आई खिलाई की आँखि बहाऊँ।
पौरियै आवै रतौंधी इतै पर ऊँचो सुनै सु महा दुख पाऊँ।

१३—लक्षण–वर्णन। होत–होइ, करत। १४—मनाई–पठाई। ढीठी–बीठो। लागै०–ह्वै है न, तो ह्वै है। मृनाल–मुराति, मुरारि।

कान्ह निबेरहु न्याउ नयो इन आलिन कौ लगि हौं बहराऊँ।
ए सब मो सँग सोवन आवैं कि मैं इनके सँग सोवन जाऊँ।१५।

शब्दार्थ—धाई = (धातृ) अपना दूध पिलाकर बच्चों को पालनेवाली। दाई=परिचारिका। आई = (आर्या) अइया। खिलाई=खिलाई हुई, खाने मात्र पर सेवा करनेवाली। बहाऊँ=आँसू बहानेवाली। पौरियै = द्वारपाल को। निबेरहु = निपटा दो।

भावार्थ—घर में धाय नहीं है। दाई ज्वर में पड़ी है। आई की आँखें आँसू बहाती रहती हैं (वह भी देखने में अशक्त है) द्वारपाल को रतौंधी आती है (रात में सूझता ही नहीं)। (यही क्यों) इतने पर भी वह ऊँचा सुनता है (बहरा है), इसलिए बड़ा दुख पा रही हूँ। हे कान्ह, मेरे इस नए (विलक्षण) न्याय का निबटारा करते जाइए। मैं इन सखियों से आखिर कब तक अपने मन को बहलाती रहूँ। (दिन में तो किसी प्रकार समय कट भी जाता है पर रात कैसे कटे) इसलिए या तो ये सब मेरे साथ सोने के लिए (मेरे घर पर) आया करती हैं या मैं ही इनके यहाँ सोने चली जाया करती हूँ (मुझे अकेले बड़ा भय लगता है)।

सूचना—'आई' का अर्थ 'आर्या' करके 'बुड्ढी' करने के बदले 'आँख आई' अन्वय भी कर सकते हैं।

श्रीकृष्णजू को प्रच्छन्न स्वयंदूतत्व, यथा—(कवित्त)

(१५५) **आपनेहीं भाइ के ए सोहत सरीक से वे,**
केसौदास दास ज्यों चलत चित लीने हैं।
आपुहीं अठाउ कै ये लेत नाउँ मेरो वे तौ,
बापुरे मिलाप कै सँलाप करि हीने हैं।
राधिकै सुनाइ कै कहत ऐसें घनस्याम,
सुबल को लै लै नाम कामभयभीने हैं।
साथ लै सखानि अब जैबो बन छाड्यो हम,
खेलिबे को संग सखा साखामृग कीने हैं।१६।

शब्दार्थ—ये = गोपसखा। सरीक=साथ। वे = वानर सखा। चित लीने=चित्त मिलाकर, उनकी मरजी का ध्यान रखकर। अठाउ = शरारत। बापुरे=बेचारे। मिलाप = मेल। सँलाप = बातचीत। सुबल = (स्वबल) अपनी सेना या अपना बल। साखामृग=बंदर।

१५—जुर-जुरि। आई-आईं। कौ-कि। बहाऊँ-महाऊँ। पौरियै-पौरि पै। रतौंधी-रत्यौंधु। बहराऊँ-समझाऊँ। मैं इनके०-हौं इनके सब। १६—आपनेहीं-आपनेई। भाइ के-भाउ को। चित-चिह्न। आपुहीं-आपुए। कै ये-कै तो। मेरो-मेरे। सँलाप-सँताप। राधिकै-प्रिया को। भय-रस।

भावार्थ—(सखी का वचन सखी से) राधिका को सुना सुनाकर काम-त्रास से भीत घनश्याम श्रीकृष्ण अपनी वानरी सेना को नाम ले लेकर बुलाते हैं। (उन्होंने गोप सखाओं का साथ छोड़ दिया है, वानर सखाओं का साथ किया है, वानर हैं शाखामृग, वृक्षों पर ही अपने झुंड के साथ रहते हैं, उन्हें आवश्यकता पड़ने पर नाम ले लेकर बुलाना पड़ता है)। श्रीकृष्ण कहते हैं कि गोप सखा तो अपने भाइयों के संगी हैं, उनके साथ साथ रहते हैं (मेरे साथ रहना उन्होंने छोड़ दिया है)। रहे वे वानर सो वे दास की भाँति चित्त को समझकर ही साथ रहते हैं। प्रायः वृक्षों पर ही डटे रहते हैं। मैं चाहूँ या बुलाऊँ तो आते हैं अन्यथा नहीं। गोप सखा नटखटपना स्वयम् करते थे और नाम मेरा लगाते थे। वे वानर बेचारे तो मिलाप और बातचीत दोनों से रहित हैं। न तो उनका निरंतर साथ रखा जा सकता है और न वे वार्तालाप करने के योग्य हैं। गोपों के साथ बन जाना मैंने छोड़ दिया है। रहा यहाँ समय काटने का प्रश्न सो इन्हीं वानरों को सखा बना लिया है इनसे कुछ समय तक मन बहलाया, फिर ये डाल पर जा लटकते हैं। मैं अकेले रह जाता हूँ।

श्रीकृष्णजू को प्रकाश स्वयंदूतत्व यथा—(सवैया)

(१५६) बन जैयै चलौ, कोऊ ठाली है केसव हौ तुम हैं तौ अरे अरिहौ।
कछु खेलियै खेलि न आवत आज ही भूल्यो न भूल्यो गरे परिहौ।
हितु है हिय, है किधौं नाहीं तऊ हितु नाहिं हिये तु ललां लरिहौ।
हम सों यह बूझियै ऐसी कहौ ब कही हो कही सु कहा करिहौ।१७

शब्दार्थ—जैबे = जाना है। ठाली = बैठी ठाली, फालतू, बेकाम। अरिहौ = अड़ोगे, बरजोरी करोगे। ही = हृदय। हितु = प्रेम।

भावार्थ—नायक और नायिका का संवाद वर्णित है—

नायक—बन जाना है, चलो।

नायिका—यहाँ क्या कोई बैठी ठाली है ? (जो बन को चले)।

नायक—तुम तो हो।

नायिका—हाँ, हूँ तो क्या बरजोरी करोगे ?

नायक—(नहीं) कुछ खेल खेलें।

नायिका—खेलना तो आता ही नहीं।

नायक—(अब तक आता था) क्या आज ही खेलना भूल गया है।

नायिका—(मान लीजिए कि) नहीं भूला है (आता ही है तो क्या) गले पड़ेंगे (बरबस खेल खेलेंगे)।

१७—जैयै--जैबे, कौं जू। हैं--हौं, ही। अरी--अरे। खेलियै--खेलन। भूल्यो०--भूलो न भूलो। हिय है--हिय में। तु--तौ। ब--जो। सु--ब।

नायक—(तुम्हारी तो बात ही समझ में नहीं आती, तो भी यह बतलाओ कि) तुम्हारे हृदय में (मेरे लिए) प्रेम तो है न ?

नायिका—क्या जाने है या नहीं।

नायक—इतने पर भी प्रेम नहीं है।

नायिका—(मान लीजिए नहीं है) तो क्या आप झगड़ा करेंगे ?

नायक—मुझसे अब ऐसा व्यवहार और ऐसी बातें कह रही हो ?

नायिका—जो मैंने कहा सो कहा। आप क्या कर लेंगे ?

सूचना—'नायिका के टेढ़े उत्तर सखियों को दिखाने के लिए हैं, वह नायक को बतला रही है कि मेरी इच्छा विहार की है।' ऐसा अर्थ सरदार ने अपनी टीका में किया है। इसलिए 'अरिहौ' का अन्य अर्थ 'सकोगे', 'गरे परिहौ' का अर्थ 'भेंटोगे', 'लरिहौ' का 'विहार करोगे' आदि किया है।

अलंकार--गूढ़ोक्ति।

अन्यच्च, यथा—(कबित्त)

(१५७) केसौदास **घर घर नाचत फिरत गोप,**
एक परे छकि ते मरेई गुनियत है।
बारुनी के बस बलदाऊ भए सखा सब,
संग लै को जैये दुख सीस धुनियत है।
मोहिं तौ गए ही बनै दीह दीपमाला पाइ,
गाइनि सँवारिबे को चित्त चुनियत है।
जौ न बसौं लोलिनैनि लेरुवा मरहिं सब,
खरिक खरेई आज सूने सुनियत हैं।१८।

शब्दार्थ—छकि = नशे में चूर। बारुनी = मदिरा, शराब। दीह दीपमाला = बड़ी दीवाली। सँवारिबे कौं = एकत्र करने के लिए। चुनियत है = चाहता है। लेरुवा = बछड़े। खरिक = गोशाला।

भावार्थ—जितने गोप हैं घरघर नाचते फिरते हैं, वे नशा पी पीकर ऐसे बेहोश हो गए हैं कि उन्हें मरा ही समझना चाहिए। बलदेव तथा सभी सखा शराब के वश में हैं (वे सब उसी के नशे में चूर हैं)। अब मैं साथ में लेकर जाऊँ भी तो किसे, इसी दुख से सिर पीट रहा हूँ। मेरे जाने से ही बनेगा, बड़ी दीवाली आ गई। गायों को एकत्र करना ही उचित है। चंचल नयनी, यदि मैं गोशाला में आकर नहीं बसता तो बछड़े सबके सब मर जाएँगे क्योंकि गायों के भी न रहने से गोशाला में अत्यंत सन्नाटा है।

१८—एक--ऐसे। परे--रहे। भए--कीन्हें। लै को--लै कै, को लै। जैये--जाउँ। दुख--काहि, देखे। गए हीं--गहेई। दीह--देह। सँवारिबे--सिंगारिबे। बसौं--मिलै, मेलौं। मरहिं०--मरेहो प्यासे। खरिक--खरक, दरिक।

सूचना—(१) 'दीह दीपमाला' से बड़ी दीपावली। छोटी दीवाली 'डिठवन' (देवोत्थानी हरिप्रबोधनी) को होती है। 'सूने सुनियत' से सन्नाटा और एकांत सूचित करना चाहता है। (२) हस्तलिखित पूर्ण प्रति में वह छंद नहीं है।

(दोहा)

(१५८) **ऊढ़ा पुनि यहि भाँति करि, बहु बिधि हितनि जनाइ।**
आपुन ही तें लाज तजि, पियहि मिलै अकुलाइ।१६।

यथा—(कबित्त)

(१५६) **पंथ न थकत पल मनोरथ-रथनि के,**
केसौदास **जगमग जैसें गाए गीत मैं।**
पवन बिचार चक्र चक्रमन चित चढ़ि,
भूतल अकास भ्रमै घाम जल सीत मैं।
कौ लौं राखौं थिर बपु बापी कूप सर सम,
हरि बिनु कीने बहु बासर बितीत मैं।
ज्ञान-गिरि फोरि तोरि लाज-तरु जाइ मिलौं,
आपु ही तें आपगा ज्यौं आपुनिधि प्रीतमैं।२०।

शब्दार्थ—जैसें गाए गीत मैं = जैसे वे रथ गीतों में गाए गए हैं (अर्थात् अत्यंत तीव्र)। पवन=वायु, श्वास। चक्र = पहिया। चक्रमन=चंक्रमण, घूमना, चलना। वपु = शरीर। बापी = बावड़ी। सर = तालाब। आपगा = नदी। आपुनिधि = समुद्र। प्रीतमैं = प्रिय को।

शब्दार्थ—(नायिका की उक्ति) मनोरथ के रथ का मार्ग क्षण भर भी रुकता नहीं है। वह उसी प्रकार गतिशील रहता है, जगमगाता मार्ग पर चलता है, जैसा गीतों में गाया गया है। श्वास और विचार इस रथ के चक्र (पहिये) हैं। इस रथ पर चढ़कर घूमने के लिए निकलता है चित्त। वह इस पर बैठा भूतल से आकाश तक धूप, वर्षा और जाड़े में घूमता ही रहता है। शरीररूपी जल को बावड़ी, कुएँ और तालाब के जल की भाँति कब तक स्थिर रखूँ। हरि के वियोग में बहुत दिन मैंने बिताए अब तो ज्ञान के पर्वत को फोड़ कर (मार्ग निकालकर) और लज्जा रूपी वृक्ष को तोड़कर स्वयम् ही यह देहरूपी नदी प्रियतम समुद्र से जा मिले (यह इच्छा होती है)।

अलंकार—रूपक।

अन्यच्च, यथा—(सवैया)

(१६०) **जाति भई सँग जाति लै कीरति, केसव है कुल सों हित खूट्यो।**
गर्व गयो गुन जोबन रूप को पुन्य सु तौ फल ही पल फूट्यो।

१६—हितनि–हितन्हि। पियहि–पतिहि। २०–थकत–थकित। रथनि के–रथन के, रथ नाके। चक्रमन–चक्रमान। फोरि–कोरि।

कान्ह, तिहारियै आन कियें कहौं लाज सों नीको ह्वै नातोई टूटयो।
छाँड्यो सबै हम हेरि तुम्हैं तुम पै तनकौ कपटौ नहिं छूटयो।२१।

शब्दार्थ—जाति भई = नष्ट हो गई। खूटयो = कम हो गया, पुन्य = पुन्य का घड़ा। आन = शपथ। नीके ह्वै = भली भाँति। हेरि = देखकर।

भावार्थ—(नायिका की उक्ति) मेरी कीर्ति (आपके प्रेम के कारण) गई (नष्ट हो गई) और अपने साथ ही मेरी जाति भी लेती गई (जात-बिरादरी से भी पृथक् कर दी गई, अपकीर्ति हुई सो तो हुई ही)। कुल (कुटुंब) से प्रेम कम हो गया, क्षीण हो गया। गुण, सौंदर्य और यौवन का भी गर्व चला गया (मैंने इनका तो गर्व भी नहीं किया)। क्षणक्षण पुण्य का घड़ा भी फूटता ही गया अर्थात् सुख नहीं रहा। हे कान्ह, आपकी शपथ करके कहती हूँ कि लज्जा से तो बना बनाया नाता ही टूट गया (मैंने लज्जा भी छोड़ी)। क्या कहूँ, तुम्हें देखकर (तुम पर मुग्ध होकर) मैंने तो सब कुछ छोड़ दिया, पर तुमसे कुछ भी छोड़ा नहीं गया, यहाँ तक कि थोड़ा सा भी कपट तुमने नहीं छोड़ा (आप अब भी अन्य स्त्रियों के यहाँ जाते हैं और मुझसे कपट करके)।

(दोहा)

(१६१) अधिक अनूढ़ा लाज तें, पिय पै जाइ न आप।
क्योंहूँ करि सखियै कहै, ताके उर की ताप।२२।

शब्दार्थ—आप = स्वयम्। क्योंहूँ करि = किसी प्रकार। सखियै = सखी ही। ताप=गरमी, संताप।

यथा—(सवैया)

(१६२) जानै को केसव कौनै कह्यो कब कान्ह हमारे हिंडोरनि झूलै।
पान न खाइ, न पान्यो पियै तब तें भरि लोचन लेत समूलै।
जाहु नहीं चलि बेगि बलाइ ल्यौं लेहु सकेलि कहा यह भूलै।
जानत हौ वह काम-कली कुँभिलाई गएँ बहुरयौ फिरि फूलै?।२३।

भावार्थ—(सखी-वचन नायक से) हे कान्ह, न जाने कब किसने उससे कह दिया है कि कान्ह हमारे झूले पर झूलते हैं। (तभी से) न वह पान खाती है न पानी पीती है। वह लोचनों को समूल (जड़ से, भली भाँति आँसू से) भर लेती है। मैं आपकी बला लेती हूँ आप शीघ्र ही उसके पास चले क्यों नहीं जाते ? उसके निकट जाने में देर करना आपकी भूल है, ऐसा करके

२१—सों-मों। खूटयो-फूटयो, कुटयो। गुन-पुनि। पुन्य०-सो तो सबै। फुटयो-खूटयो। निहारियै-तिहारि ही। कहौं--कहैं। नीको-नीके, नीक। ह्वै-ही। २२—क्यों हूँ०-कैंहूँ करि। उर-तन। २३—पान्यौ-पानी। लोचन०-अखियाँ लेति। लेउ-लैहो।

आप क्या बटोर लेंगे ? (आपके न जाने) मेरी समझ में यदि कहीं वह कामदेव की कली कुँम्हला गई तो फिर क्या फूलेगी ? (कदापि नहीं) ।

अथ प्रथम-मिलनस्थान-वर्णन—(दोहा)

(१६३) जनी सहेली धाइ घर, सूने घर निसि चार ।
अति भय उत्सव व्याधि मिस न्यौते सु बन-बिहार ।२४।

शब्दार्थ—जनी = दासी । चार = चलना, घूमना । निसि०=रात में भ्रमण । ब्याधि = रोग ।

(दोहा)

(१६४) इन ठौरनि ही होत है, प्रथम मिलन संसार ।
केसव राजा रंक को, रचि राखे करतार ।२५।

जनी के घर को मिलन, यथा—(कबित्त)

(१६५) बेषु कै कुमारिका को ब्रज की कुमारिकानि,
माँझ साँझ केसौदास त्रास पग पेलिकै ।
काम की लता सी चपला सी प्रेम पासो सी है,
राधिका के बुद्धिबल कंठ भुज मेलिकै ।
दौरि दौरि दुरि दुरि पूरि पूरि अभिलाष,
भाँति भाँति के अनूप-रूप बहु केलि कै ।
जनी के अजिर आज रजनी में सजनी री,
साँची करी स्याम चोरमिहचनी खेलिकै ।२६।

शब्दार्थ—त्रास पग पेलिकै = भय को पैरों से दबाकर, निर्भय होकर । चपला = बिजली । प्रेमपासी सी=प्रेम के फंदे की भाँति । मेलिकै=डाल कर । दुरि दुरि=छिप छिपकर । बहु केलि कै = अनेक क्रीड़ा करके । जनी = दासी । अजिर = आँगन । चोरमिहचनी खेलिकै = आँखमिचौली खेलकर ।

भावार्थ—(सखी की उक्ति सखी प्रति) हे सखी, आज कृष्ण ने स्वयम् कुमारी का वेश बनाया और संध्या-समय निर्भय होकर व्रज कुमारियों में जा मिले । उन्होंने बुद्धि के कौशल द्वारा काम की लता, बिजली एवम् प्रेमपाश स्वरूप सुंदरी राधिका के गलबाँही डाल दी । आँखमिचौली खेल के बहाने दौड़ दौड़कर छिप छिपकर और इस प्रकार अभिलाषों की पूर्ति करते हुए उन्होंने लाखों प्रकार की अद्वितीय कामक्रीड़ा की । (चोर बने हुए) श्रीकृष्णजी ने, दासी के आंगन में आज रात्रि को (इस रीति से) आँखमिचौली के

२४—सूने घर-घरनि सँचार । सु बन-बिपिन । २५-इन०-इनहीं ठौरनि ।राखे-राखो । २६—चपला सो०-चल प्रेमपास सी अमल । भाँति भाँति०-लाख भाँति । करी-कीन्हो ।

खेल को खेल (आरोपित या असत् व्यापार) नहीं रहने दिया, वास्तविक कर दिया।

अलंकार—द्वितीय पर्यायोक्ति, उपमा।

सहेली के घर को मिलन, यथा—(कबित्त)

(१६६) नैनिन के तारनि में राखौ प्यारे पूतरी कै,
मुरली ज्यों लाइ राखौ दसन-बसन में।
राखौ भुजबीच बनमाली बनमाला करि
चंदन ज्यों चतुर चढ़ाइ राखौ तन में।
केसौराइ **कलकंठ राखौ बलि कठुला कै,**
करम करम क्योंहूँ आनी है भवन में।
चंपक-कली ज्यों कान्ह सूँघि सूँघि देवता ज्यों,
लेहु मेरे लाल, इन्हैं मेलि राखौ मन में।२७।

शब्दार्थ—तारनि = तारों में। पूतरी = आँख की पुतली। ज्यों=तरह। लाइ = लाकर। लाइ राखौ = ला रखो, लगा रखो। दसन-बसन = दाँत का वस्त्र, अधर, ओठ। बनमाली = श्रीकृष्ण। बनमाला = घुटनों तक या पैरों तक लंबी माला। चतुर = हे चतुर। कलकंठ = सुंदर कंठवाली, मधुर वाणी बोलनेवाली। कठुला = गले का हार। करम करम = क्रम क्रम से धीरे धीरे सिखा-पढ़ाकर। आनी है भवन में = इन्हें घर तक ले आई हूँ। क्योंहूँ = किसी प्रकार। देवता = देवी। लाल = श्रीकृष्णलाल। मेलि राखौ= धारण कर लो।

अलंकार—उपमा।

धाइ के घर का मिलन, यथा—(कबित्त)

(१६७) हँसत खेलत खेल मंद भई चंदद्युति,
कहत कहानी और बूझत पहेली-जाल।
केसौदास **नींदबस अपने अपने घर,**
हरें हरें उठि गए बालिका सकल बाल।
घोरि उठे गगन सघन घन चहूँ दिसि,
उठि चले कान्ह धाइ बोलि उठी तिहि काल।
आधी राति अधिक अँध्यारे माँझ जैहौ कहाँ,
राधिका की आधी सेज सोइ रहौ प्यारे लाल।२८।

२७—केसौराइ--केसौदास। कलकंठ०--गल मेलि राखौ कलकंठी कंठा कल कठुला कै। बलि--करि, कुल। क्योंहूँ--केहूँ। सूँघि०--सोंधी सूँघो, सोंधी सूँघो। ज्यों--सी। २८—खेलत०—बोलत माँझ। और--अरु। बस--सिसु। घर--घरै। गए--गई। बालिका-ग्वालिका। अँध्यारे--अँधेरी। सोइ--पौढ़ि। प्यारे लाल--नंदलाल।

शब्दार्थ—बूझत पहेली-जाल = पहेलियाँ बूझते हुए। घोरि उठे = गर्जन करने लगे।

भावार्थ—(सखी की उक्ति सखी से) हँसते और खेल खेलते तथा कहानी कहते एवम् पहेलियों को बूझते चंद्रमा की ज्योति मंद पड़ गई (चंद्रमा डूबने लगा)। नींद लग जाने के कारण सब गोपियाँ और गोप भी धीरे धीरे अपने अपने घर चले गए। उधर आकाश में चारों ओर घने बादल गरजने लगे। अतः श्रीकृष्ण भी उठकर चलने लगे। उस अवसर पर धाय बोली कि आप आधी रात को ऐसे अंधकार में कहाँ जाएँगे? प्यारे लाल, आप राधिका की आधी शैय्या में लेट जाइए न।

सूने घर को मिलन, यथा—(कबित्त)

(१६८) **देखत ही चित्र सूनी चित्रसाला बाला आज,**
रूप की सी माला राधा रूपकु सुहाए री।
नूपुर के सुरनि के अनुरूप तानैं लेति
पगतल ताल देति अति मन भाए री।
ऐसे में दिखाई दीनी औचक कुँवर कान्ह,
जैसे भए गात तैसे जात न बताए री।
केसौदास **कहे परै अलज सलज से न**
जलज से लोचन जलद से ह्वै आए री। २६।

शब्दार्थ—ही=थी। बाला=नायिका (राधिका)। रूप = छबि। रूपकु = सात मात्राओं का एक ताल विशेष। नूपुर=पायजेब। अनुरूप= अनुकूल। औचक=अचानक। अलज=लज्जारहित (एकांत की निर्भयता के के कारण)। सलज=लज्जा से युक्त।

भावार्थ—(सखी की उक्ति सखी से) आज वह बाला (राधा) सूनी चित्रशाला में चित्र देख रही थी। (चित्र देखते देखते) उस छबि की माला राधिका को रूपक ताल (देने का मन हुआ और वह ताल) देने लगी। नूपुर की ध्वनि के ही अनुकूल वह आलाप भी लेती थी और पदतल से अत्यंत मनभाए ताल भी दे रही थी। इसी समय अचानक श्रीकृष्ण के द्वारा वह देख ली गई। (और उसने उनके द्वारा अपना देखा जाना जान लिया) उस समय उसके शरीर की जैसी दशा हुई वह बतलाई नहीं जा सकती। उस समय के उसके नेत्र न तो अलज्ज ही कहे जा सकते हैं न सलज्ज ही (अपने आप नाचते समय नेत्रों में लज्जा का भाव नहीं था, पर श्रीकृष्ण के द्वारा इस स्थिति के देख लिए जाने से उनमें लज्जा का संचार हुआ। अभी न तो पहले की स्थिति समाप्त ही हुई है और न श्रीकृष्ण के मिलन के कारण उत्पन्न

२६—राग[illegible]—अनु। भए—ह्वै ए। से न—ऐसे।

प्रभाव ही पूरा पड़ सका, दोनो स्थितियों की संधि दिख रही है। अतः कहना पड़ता है कि उनके जो नेत्र जलज की भाँति खिले थे उनमें बादलों का सा घिराव हो गया (नेत्रों में आनंदाश्रु आ गए)।

निशि चार को मिलन, यथा—(सवैया)

(१६९) **एक समै सब देखन गोकुल गोपी-गोपाल-समूह सिधायो।**
राति ह्वै आइ चले घर कों दसहूँ दिसि मेह महा मढ़ि आयो।
दूसरो बोल ही तें समुझै कहि केसव यों छिति में तम छायो।
ऐसे में स्याम सुजान बियोग बिदा कै दियो सु कियो मनभायो।३०।

शब्दार्थ—मेह = मेघ, बादल। मढ़ि आयो = छा गया। दूसरो०—ऐसा घना अंधकार था कि कोई दिखाई नहीं पड़ता था, बोलने से ही किसी का ज्ञान होता था। छिति = क्षिति, पृथ्वी। बियोग = वियोग की वेदना। कियो०=यथेच्छ और यथेष्ट गोपियों के साथ कामक्रीड़ा कीं।

अति भय को मिलन, यथा—(कबित्त)

(१७०) **जानि आगि लागी बृषभान के निकट भौन,**
दौरि ब्रजबासी चढ़े चहूँ दिसि धाइकै।
जहाँ तहाँ सोर भारी भीर नर-नारिन की
सब ही की छूट गई लाज हाइ भाइ कै।
ऐसे में कुँवर कान्ह सारो सुक बाहिर कै,
राधिका जगाई और जुवती जगाइकै।
लोचन बिसाल चारु चिबुक कपोल चूमि,
चंपे की सी माला लाल लीनी उर लाइकै।३१।

शब्दार्थ—जानि = पता पाकर। बृषभान = वृषभानु, राधिका के पिता। भौन = भवन। चढ़े = जा पहुँचे। चहूँ दिसि = चारों ओर से। हाइ भाइ = हावभाव (सुख की स्थिति)। कै = के साथ। सारो = सारिका, मैना। चिबुक = ठोढ़ी।

उत्सव को मिलन, यथा—(कबित्त)

(१७१) **बल की बरस गाँठि ताकी राति जागिबे कौं,**
आई ब्रजसुंदरी सँवारि तन सोनो सो।
केसौदास भीर भई नंदजू के मंदिरनि,
अध मध ऊरध बच्यो न कोऊ कोनो सो।

३०—सिधायो-'सिधाए' आदि। बोल०-बोलतहीं। ३१—जानि--जानी, देखी। बृषभान०-वृषभानु जू के मंदिरनि। भारी-भई। हाइ भाइ-हाइ हाइ। सारो-सारी। की सी-कैसी।

गावति बजावति नचति नाना रूप करि,
जहाँ तहाँ उमँगत आनँद को ओनो सो।
साँवरे की सूनी सेज सोवत ही राधिकाजू,
सोए आनि साँवरेऊ मानि मन गोनो सो।३२।

शब्दार्थ—बल = बलराम। राति जागिबे कों=रतजगा करने के लिए। सोनो सो = सोने सा, पीत वर्ण। मंदिरनि = घरों में। अध = नीचे का खंड। मध = मध्य का खंड। ऊरध = (ऊर्ध्व) ऊपर का खंड। कोनो सो = कोना तक, थोड़ी जगह भी। गावति बजावति० = स्त्रियाँ गाती बजाती अनेक प्रकार से नृत्य करती थीं। ओनो = तालाब में से पानी निकलने का मार्ग, निकास। उमँगत० = आनंद का प्रवाह सा बह रहा था। साँवरे = श्रीकृष्ण। मानि मन० = गौना सा मानकर, जैसे गौने में पति पत्नी के पास सो रहता है।

अलंकार—उपमा, उत्प्रेक्षा।

व्याधि मिस को मिलन, यथा—(सवैया)

(१७२) सोधि निदाननि दान दिये उपचार बिचार किये न धिरानी।
बेद के सासन ब्याधि-बिनासन होमहुतासनहू न सिरानी।
केसव बेगि चलो बलि बोलति दीन भई बृषभानु की रानी।
आए हौ मेटि मरू करिकै बहुरयौ उनके वह पोर पिरानी।३३।

शब्दार्थ—निदान = आदिकरण। सोधि निदाननि = व्याधि के निदानों का शोध कर, व्याधि के मूल कारण का पता लगाकर। दान दए = दान दिए (धर्मेण हन्यते व्याधिः)। उपचार = चिकित्सा। बिचार = व्यवस्था। उपचार-विचार = औषधोपचार की व्यवस्था। न धिरानी = कम नहीं पड़ी, धीमी नहीं हुई। सासन = (सं० शासन) आज्ञा। ब्याधि = रोग। हुतासन = अग्नि। सिरानी = ठंढी पड़ी, दूर हुई। दीन भई = दुःखित हुई। मरू करिकै = कठिनाई से।

भावार्थ—(सखी-वचन नायक से) व्याधि के कारणों की शोध कर (ग्रहों की शांति के लिए) दान दिए गए। चिकित्सा की व्यवस्था की गई। पर पीड़ा धीमी नहीं पड़ी। व्याधि को नष्ट करने के लिए वेद (शास्त्र) की आज्ञा के अनुकूल अग्नि में होम भी किया गया, पर वह न हटी। बृषभानु की पत्नी अत्यंत कातर हो रही हैं, उन्होने आपको बुलवाया है, कृपा करके शीघ्र ही चलिए। बड़ी मुश्किल से आप जिस पीड़ा को (एक बार पहले) दूर कर आए थे, वही पीड़ा उनको फिर होने लगी है।

अलंकार—पर्यायोक्ति।

३२—अध-आधो। अध०-मांध अध। कोऊ-काहू, कहूँ। ३३—न धिरानी-नँदरानी। सिरानी-हिरानी। बेगि-क्यों हूँ। हौ-हे।

न्योते के मिस को मिलन, यथा—(कबित्त)

(१७३) न्यौति कै बुलाई हुती बेटी वृषभानुजू की,
जेंबे कौं जसोदा रानी आनी हैं सिँगारिकै।
भोजन कै, भवन बिलोकिबे कौं पान खात,
ऊपर अकेली गई आनँद बिचारिकै।
देखत देखत हरि भावते कों भागी देखि,
दौरि गही ब्यालु ऐसी बेनी डर डारिकै।
भेंटी भरि अंक मनभायो करि छाड्यो मुहुँ,
केसरि सों माँडि लई बेसरि उतारिकै।३४।

शब्दार्थ—जेंबे कौं = भोजन करने के लिए। पान खात = पान खाती हुई। आनँद बिचारिकै = हर्षपूर्वक,—खुशी मन से। माँडि = मंडन करके, मलकर, लगाकर। बेसरि = नाक में पहनने की छोटी नथ।

भावार्थ—(सखी की उक्ति सखी प्रति) हे सखी, यशोदा रानी ने वृषभानु की बेटी को भोजन करने के लिए न्यौता देकर बुलाया था, उसका शृंगार करके यशोदा जी (खाने के लिए उसे भोजनालय में) ले गईं-भोजन करके वह पान खाती हुई घर देखने के लिए प्रसन्न मन से ऊपर अकेली ही चली गई। प्रिय श्रीकृष्ण को देखते देखते ही (देखकर तुरंत ही) भागी। उन्होंने (उसे भागते) देख दौड़ते हुए भय त्याग कर उसकी नागिन सी चोटी पकड़ ही तो ली। फिर गोद में भरकर आलिंगन करके उसके साथ मनमानी करके (दंत-क्षत को छिपाने के लिए) बेसर उतारकर (हटाकर) मुँह में केसर मलकर तब छोड़ा।

सूचना—बेसर इसलिए उतारी कि केसर मलने में गहना हाथ में न लगे।

(१७४) वन-विहार के मिस को मिलन, यथा—(कबित्त)

देहि री कान्हि गई कहि दैन पसारहु ओलि भरौ पुनि फेटो।
छाड़ौ नहीं मग, छाड़ौं जौ या पै छुड़ावौ बिलोकनि लाजलपेटी।
बात सँभारि कहौ सुनिहै कोऊ जानत हौ यह कौन की बेटी ?।
जानत हैं वृषभानु की है पर तोहि न जानत कौन की चेटी।३५।

शब्दार्थ—ओलि = ओली, अंचल या दुपट्टे को फैलाकर उसे वस्तु रखने की झोली के रूप में बना लेने को ओली कहते हैं। फेटी = फेंट (कमर की)। या पै = इससे। लाजलपेटी = लाज से युक्त। चेटी = दासी।

भावार्थ—(नायक के साथ नायिका की दासी का संवाद, दासी अपनी स्वामिनी की ओर से बोल रही है)।

३४—जेंबे-जेंइबे। हैं-ही। लई-लीनो, लीन्हो। ३५—बन-सु बन। देहि री-दै दधि। जौ०-जु पाए। छुड़ावौ-छुड़ावै। कौन०-को महरेटी।

नायक—कल (दधिदान) देने को कह गई थी, अरी दे।

दासी—ओली फैलाओ (वह भर जाय तो), फिर फेंट भी भर लेना। क्या आप मार्ग न छोड़ेंगे।

नायक—मैं मार्ग छोड़ने को इस शर्त पर प्रस्तुत हूँ कि तू इस (नायिका राधिका) की लाजभरी चितवन छुड़ा दे।

दासी—बात सँभाल के कहिए अगर कोई सुन ले तो ! क्या जानते नहीं कि यह किसकी बेटी है ?

नायक—जानता हूँ, यह वृषभानु की बेटी है, पर तुझे नहीं जानता कि तू किसकी दासी है। (तू क्यों दाल-भात में मूसरचंद हो रही है)।

जलविहार को मिलन, यथा—(सवैया)

(१७५) हरि राधिका मानसरोवर के तट ठाढ़े री हाथ सों हाथ छियें।
पिय के सिर पाग प्रिया मुकताहल छाजत माल दुहूँनि हियें।
कटि केसव **काछनी सेत कछें सबही तन, चंदन चित्र कियें।**
निकसे छिति छीरसमुद्र ही तें सँग श्रीपति मानहु श्रीय लियें।३६।

शब्दार्थ—मानसरोवर = तालाब। छियें = (बुंदेली) छुए, पकड़े हुए। पाग = पगड़ी। मुकताहल = मुक्ताफल, मोती। पिय के० = प्रिय के सिर पर पगड़ी है और प्रिया के सिर पर मोती। छाजत = शोभित है। माल० = दोनों के गले में (पुष्प) मालाएँ पड़ी हैं। छीरसमुद्र = क्षीरसागर। कटि = कमर। काछनी = कछनी, एक प्रकार की जाँघिया। सेत = श्वेत, उज्ज्वल। कछें = पहने हुए। छिति = क्षिति, पृथ्वी। श्रीपति = विष्णु। श्रीय = लक्ष्मी (को)।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

अन्यच्च, यथा—(सवैया)

(१७६) रितु ग्रीषम के प्रतिबासर केसव **खेलत हैं जमुना जल में।**
इत गोपसुता वहि पार गोपाल बिराजत गोपनि के दल में।
अति बूड़त हैं गति मीनन की मिलि जाइ उठैं अपने थल में।
इहि भाँति मनोरथ पूरि दुवौ जन दूरि रहैं छबि सों छल में।३७।

शब्दार्थ—प्रतिबासर = प्रतिदिन। इत = इस ओर। गति मीनन की = मछलियों की भाँति। मिलि० = पानी के भीतर मिलने के बाद फिर अपने ही स्थान में जाकर निकलते हैं (जल के भीतर से ऊपर उभरते हैं)। दुवौ जन = दोनो व्यक्ति, नायक नायिका। छबि सों = सुंदरता से, सफाई से। छल में = छलपूर्वक लोगों की आँख बचाकर।

३६—छियें-दिये। मुकताहल-मुकताघर, मुकताछर। छाजत-राजति। कछें-कसी, कसे, लसी। चित्र-खोरि। श्रीय-श्रीहि।

(दोहा)

(१७७) इहिं बिधि राधारमन के, बरने मिलन बिसेखि।
केसवदास निवास बहु, बुधिबल लीजहु लेखि ।३८।

शब्दार्थ—निवास=स्थान, मिलने के स्थान।

(१७८) और जु तरुनी तीसरी क्यों बरनौं यहि ठौर।
रस में बिरस न बरनियै कहत रसिक सिरमौर ।३९।

शब्दार्थ—तीसरी तरुनी=तीसरी नायिका (गणिका, सामान्या)।

(१७९) ये सब जितनी नायिका बरनी मतिअनुसार।
केसवदास बखानियहु बुधिबल अष्ट प्रकार ।४०।

सूचना—'सरदार' की टीका में यह दोहा नहीं है।

(१८०) प्रथम मिलन थल मैं कहे, अपनी मतिअनुसार।
हावभाव-वर्णन करौं, सुनि अब बहुत प्रकार ।४१।

शब्दार्थ—अपनी०=अपनी उद्भावना से।

इति श्रीमन्महाराजकुमारइंद्रजीतविरचितायां रसिकप्रियायां श्रीराधाकृष्ण-चेष्टादर्शनमिलनस्थान वर्णनं नाम पंचमः प्रभावः ।५।

षष्ठ प्रभाव

अथ भाव-लक्षण—(दोहा)

(१८१) आनन लोचन बचन मग प्रगटत मन की बात।
ताही सों सब कहत हैं, भाव कबिन के तात ।१।

शब्दार्थ—मग=(मार्ग) द्वारा। तात=प्रिय।

भावार्थ—मुख (चेहरा), नेत्र और वचन के द्वारा मन की बात का प्रकट होना 'भाव' कहलाता है।

(१८२) भाव सु पंच प्रकार के, सुनि बिभाव अनुभाव।
थाई, सात्विक कहत हैं ब्यभिचारी कबिराव ।२।

शब्दार्थ—थाई=स्थायी।

अथ विभाव-वर्णन—(दोहा)

(१८३) जिनतें जगत अनेक रस, प्रगट होत अनयास।
तिनसौं बिमति बिभाव कहि, बरनत केसवदास ।३।

३७—गोपनि०—गुवालनि के गन में। ३८—निवास-बिलास। इति श्री-राधाकृष्ण-नायक नायिका।

१—प्रगटत-प्रगटति। २—पंच०-पाँच प्रकार को। सुनि—सुनु। थाई०—अस्थाई सात्विक क=हैं। ३—जगत-जगुति। बिमति-कहत। कहि—कबि।

शब्दार्थ—अनयास = अनायास, स्वतः । तिनसों=तिनको उन्हें । बिमति = विशेष मतिमान्, अधिक बुद्धिमान् ।

अथ विभाव नामभेद-वर्णन—(दोहा)

(१८४) **सब बिभाव द्वै भाँति के** केसवदास **बखानि ।**
आलंबन इक दूसरो उद्दीपन मन आनि ।४।

(१८५) जिन्हैं **अतन अवलंबई ते आलंबन** जानि ।
जिनतें दीपति होति है, **ते उद्दीप बखानि ।५।**

शब्दार्थ—अतन = अशरीरी, रस-भाव । दीपति = दीप्ति । उद्दीप = उद्दीपन ।

अथ आलंबन-स्थान-वर्णन—(छप्पय)

(१८६) **दंपति जोबन रूप जाति लच्छनजुत सखिजन ।**
कोकिल कलित बसंत फूल फल दल अलि उपबन ।
जलचर जलजुत अमल कमल कमला कमलाकर ।
चातक मोर सु सब्द तड़ित धनु अंबुद अंबर ।
सुभ सेज दीप सौगंध गृह पान गान परिधान मनि ।
नव नृत्य भेद बीनादि रव आलंबन केसव **बरनि ।६।**

शब्दार्थ—दल = पत्ते । कमला = लक्ष्मी, शोभा । कमलाकर = सरोवर । तड़ित = बिजली । धनु = इंद्रधनुष। अंबुद = बादल । अंबर = आकाश। परिधान = पहनावा । रव = शब्द ।

अथ उद्दीपन-वर्णन—(दोहा)

(१८७) **अवलोकन आलाप परिरंभन नख-रद-दान ।**
चुंबनादि उद्दीप हैं, मर्दन परस प्रवान ।७।

शब्दार्थ—आलाप = बोलना । परिरंभन = आलिंगन । नख-रद-दान = नख-दान (नखक्षत) और रद-दान (दंतक्षत) । परस = स्पर्श । प्रवान = प्रमाण (माने जाते हैं) ।

अथ अनुभाव-वर्णन—(दोहा)

(१८८) **आलंबन उद्दीप के जो अनुकरन बखान ।**
ते कहिये अनुभाव सब दंपति प्रीति-विधान ।८।

४—**सब-सो । के-को ।केसवदास-केसवराइ । बखानि-बखान, बखानु । आनि-आन, आनु,** मान, **मानु । ५—जिन्हैं०-जिनही रसु । अवलंबई-अवलंब है । जानि-जान, जानु । दीपति०-दीपतु होत । बखानि-बखान, बखानु । ६—कमला-मधुकर, मारुत । धनु-घन । पान०-पानखान । रव-सब । ७—है-ए । प्रवान-प्रमान । ८—जो-जे । कहिये-कहिजै ।**

शब्दार्थ—अनुकरण = पीछे आनेवाले। प्रीति-विधान = प्रेम के विधान में

अथ स्थायी भाव-वर्णन—(दोहा)

(१८९) **रति हांसी अरु सोक पुनि क्रोध उछाह सुजान।**
भय निंदा बिस्मय सदा थाईं भाव प्रमान।९।

शब्दार्थ—रति = प्रेम। हाँसी = हास। उछाह = उत्साह। निंदा = अर्थात् जुगुत्सा (घृणा)। विस्मय = आश्चर्य।

अथ सात्त्विक-भाव-वर्णन—(दोहा)

(१९०) **स्तंभ स्वेद रोमांच सुरभंग कंप बैवन्य।**
आँसू प्रलय बखानिये आठौ नाम अनन्य।१०।

शब्दार्थ—सुरभंग = स्वरभंग। बैवन्य = वैवर्ण्य। अनन्य = जो किसी दूसरे का (नाम) न हो।

अथ व्यभिचारी भाव-वर्णन—(दोहा)

(१९१) **भाव जु सबही रसन में उपजत केसवराय।**
बिना नियम तिन सों कहैं व्यभिचारी कबिराय।११।

शब्दार्थ—बिना नियम० = जो किसी नियम के बिना सभी रसों में प्रकट हों। तिन सों = तिनको, उन्हें।

अथ व्यभिचारी-नाम-वर्णन—(दोहा)

(१९२) **निर्वेद ग्लानि संका तथा, आलस दैन्य रु मोह।**
स्मृति धृति व्रीड़ा चपलता श्रम मद चिंता कोह।१२।

शब्दार्थ—कोह = (क्रोध) रोष, अमर्ष।

(१९३) **गर्ब हर्ष आवेग पुनि, निंद्रा नींद-बिबाद।**
जड़ता उत्कंठा सहित, स्वप्न प्रबोध बिषाद।१३।

शब्दार्थ—नींद-बिबाद = नींद का विवाद, नींद की कथा अर्थात् निद्रा। प्रबोध=विबोध, जागरण।

(१९४) **अपस्मार मति उग्रता, त्रास तर्क औ ब्याधि।**
उन्माद मरन अवहित्थ है, व्यभिचारी जुत आधि।१४।

शब्दार्थ—अपस्मार=मिरगी। तर्क = वितर्क। ब्याधि = शारीरिक कष्ट। आधि = मानसिक कष्ट।

सूचना—'विवाद' का अर्थ स्वतंत्र करने से तर्क में पुनरुक्ति हो जाती है।

९—हाँसी–सुहास। सु–हि। सदा–सहित। प्रमान–बखानु। १०–बैबन्य–बैबर्न। आँसू०–अश्रु प्रलाप। बखानिये–बखानिजै। अनन्य–सुबर्न, न अन्य। ११—कहैं–कहत। १४—त्रास–श्रास। औ–अति। उन्माद०–अवहित्थ भय आदि दै। अवहित्थ–भय आदि दै। है०–तातें होइ।

'आधि' मानसिक कष्ट अलग कोई व्यभिचारी नहीं, उसे व्याधि के साथ ही समझना चाहिए या संगति बैठाने के लिए उसे ('जुत आधि' को) 'अवहित्थ' का विशेषण मान लेना चाहिए।

अथ हाव-लक्षण—(दोहा)

(१६५) **प्रेम राधिका कृस्न को, है तातें सिंगार।**
ताके भावप्रभाव तें, उपजत हावबिचार।१५।

शब्दार्थ—भाव = स्थिति। ताके० = उस शृंगार की स्थिति के कारण। विचार = अर्थात् बात, रूप।

(१६६) **हेला लीला ललित मद, बिभ्रम बिहृत बिलास।**
किलकिंचित बिच्छित्ति अरु, कहि बिब्बोक प्रकास।१६।

(१६७) **मोट्टाइत सुनि कुट्टमित, बोधकादि बहु हाव।**
अपने अपने बुद्धिबल, बरनत कबि कबिराव।१७।

अथ हेला हाव-लक्षण—(दोहा)

(१६८) **पूरन प्रेम-प्रताप तें, भूलत लाज-समाज।**
सो हेला तिहिं हरत हिय, राधा श्रीब्रजराज।१८।

भावार्थ—अत्यंत प्रेम होने के कारण जहाँ लज्जा न रह जाय। जिसके कारण देखनेवाले का हृदय वशीभूत हो जाए वही हेला है।

अथ श्रीराधिकाजू को हेला हाव-यथा—(सवैया)

(१६९) **अवलोकनि अंकुस ऐंचि अनूपम भ्रू-जुगपास भलें गल मेली।**
मृदुहास सुबास उठाइ मिली बहै जोन्ह की जामिनी माँझ अकेली।
अधरासव प्याइ किये बस केसवराय करी रसरीति नवेली।
बन मैं बृषभानुसुता सुखहीं हरि कौं हरि लै गई हेलहीं हेली।१९।

शब्दार्थ—ऐंचि = खींचकर। पास = (पाश) फंदा। सुबास = सुगंध। जोन्ह की जामिनी = चाँदनी रात। अधरासव = अधरों का आसव (शराब)। सुखहीं = सरलता के साथ। हरि कौं हरि = कृष्ण को हरण करके। हेलहीं = खेल ही खेल में। हेली = हे अली, हे सखी।

भावार्थ—(सखी की उक्ति सखी से) चाँदनी रात में अकेली उस वृषभानु की पुत्री राधिका ने श्रीकृष्ण को चितवन रूपी अंकुश से खींच लिया। अद्वितीय दो भौंह रूपी पाश भली भाँति उनके गले में डाल दिए और मृदु हास तथा सुगंध (रूपी सहचरों) द्वारा उन्हें उठवा मँगाया और फिर अधरों का आसव पिलाकर (बेहोश हो जाने पर) अपने वश में कर लिया। इस

१६—बिहृत–बिहित। बिच्छित्ति–बिक्षिप्त। १७—बोधकादि–बोधादिक। अपने०–अपनो अपनो। १८—तिहिं–जिहिं। १९—बह–बहु। अधरा०–अधरारस। रस–रति।

प्रकार की नई रसपद्धति द्वारा वह वन में सरलतापूर्वक उन्हें हरण करके खेल ही खेल में ले गई।

सूचना—इस छंद में डाकुओं की क्रियाओं का साम्य राधिका की चेष्टाओं से स्थापित किया गया है। 'हेलहीं हेली" में 'हेला' नाम भी रख दिया गया है।

अलंकार—रूपक।

श्रीकृष्णजू को हेला हाव, यथा—(सवैया)

(२००) बेनु सुनाइ बुलाइ लई बन भौन बुलाइ कै भाँति भली को।
फूलि गयो मन फूल्यो बिलोकत केसव कानन रासथली को।
अधरारस प्याइ कियो परिरंभन चुंबन कै सुख कामकली को।
हेलहिं श्रीहरि नागर आजु हर्यो मन श्रीवृषभानुलली को।२०।

शब्दार्थ—बेनु = (वेणु) वंशी। भाँति भली को=भली भाँति से। फूल्यो = फूला हुआ (देखकर)। परिरंभन = आलिंगन। कामकली = काम की कलिका (नायिका)। हेलहिं = खेल में ही। नागर = चतुर।

अथ लीला हाव-लक्षण—(दोहा)

(२०१) करत जहाँ लीलानि को प्रीतम प्रिया बनाय।
उपजत लीला हाव तहँ, बरनत केसवराय।२१।

शब्दार्थ—लीला = रूप-परिवर्तन, प्रिय प्रेमिका बने प्रेमिका प्रिय।

श्रीराधिकाजू को लीला हाव, यथा—(सवैया)

(२०२) पायन को परिबो अपमान अनेक सों केसव मान मनैबो।
मीठो तमोर खवाइबो खैबो बिसेषि चहूँ दिसि चौंकि चितैबो।
चीर कुचीलनि ऊपर पौढ़िबो पातन के खरके भजि ऐबो।
आँखिन मूदिकै सीखति राधिका कुंजन तें प्रतिकुंजन जैबो।२२।

शब्दार्थ—अपमान०=अनेक अपमान सहकर। मीठो = मधुर। तमोर= तांबूल, पान। चीर कुचीलनि = मैले वस्त्रों (पर) पात = पत्ता। खरके = खड़कने पर। ऐबो = आना। प्रतिकुंजन = अन्य कुंजों में।

भावार्थ—(सखी उक्ति सखी प्रति) हे सखी, (राधिका श्रीकृष्ण का रूप धारण करके) श्रीकृष्ण के पैरों पड़ना, अनेक अपमान सहकर मान

२०—बेनु-बैन। बन-भव, वह। फूलि-भूलि। फूल्यो-भूल्यो। रस-मधु। अधरा०-रूप महामधु पान कराय कियो परिरंभन कामकली को, चुंबन रंभन कामकली को। मन-तब। २१—लीलानि-ललितानि। २२—अनेक०-अनेक सों मान छोड़ाइ मनैबो। मीठो-सीठो, सीखो। चीर-चील। पातन०-पानन के खरके भजि जैबो। भजि-भगि।

मनाना, विशेष रूप से मधुर पान खिलाना एवम् खाना, चौंककर चारो ओर देखना, मैले कुचैले वस्त्रों पर लेटना, पत्ता भी खड़कने से भाग जाना तथा आँखें मूँदकर एक कुंज से अन्य कुंज में जाना सीख रही हैं।

अलंकार—प्रथम समुच्चय।

श्रीकृष्णजू को लीला हाव, यथा—(सवैया)

(२०३) **झाँकि झरोखनि में चढ़ि ऊँचे अवासनि ऊपर देखन धावै।**
निंदत गोपचरित्रनि कों कहि केसव ध्यान **ककै गुन गावै।**
चित्रित चित्र में आपुन यों अवलोकत आनँद सों उर लावै।
आँगन तें घर में घर तें फिरि आँगन बासर कों बिरमावै।२३।

शब्दार्थ—(श्रीकृष्ण राधा का रूप धारण करते हैं) अवासनि = महलों (पर)। ककै = करके। आपुन = अपने को ही। अवलोकत = देखते हुए। उर लावै = छाती से लगाते हैं। बासर को बिरमावै = दिन बिताते हैं।

अथ ललित हाव-लक्षण—(दोहा)

(२०४) **बोलनि हँसनि बिलोकिबो चलनि मनोहर रूप।**
जैसे तैसे बरनिये ललित हाव अनुरूप।२४।

श्रीराधिकाजू को ललित हाव, यथा—(कवित्त)

(२०५) **कोमल बिमल मन, बिमला सी सखी साथ,**
कमला ज्यों लीने हाथ कमल सनाल के।
नूपुर की धुनि सुनि भोरे कलहंसनि के,
चौंकि चौंकि परैं चारु चेटुवा मराल के।
कचनि के भार कुचभारनि सकुचभार,
लचकि लचकि जात कटितट बाल के।
हरें हरें बोलति बिलोकति हँसत हरें,
हरें हरें चलति हरति मन लाल के।२५।

शब्दार्थ—बिमला = सरस्वती। कमला ज्यों० = सनाल कमल हाथ में ले लेने से वह लक्ष्मी की तरह जान पड़ती है। भोरे० = कलहंसों (की ध्वनि) के धोखे में आकर। चारु = सुंदर। चेटुवा मराल के = हंस के बच्चे। कचनि के भार = केशों के बोझ से। सकुच = संकोच, लज्जा। कटितट = कमर। बाल = नायिका। हरें हरें = धीरे धीरे। लाल = नायक।

अलंकार—भ्रांतिमान् (द्वितीय चरण में)।

सूचना—'कविप्रिया' में यह छंद 'मंदमति' के उदाहरण में दिया गया है।

२३—में-पै। अवलोकत-अवलोकन। उर०-उरझावै। घर में०-आँगन तें घर तें फिरि आँगन यों निसिबासर। २४—हाव०-सुभाव अनूप। २५—हँसत-हरेंई।

श्रीकृष्णजू को ललित हाव, यथा—(सवैया)

(२०६) चपला पट मोर किरीट लसै मघवा-धनु-सोभ बढ़ावत हैं।
मृदु गावत आवत बेनु बजावत मित्र-मयूर नचावत हैं।
उठि देखि भटू भरि लोचन चातक-चित्त की ताप बुझावत हैं।
घनस्याम घनाघन बेष धरे जु बने बन तें ब्रज आवत हैं।२६।

शब्दार्थ—पट = वस्त्र, पीतांबर। किरीट = मुकुट। मघवा-धनु = इंद्र-धनुष। मित्र-मयूर नचावत हैं = मित्र रूपी मयूरों को नचाते हैं। भटू = हे सखी। चातक=पपीहा। घनस्याम = श्रीकृष्ण। घनाघन = बरसनेवाला बादल।

भावार्थ—(सखी की उक्ति नायिका से) पीतांबर ही बिजली है। सिर पर के मोरमुकुट से इंद्रधनुष की सी शोभा बढ़ा रहे हैं। धीरे धीरे गाते और वेणु बजाते आ रहे हैं (यही मेघ की मंद ध्वनि है) जिससे अपने मित्र मयूरों को नचा देते हैं। हे सखी, उठकर नेत्रभर देख, वे चातक के चित्त का ताप दूर कर रहे हैं। घनश्याम श्रीकृष्ण आज बरसनेवाले बादल का वेश धारण किए वन से बने ठने ब्रज की ओर आ रहे हैं।

अलंकार—सांग रूपक।

अथ मद हाव-लक्षण—(दोहा)

(२०७) पूरन प्रेम-प्रभाव तें, गर्ब बढ़ै बहु भाव।
तिनके तरुन बिकार तें, उपजत है मद हाव।२७।

भावार्थ—पूर्ण प्रेम के प्रभाव से अनेक प्रकार के गर्व का बढ़ना और उनके (नायक नायिका के) यौवन-विकार के मद का उदय ही मद हाव है।

श्रीराधिकाजू को मद हाव, यथा—(कबित्त)

(२०८) छबि सों छबीली बृषभानु की कुँवरि आजु,
रही हुती रूपमद मानमद छकिकै।
मारहू तें सुकुमार नंद के कुमार ताहि,
आए री मनावन सयान सब तकिकै।
हँसि हँसि सौंहैं करि करि पायँ परि परि,
केसौराय की सौं जब हारे जिय जकिकै।
ताही समै उठे घन घोरि घोरि दामिनी सी,
लागी लौटि स्याम घन उर सों लपकिकै।२८।

२६—घनाघन-घने घन। धरे–घने। २७—प्रभाव-प्रताप। २८—छबि-छल। हुती-द्युति। आए–आपु। मनावन–मनावत। तकि–बकि। पायँ०–पाँय परि कर जोरि। केसौराय–केसौदास। हारे–रहे। घन–घन घोर दामिनी सी धाइ, आइ उर लागी स्याम घनहिं सों लपकि कै०, स्याम घन तकि कै०, स्याम घन घन सों लपकिकै।

शब्दार्थ—मारहू = कामदेव से भी। सयान = चतुराई। तकिकै = ध्यान में लाकर, प्रयोग करके। हारे० — हृदय में परेशान होकर हार मान गए। लौटि = पलटकर, उलटे ही। स्याम घन = घनश्याम श्रीकृष्ण।

भावार्थ—(सखी की उक्ति सखी से) हे सखी, आज शोभा से युक्त वृषभानुनंदिनी (राधा) सौंदर्य और मान के मद (नशे) में छकी बैठी थीं। काम से भी सुकुमार श्रीकृष्णजी ने उन्हें मनाने के लिए सब प्रकार के चातुर्य का प्रयोग किया। वे हँस हँसकर शपथ करते एवम् बारबार पैरों पड़ते थे। वे जब (अनेक उपाय करके) मन में परेशान होकर हार मान गए और फिर भी मानभंग न हुआ, तभी एकाएक काले बादल जोर जोर से गरजने लगे। तब तो राधिका (स्वयम्) उलटे ही लपककर बिजली की भाँति घनश्याम की छाती से जा लगीं।

श्रीकृष्णजू को मद हाव, यथा—(सवैया)

(२०९) **मनमोहिनी मोहि सकै न सखी चपला चलचित्त बखानत हैं।**
रति की रति क्योंहूँ न कान करैं दुतिचंदकला घटि जानत हैं।
कहि केसव **और की बात कहा रमनीय रमाहूँ न मानत हैं।**
वृषभानुसुता हित मत्त मनोहर औरहिं डीठि न आनत हैं।२९॥

शब्दार्थ—मनमोहिनी = मन को लुभानेवाली कोई अन्य स्त्री। चपला = बिजली को। चलचित्त = चंचल चित्त वाली। रति = कामदेव की पत्नी। बखानत हैं = कहते हैं। रति = प्रीति। कान न करना = ध्यान देने योग्य न समझना। रमनीय = सुंदरी। रमाहूँ = लक्ष्मी को भी। हित = लिए, वास्ते। मनोहर = श्रीकृष्ण। डीठि न आनत = आँख में नहीं लाते, उनकी आँख में और कोई महिला नहीं चढ़ती।

अलंकार—प्रतीप।

अथ विभ्रम हाव-लक्षण—(दोहा)

(२१०) **बास बिभूषन प्रेम तें, जहाँ होहिं बिपरीत।**
दरसन-रस तन मन रसित, गनि बिभ्रम की रीत।३०।

श्रीराधिकाजू को विभ्रम हाव, यथा—(सवैया)

शब्दार्थ—वास = वस्त्र। बिभूषन = गहना। प्रेम तें = प्रेम के कारण। होंहि = हो जाएँ। विपरीत = अंडबंड, उलटे पलटे। दरसन-रस = देखने का आनंद। रसित = आनंदित (होता है)। रीत = रीति (ढंग)।

श्री राधिकाजू को विभ्रम हाव, यथा—(सवैया)

(२११) **कटि के तट हार लपेटि लियो कल किंकिनी लै उर सों उरमाई।**
कर नूपुर सों पग पौंची रची अँगिया सुधि अंचल की बिसराई।

२९—मन-महि। ३०—वास-बाँकु, वाक। होंहि—होइ। दरसन-रस—बरस दरसि। की रीति—के गीत।

करि अंजन रंजित चारु कपोल करी जुत जावक नैननिकाई।
सुनि आवत श्रीव्रजभूषन भूषन भूषतहीं उठि देखन धाई।३१।

शब्दार्थ—कटि के तट = कमर में। उरमाई = लटका ली, डाल ली, पहन ली। कल किंकिनी० = सुंदर करधनी लेकर गले में पहन ली। कर = हाथ में। नूपुर = पायजेब। पग = पैर में। पौंची = पहुँची, कलाई पर का गहना। रची = पहन ली। अँगिया = चोली। अँगिया० = अँगिया पर आँचल डालने की सुध भूल गई। रंजित = युक्त। करी० = नेत्रों का सौंदर्य यावक से युक्त किया, नेत्रों का शृंगार महावर से कर लिया। जावक = महावर। निकाई = सुंदरता, शृंगार। व्रजभूषन = श्रीकृष्णजी। भूषन० = भूषण सजाते समय ही (भूषण पहनते पहनते ही) उठ देखने दौड़ पड़ी और हड़बड़ी में यहाँ का वहाँ पहन लिया।

अलंकार—असंगति।

श्रीकृष्णजू को विभ्रम हाव, यथा—(सवैया)

(२१२) नँदनंदन खेलत हे बने गात बनी छबि चंदन के जल की।
बृषभानुसुताहि बिलोकत ही रुचि चित्त में बिभ्रम की झलकी।
गिरि जात न जानत पाननि खात बिरी करि पंकज के दल की।
बिहँसीं सब गोपसुता हरि लोचन मूँदी सुरोचि दृगंचल की।३२।

शब्दार्थ—हे = थे। बने गात = शरीर सजाए। रुचि = छटा। रुचि चित्त में० = चित्त में विभ्रम का रंग आ गया। सुरोचि = सुंदर छटा।

भावार्थ—(सखी की उक्ति सखी से) हे सखी, श्रीकृष्ण शरीर सजाए खेल खेल रहे थे। उनके शरीर में चंदन-लेप की शोभा अच्छी बनी थी। (एकाएक उन्हें श्री राधिकाजी देख पड़ीं) उन्हें देखते ही उनके चित्त में विभ्रम का ऐसा रंग चढ़ा कि उन्हें पता ही न चला कि उनके हाथ से पान (तांबूल) छूटकर कब गिर गए। तब वे हाथ में लिए हुए कमल के पत्तों का ही बीड़ा बनाकर खाने लगे। (यह देखकर) समस्त गोपियाँ हँस पड़ीं। (उनका हँसना देखकर) श्रीकृष्ण ने अपने दृगंचलों की छटा को नेत्रों में बंद कर लिया। अर्थात् श्रीकृष्ण को लज्जा लगी जिससे उन्होंने अपने नेत्र बंद कर लिए, नेत्रों के मूँद लेने से उनके दृगंचलों की वह छटा नहीं रह गई।

अथ विहृत हाव-लक्षण—(दोहा)

(२१३) बोलनि के समयें बिषें, बोलन देइ न लाज।
बिहृत हाव तासों कहैं, केसव कबि कबिराज।३३।

३१—रची-बनी, बिना। उर सों-उर में। बिसराई-बिरमाई। रंजित-अंजित। भूषन०-राधिका भूषित भूषन हो उठि धाई, भूषित ह्वै अति आतुर देख न धाई। ३२—बने०-हैं बन तात, हैं बनगात। सुताहि-कुमारि। सुरोचि-सरोज।

शब्दार्थ—समयें बिषें = समय पर भी। तासों = ताकों, उसको।

अथ श्रीराधिकाजू को विहृत हाव, यथा—(सवैया)

(२१४) मेरे कहे दहिये जु तऊ फिरि ग्रीषम ज्यों हठ-काठ दहौगी।
पैरिबो प्रेम-समुद्र पराए कराए करें कृत क्यों निबहौगी।
हौंस मरैं सजनी सिगरी कबहूँ हरि सों हँसि बात कहौगी।
पी-चित की चितसारी चढ़ी चित की पुतरी भई कौ लौं रहौगी।३४

शब्दार्थ—दहिये = जलती हो, दुख पाती हो। ग्रीषम = ग्रीष्म, अग्नि। हठ-काठ = हठ रूपी लकड़ी। पराए कराए = दूसरे द्वारा (तैरने को प्रेरित किए जाने पर)। करें कृत = कार्य करने पर अर्थात् तैरने पर। दूसरे द्वारा तैरने को प्रेरित किए जाने पर और दूसरे के तैरने से तुम्हारी तैरने की क्रिया कैसे होगी। तुम्हें स्वयम् तैरना होगा। हौंस = उत्कंठा, लालसा। पी = प्रिय, नायक। चित्रसारी = चित्रशाला, शयनगृह। चित = चित्र। पुतरी = पुतली। कौ लौं = कब तक।

भावार्थ—(सखी की उक्ति नायिका से) हे सखी, मेरे कहने से यदि (इस समय) जल रही हो (हठ नहीं छोड़ रही हो) तो भी मुझे विश्वास है कि ऐसा समय आएगा जब (भीतरी) आग से तुम अपने हठ रूपी काठ को स्वयम् जला डालोगी, अर्थात् जब प्रेम की तीव्र प्रेरणा होगी तो हठ न रह जाएगा। तुम्हें प्रेमसमुद्र में तैरना है, क्या किसी के पार कराने से या उसके ही पार करने से वहाँ तुम्हारा निबाह हो जायगा ? (यह समुद्र तुम्हें स्वयम् पार करना होगा, दूसरों के भरोसे मत रहो)। (उधर) सारी सखियाँ इस लालसा में मरी जा रही हैं कि कभी न कभी श्रीकृष्ण से तुम हँसकर बोलोगी (इधर तुम्हारा राग कुछ समझ में नहीं आ रहा है)। आखिर, मैं यह पूछती हूँ कि प्रिय के हृदय की चित्रशाला में चित्र में खचित पुतली के समान कब तक (जड़) बनी रहोगी।

अलंकार—रूपक।

श्रीकृष्णजू को विहृत हाव यथा—(सवैया)

(२१५) केसवदास **सों आजु सखी बृषभानुकुमारी उराहनो दीनो।**
गारि दई अरु मारि दई अरबिंदन सों मनु कै हितहीनो।
सीख दई, सुख पाइ लई उर लाइ सुगंध चढ़ाइ नवीनो।
उत्तरु देइ कौं नंदकुमार कछू सिर नीचे तें ऊँचो न कीनो।३५।

शब्दार्थ—उराहनो = उलाहना, उपालंभ। मारि० = कमलों से मार दी (मारा)। मनु कै० = मन में लगाव कम करके, मन में प्रेम की कमी करके (अर्थात् रोष से)।

३४—फिरि-तन। पैरिबौ-पौरिबो। करें कृत-किये उत, किये कित। चढ़ी चित—चढ़ी चित्र। ३५—केसवदास-केसवराइ। मनु-करि।

भावार्थ—(सखी की उक्ति सखी से) हे सखी, वृषभानु की पुत्री राधिका ने आज श्रीकृष्ण को उलाहना दिया, फिर गाली तक दी, मन में प्रेम की कमी करके अर्थात् ईषत् रोष से कमलों की मार भी दी। फिर (ठंढी पड़कर) नवीन सुगंधित द्रव्य उनके शरीर में लगाकर और उन्हें छाती से चिपकाकर सीख दी और श्रीकृष्ण ने (बिना कुछ कहे सुने चुपचाप) सुख पाकर उसे ग्रहण किया, इन सबका उत्तर देने के लिए नंदकुमार ने अपना सिर नीचे से थोड़ा भी ऊपर नहीं किया (सिर जो नीचा किया तो वह नीचे का नीचे ही रह गया, फिर उठाया ही नहीं, एक चुप तो सौ चुप)।

अथ विलास हाव-लक्षण—(दोहा)

(२१६) **खेलत बोलत हँसत अरु, चितवत चलत प्रकास।**
जल थल केसवदास **कहि, उपजत हाव बिलास।३६।**

श्रीराधिकाजू को विलास हाव, यथा—(कवित्त)

(२१७) **किलकत अलिक जु तिलक-चिलक मिस,**
भौंहनि में बिभ्रमनि भावभेद दीने हैं।
लोचननि सोचन-सकोचनि नचावति है,
दसनचमक ही चकित चित्त कीने हैं।
केसौदास **मंदहास अनायास दास करि,**
लीने केसौराय जिय जद्यपि प्रबीने हैं।
मोहन के तन मन मोहिबे कौं मेरी आली,
तेरो मुख सुख ही अनंत व्रत लीने हैं।३७।

शब्दार्थ—अलिक=भाल, माथा। चिलक=चमक। भावभेद=अनेक भाव। बास=सुगंध। अनायास=बिना श्रम के। सुख ही=सरलता से।

भावार्थ—(सखी की उक्ति नायिका प्रति) हे सखी, श्रीकृष्ण के शरीर एवम् मन को वशीभूत करने के लिए तेरे मुख ने अनेक व्रत (ढंग) किए हैं। माथे पर तिलक की चमक का बहाना उन्हें किलकाता है (आनंदित करता है)। भौंहों के अनेक विलासों (भंगिमाओं) से उनमें भावों के अनेक स्वरूप लक्षित होते हैं। नेत्रों के सोच और संकोच की मुद्रा से तू उन्हें नचाती है, दाँत की चमक ने तो उनके चित्त को ही चकित कर दिया है। अपने मंद हास से तो उन्हें अनायास ही अपना दास बना लिया है, यद्यपि वे बड़े प्रवीण गिने जाते हैं (अर्थात् तेरे मुख की चेष्टाओं का अत्यधिक प्रभाव उन पर पड़ता है)।

३६—हाव–विविध। ३७—भाव–भौन। केसौदास०–मंदहास सुखबास। केसौराय–केसौदास। प्रबीने–नवीने। आली–सखी, भटू।

सूचना—(१) व्रत करने वाला व्रत का प्रभाव जिन पर डालना चाहता है उन पर उसका प्रभाव किस प्रकार क्रमशः पड़ता है और वे उसके वश हो जाते हैं इसका इसमें क्रम से वर्णन है। पहले तो वे अनाश्रित किलकते हैं, फिर उनमें अनेक भाव जगते हैं, तदनंतर वे नाचने लगते हैं, पुनः थकित होते हैं और अंत में वश में हो जाते हैं।

(२) 'अलिक' का अर्थ 'अलीक, मिथ्या' भी कर सकते हैं।

श्रीकृष्णजू को विलास हाव, यथा—(कबित्त)

(२२८) **जिन न निहारे ते निहोरत निहारिबे कौं**
काहू न निहारे जिन कैसेहूँ निहारे हैं।
सुर नर नाग नवकन्यनि के प्रानपति,
पतिदेवतानिहूँ कि हियनि बिहारे हैं।
इहि बिधि केसौदास **रावरे असेष अंग।**
उपमा न उपजी बिरंचि पचि हारे हैं।
रूप-मद-मोचन मदन-मद-मोचन हैं
तीय-व्रत-मोचन बिलोचन तिहारे हैं।३८।

शब्दार्थ—निहारे = देखे। निहोरत=प्रार्थना करते हैं, लालसा करते हैं। कैसे० = किसी प्रकार (संयोग से या अनेक कष्ट झेलकर)। नवकन्या = नवीन कन्या, पंच कन्या (अहल्या, तारा, मंदोदरी, कुंती, द्रौपदी)। पति-देवता = पतिव्रता। असेष अंग = संपूर्ण रूप से। उपजी = बन सकी। बिरंचि = ब्रह्मा। पचि हारे = परेशान हो गए।

भावार्थ—(सखी की उक्ति नायक प्रति) हे कृष्ण, जिन्होंने आपके नेत्र नहीं देखे वे देखने की लालसा करते हैं। जिन्होंने किसी प्रकार (कष्ट सहकर भी) आपके नेत्र देख लिए वे फिर किसी के नेत्रों को नहीं देखते (आपके नेत्रों के सौंदर्य के सामने किसी के नेत्रों का सौंदर्य नहीं ठहरता)। ये नेत्र सुर, नर, नाग की कन्याओं और नवकन्याओं (पंच कन्याओं) को प्राणों की भाँति प्यारे हैं और पतिव्रता स्त्रियों के भी हृदय में विहार करनेवाले हैं। इसी भाँति आपके संपूर्ण अंग (सुंदर) हैं, जिनकी समता के लिए उपमान बनाते बनाते ब्रह्मा परेशान होकर हार मान गए, परंतु उपमान न बन सके। आपके दोनो नेत्र सौंदर्य का मद दूर करनेवाले एवम् कामदेव का गर्व छुड़ा देनेवाले और स्त्रियों के व्रत (पातिव्रत) को विचलित करनेवाले हैं।

अथ किलकिंचित हाव-लक्षण—(दोहा)

(२२९) **श्रम अभिलाष सगर्व स्मित, क्रोध हर्ष भय भाव।**
उपजत एकहि बार जहँ तहँ, किलकिंचित हाव।३९।

३८—कैसेंहूँ–कैसे कै। **केसौदास–कैसौराय**। उपजी–उपजै। **रूप–मान। हैं–कौं, किधौं। बिलोचन–कौ लोचन। ३९—स्मित–सुख। तहँ–सो।**

अथ श्रीराधिकाजू को किलकिंचित हाव, यथा—(सवैया)

(२२०) कौने रसै बिहँसै लखि कौनहिं कापर कोपिकै भौंह चढ़ावै।
भूलति लाज भटू कबहूँ कबहूँ मुख अंचल मेलि दुरावै।
कौन की लेति बलाय, बलाय ल्यौं, तेरी दसा यह मोहिं न भावै।
ऐसी तौ तू कबहूँ न भई अब तोहिं दई जनि बाइ लगावै।४०।

शब्दार्थ—रसै = आनंदित होती है। कापर = किस पर। बलाय = बलैया।

भावार्थ—(सखी की उक्ति नायिका प्रति) हे सखी, तू किस आनंद में मगन हो रही है, किसे देख हँसती है और किस पर क्रुद्ध होकर भौंहें चढ़ाती है। कभी तो तू लज्जा छोड़ देती है और कभी लज्जावश घूँघट में मुँह छिपा लेती हैं। आज किसकी बलैया ले रही है, मैं तेरी बलैया लेती हूँ, बतला। तेरी यह दशा मुझे अच्छी नहीं लगती। ऐसी तो तू कभी भी नहीं हुई थी, विधाता तुझे यह हवा न लगने दे।

अलंकार—प्रथम समुच्चय।

सूचना—'सरदार' ने लिखा है कि यहाँ 'कौने रसै' से अभिलाष, 'कौनहि लखि बिहँसै' से मंद हास, 'कोपिकै भौंह चढ़ावै' से 'क्रोध', 'भूलति लाज' से 'गर्व स्मित', 'कबहूँ मुख अंचल माँहि छिपावै' से भय एवम् लज्जा तथा बलाय लेति' से हर्ष आदि भाव सूचित होते हैं।

श्रीकृष्णजू को किलकिंचित हाव, यथा—(सवैया)

(२२१) ऐसी है गोकुल के कुल की जिनि दच्छिन नैन किये अनुकूले।
खंजन से मनरंजन केसव हास बिलास लता लगि झूले।
बोलें झुकौ उझकौ अनबोलें फिरौ बिझुके से हिये महि फूले।
रूप भए सबके बिष ऐसे ह्वै कान्ह कहौ रस कौन के भूले।४१।

शब्दार्थ—दच्छिन = सब पर समान भाव रखनेवाला (नायक)। अनुकूल = केवल एक ही से प्रेम रखनेवाला (नायक)। उझकौ = चंचल, लालायित होते हैं। बिझुके = भड़के हुए।

भावार्थ—(सखी की उक्ति नायक प्रति) हे कृष्ण, गोकुल के कुल में ऐसी कौन है जिसने आपके दक्षिण नेत्रों को अनुकूल कर लिया है? सबके प्रति संचरित होनेवाले नेत्रों को अपनी ही ओर लगा रखा है। मन को आनंदित करनेवाले आपके खंजनवत् (सुंदर) नेत्र हास-विलास रूपी लता में झूल रहे हैं। आप बोलने पर झुकते (रोषयुक्त होते) हैं और न बोलने पर

४०—रसै-असै। मेलि-मेरे, माँहि। दुरावै-छिपावै। ल्यौं-र्यौं।
४१—के कुल-को कुल। किये-करे। केसव-के सब। हास०-हार बिहार। झूको०-झुक उझकै। अनबोलें-बिन बोले। फिरौ-फिरै। के बिष-केसव।

उझके (लालायित) रहते हैं तथा भड़के हुए हृदय में फूले घूमते हैं (उसी के ध्यान में लीन रहते हैं)। भला आप किसके रस (प्रेम) में भूले हुए (मग्न) हैं। (क्या और) सब (गोपियों) की सुंदरता विषवत् हो गई है ?

अलंकार—प्रथम समुच्चय।

सूचना—किसी ओर न देखने से 'श्रम', 'हास-विलास' से 'स्मित', 'झुकौ' से 'रोष', 'उझकौ' से 'अभिलाष', 'बिझुकौ' से 'भय', 'फूले' से 'हर्ष' और 'रूप बिष ऐसे भए' से 'गर्व' भाव व्यक्त होता है।

अथ बिब्बोक हाव-लक्षण—(दोहा)

(२२२) **रूप प्रेम के गर्व तें, कपट अनादर होइ।**
तहँ उपजत बिब्बोक रस, यह जानत सब कोइ।४२।

शब्दार्थ—कपट अनादर = दिखावटी अपमान। रस = आनंद।

श्रीराधिकाजू को बिब्बोक हाव, यथा—(सवैया)

(२२३) **आवत जानि कै सोइ रही हरएँ हरि बैठे न जानि जगाई।**
साहस कै उरु माँझ धरयो कर जागत रोम की रोंचि जनाई।
नीबी बिमोचत चौंकि उठी पहिचानि झुकी बतियाँ कहि बाई।
बासर गाइ गँवार चरावत आवत हैं निसि सेज पराई।४३।

शब्दार्थ—हरएँ = धीरे धीरे। उरु = जाँघ। कर = हाथ। जागत = उठते हुए। रोंचि (रुचि) = दीप्ति। नीबी = फुफुँदी। झुकी = रोषयुक्त हुई। बाई = बाई (वायु) विकार से ग्रस्त व्यक्ति की भाँति। गाइ = गाय। गँवार = मूर्ख, असभ्य।

भावार्थ—(सखी की उक्ति सखी से) हे सखी, आज राधिका श्रीकृष्ण को आता जानकर सो गईं। वे भी पास जाकर चुपचाप धीरे से बैठ गए, जान बूझकर जगाया नहीं। फिर साहस करके उन्होंने जाँघ पर हाथ रखा। (ऐसा करने से) उसके उठते हुए रोओं में दीप्ति उत्पन्न हो गई (उसका जगते रहना प्रकट हो गया)। (सात्विक भाव हुआ जान) श्रीकृष्ण नीबी खोलने लगे, उनके ऐसा करने पर राधिका चौंक पड़ीं और श्रीकृष्ण को पहचानती हुई रुष्ट सी हुईं। वायुविकार से ग्रस्त की भाँति बातें करने लगीं कि दिन में तो गँवार गाय चराते हैं और रात में दूसरे की (स्त्री की) शय्या पर 'सोने आते हैं' (दिन भर तो न जाने कहाँ रहे इस समय आए हैं—प्रेमगर्व)।

श्रीकृष्णजू को बिब्बोक हाव, यथा—(सवैया)

(२२४) **एक समै इक गोपी सों केसव कैसहुँ हाँसी की बात कही।**
'जा कहँ तात दई तजि ताहि कहा हम सों रस-रीति नहीं'।

४२—रूप०—किए गर्व तें मान अति। जानै—जानत। ४३—बैठे—बैठि, जानै। उरु—उर। माँझ—मध्य। कहि बाई—करवाई।

सुनि को प्रतिउत्तर देइ सखी दृग आँसुन की अवली उमही।
उर लाइ लई अकुलाइ तऊ अधिरातक लौं हिलकी न रही ।४४।

शब्दार्थ—जा कहँ = जिसको। तात = पिता। रस = प्रेम। अधिरातक लौं = आधी रात तक। हिलकी = सिसक।

भावार्थ—(सखी की उक्ति सखी से) एक बार श्रीकृष्ण ने एक गोपिका से हँसी की, यह बात कही कि 'जिसे स्वयम् पिता ने छोड़ दिया उससे मेरा प्रेम-व्यापार क्या रह सकता है ? (कभी नहीं)'। इसका प्रत्युत्तर भला कौन देता, उस गोपिका के नेत्रों से आँसुओं की धारा उमड़ चली। तब श्रीकृष्ण ने अकुलाकर उसे हृदय से लगा लिया। फिर भी आधी रात तक उसकी सिसकी रुक न सकी।

अलंकार—विशेषोक्ति।

सूचना—'तात दई तजि ताहि' का अर्थ 'सरदार' ने यह भी लगाया है कि पिता ने जिसे तुझे दे रखा है पहले उसे तू त्याग।

अथ विच्छित्ति हाव-लक्षण—(दोहा)

(२२५) **भूषन भुषिबे को जहाँ, होहि अनादर आनि।**
तहाँ बिछित्ति बिचारिये, केसवदास **बखानि ।४५।**

शब्दार्थ—भूषन = गहना। भुषिबे०=जहाँ गहने पहनने का अनादर हो अर्थात् बिना सजे-सिँगारे ही शोभा हो।

श्रीराधिकाजू को विच्छित्ति हाव, यथा—(सवैया)

(२२६) **तन आपने भाए सिँगार सिँगारत हैं ये सिँगार सिँगारै बृथाहीं।**
ब्रजभूषन नैननि भूख है जाकी सु तो पै सिँगार उतारे न जाहीं।
सब होत सुगंधनिहीं तें सुगंध सुगंध तें जाति सुगंध सुभाहीं।
सखि तोहि तें हैं सब भूषन भूषित भूषन तें तुम भूषित नाहीं ।४६।

शब्दार्थ—भाए = (नायक को) भानेवाले। सुभाहीं=स्वभाव से ही, स्वाभाविक।

भावार्थ—(सखी की उक्ति नायिका प्रति) हे सखी, अपने को रुचनेवाले शृंगार ही सब सिँगारते हैं, तूने ये शृंगार व्यर्थ ही किए। ब्रजभूषण के नेत्रों में जिस शृंगार के देखने की भूख (इच्छा) है वे शृंगार क्या कभी (चढ़ाए)

४४—जा-या। ताहि जाहि। रस-रति। सुनि- ×। ४५—तहाँ०-तहँ विच्छित्ति, सो बिच्छित्ति। बखानि-सुजान। ४६—सिँगार०-सिँगार नहीं ये सिँगार। सिँगारत०-सिँगारति और, सिँगारत होइ सुगंध। भूख है०-भूषित नैनन। उतारे-उतारि, सिँगारे। सब-सचु। तें-मैं। जाति-जातें। सुभाहीं-बृथाहीं। तोहि ते०-भूषन तो सब तोहि तें। तुम-तुव।

उतारे भी जा सकते हैं ? (तेरे सुंदर अंगों की शोभा पर ही उनके नेत्र मुग्ध हैं, वे अंग तेरे शरीर से अलग ही नहीं हो सकते, ये शृंगार तो पृथक् भी किए जा सकते हैं और फिर काम पड़ने पर संयुक्त भी हो सकते हैं)। सुगंध से अन्य वस्तुएँ सुगंधित होती हैं, सुगंध की स्वाभाविक सुगंध क्या उससे कभी पृथक् हो सकती है ? (कदापि नहीं)। उसे सुगंधित करने के लिए किसी दूसरे की आवश्यकता नहीं होती। ठीक इसी प्रकार मेरे विचार से सब आभूषण तेरे ही कारण सुशोभित होते हैं, तू उनसे सुशोभित नहीं होती।

अलंकार—प्रतीप।

श्रीकृष्णजू को विच्छित्ति हाव, यथा—(सवैया)

(२२७) पान न खाए न पाग रची पलटे पट चित्त कहाँ धरिकै।
कंठसिरी बनमाल मनोहर हार उतारे धरे अरिकै।
चंदन चित्रनि लोपि सुलोचन लोकबिलोकनि सों लरिकै।
अंग सुभाइ सुबास प्रकासित लोपिहौ केसव **क्यों करिकै।४७।**

शब्दार्थ—पाग=पगड़ी। पलटे=बदल लिए। पट=वस्त्र। कंठसिरी=मोती की माला। अरिकै=हठ करके। लोपि=छिपाकर। लोक-बिलोकनि सों लरिकै=लोगों के नेत्रों से लड़ करके। सुभाइ=स्वाभाविक।

भावार्थ—(नायिका की उक्ति नायक प्रति) आपने न जाने क्या मन में सोचकर न तो पान ही खाया है, न सिर पर पगड़ी ही बाँधी है। वस्त्र भी बदले हुए हैं (साधारणतया आप जैसे आया करते थे वैसे नहीं आए हैं)। मोतियों की माला, बनमाला और मनोहर हार भी आपने हठपूर्वक उतार डाले हैं। चंदन के चित्र भी शरीर पर से मिटा दिए हैं। लोगों के नेत्रों से नेत्रों को लड़ाकर उन्हें भी छिपाने का प्रयत्न करते हैं (लज्जालु दिखते हैं)। इस प्रकार आपने अपने सभी शृंगार हटा लिए हैं। पर शरीर की जो स्वाभाविक सुगंध है उसे आप किस प्रकार छिपाएँगे (वह तो अब भी व्यक्त हो रही है)।

सूचना—नायक के शरीर की सुगंध में मिश्रित सुगंध से नायिका ने उसका अपराध लक्षित कर लिया है।

अथ मोट्टाइत हाव-लक्षण—(दोहा)

(२२८) हेला लीला करि जहाँ, प्रकटत सात्विक भाव।
बुधिबल रोकत सोभिजै, कहि मोट्टाइत हाव।४८।

शब्दार्थ—हेला=निःसंकोच खेल खेलना। लीला=वेश बनाना।

४७—खाए-खाइ। रची-बनो। चंदन०-चंदन चित्र कपोलनि लोपि सुलोचन अंजन सों भरिकै। बिलोकनि-बिलोचन। ४८—सात्विक-सातुक। सोभिजै-सोहिये सो।

श्रीराधिकाजू को मोट्टाइत हाव, यथा—(सवैया)

(२२९) खेलत हे हरि बागे बने जहँ बैठी प्रिया रति तें अति लोनी।
केसव कैसहूँ पीठि में डीठि परी कुच कुंकुम की रुचि रोनी।
मात-समीप दुराई भले तिनि सातुक-भावनि की गति होनी।
धूरि कपूर की पूरि बिलोचन सूंघि सरोरुह ओढ़ि उढ़ोनी।४९।

शब्दार्थ—हे = थे। बागे बने = पोशाक पहने। लोनी = सुंदर। रुचि = शोभा। रोनी = रमणीय, अच्छी। दुराई = छिपाई। तिनि = उन्होंने (नायिका ने)।

भावार्थ—(सखी की उक्ति सखी से) श्रीकृष्ण पोशाक पहने वहाँ खेल रहे थे जहाँ रति से भी बढ़कर सुंदर नायिका बैठी हुई थी। किसी प्रकार नायिका की दृष्टि श्रीकृष्ण की पीठ (के वस्त्र) पर पड़ी जहाँ स्तनों की केसर की सुंदर शोभा दिखाई पड़ रही थी (नायिका ने कभी पीछे से नायक को आलिंगन किया था जिससे स्तनों की केसर का चिह्न उसकी पीठ में लग गया था)। देखते ही उसे सात्विक भाव हो आया। उन सात्विकों की होनेवाली गति (उनके प्रकाशित होने को) उसने माता के समीप (होने के कारण) भली भाँति (इस प्रकार) छिपाया कि कपूर की धूल तो नेत्रों में भर ली, कमल सूँघ लिया और ओढ़नी ओढ़ लीं (कपूर की धूल से आँसू आते हैं, कमल सूँघकर उसकी प्रशंसा में सिर हिलाया जाता है और ओढ़नी ओढ़ लेने से चेहरा और शरीर छिप जाता है इस प्रकार चार सात्विक छिपाए गए—अश्रु, कंप, रोमांच और वैवर्ण्य)।

अलंकार—युक्ति (केशव के मत से 'लेश')।

सूचना—'कविप्रिया' में यह छंद लेशालंकार के उदाहरण में दिया गया है।

श्रीकृष्णजू को मोट्टाइत हाव, यथा—(सवैया)

(२३०) भोजन कै वृषभानु-सभा महँ बैठे हे नंद सदा सुखकारी।
गोप घने, बल बीर बिराजत, खात बनाइ बिरी गिरिधारी।
राधिका झाँकी झरोखे ह्वै झाँप सी लागी, गिरे मुरझाइ बिहारी।
सोर भयो समुझे सकुचे हरुवाइ कह्यो हरि लागि सुपारी।५०।

शब्दार्थ—घने = अधिक। झरोखे ह्वै = खिड़की से। झाँप सी लागी = झाँई सी आ गई, चक्कर सा आ गया। बलबीर = भाई बलराम। गिरिधारी = श्रीकृष्ण। बिहारी = श्रीकृष्ण। हरुवाइ = हड़बड़ाकर।

४९—प्रिया–तिया। तिनि–जिहि। सातुक–सात्विक। ५०—हे–हैं। सुखकारी–सुभकारी। राधिका०। राधिका झाँकि झरोखनि ह्वै कबि केसव रीझि गिरे सु बिहारी। भयो–परयो। कह्यो–कही।

अलंकार—युक्ति।

अथ कुट्टमित हाव-लक्षण—(दोहा)

(२३१) **केलि-कलह में सोभिजै केलि कपट पट रूप।**
उपजत है तहँ कुट्टमित हाव कहत कबिभूप।५१।

भावार्थ—केलि के कलह में जहाँ कपटकेलि का छिपा रूप दिखलाई पड़े अर्थात् नायक या नायिका जहाँ कलह के बहाने प्रच्छन्न केलि का ही आनंद लें, वहाँ कुट्टमित हाव होता है।

श्री राधिकाजू का कुट्टमित हाव, यथा—(सवैया)

(२३२) **पहिले हठि रूठि चली उठि पीठि दै मैं चितई सखि तैं न लखी री**
पुनि धाइ धरी हरिजू की भुजानि तें छूटिबे कों बहु भाँति झखी री।
गहिकै कुच-पीड़न दंत नखच्छत बैरिन की मरजाद नखी री।
पुनि ताहि कों पान खवावति हैं उलटी कछू प्रीति की रीति सखीरी।५२।

शब्दार्थ—हठि = हठपूर्वक। रूठि = अप्रसन्न होकर। पीठि दै=मुँह मोड़ कर। धाइ = दौड़कर। झखी री = व्याकुल हुई। कुच-पीड़न=स्तनों का मर्दन। बैरिन की = शत्रु की। मरजाद नखी री = सीमा लाँघ गए। बैरिन०-शत्रु अपने शत्रु को जितना कष्ट दे सकता है उसकी सीमा भी पार कर गए, शत्रु से अधिक कष्ट दिया।

श्रीकृष्णजू को कुट्टमित हाव, यथा—(सवैया)

(२३३) **देखत ही जिहिं मौन गही अरु मौन तजें कटु बोल उचारे।**
सौंहैं कियेहूँ न सौंहो कियो मनुहारि कियेहूँ न सूधे निहारे।
हाहा कै हारि रहे मनमोहन पाइँ परें तिहिं लातन मारे।
मंडत हैं मुहँ ताही को अंग लै हैं कछू प्रेम के पाठ निन्यारे।५३।

शब्दार्थ—सौंहैं किये = शपथ करने पर भी। न सौंहो कियो = सामने मुँह नहीं किया। मनुहार = मिन्नत। हाहा कै = दीनतापूर्वक विनय करके। मंडत हैं = सिँगार रहे हैं। अंक = गोद में। निन्यारे = विचित्र।

भावार्थ—(सखी की उक्ति सखी से) आज राधिका श्रीकृष्ण को देखते ही मौन हो रहीं। फिर मौन छोड़ने पर कटु वचन कहने लगीं, यहाँ तक कि श्रीकृष्ण के शपथें खाने पर भी उन्होंने मुँह सामने नहीं किया। मिन्नतें करने पर भी सीधी नजर नहीं देखा। वे दीनतापूर्वक विनय करके भी हार गए, तब पैरों पड़े और उन्होंने इन्हें लातों से झटक दिया। देखो, इस समय उसी का मुँह अपनी गोद में लेकर सँवार-सिँगार रहे हैं। प्रेम के पाठ कुछ विचित्र ही हैं।

५१—सोभिजै-सोभियै, सोभिए। कपट-कलह। **५२**—पुनि०-फिरि। चितई-ही लखी। गहिकै०-कुचपीड़न दंतनखक्षत दै गिरि,......दै निज। ५३—जिहि-जिनि। तजें-तजी। कियेहूँ-करेहूँ। मनमोहन-नँदनंदन। तिहिं-तिन्हु।

अथ बोधक हाव-लक्षण—(दोहा)

(२३४) गूढ़ भाव को बोध जहँ, केसव औरहि होइ।
तासों बोधक हाव सब, कहत सयाने लोइ ।५४।

शब्दार्थ—बोध = ज्ञान, जानकारी। औरहि = दूसरे को (नायक या नायिका को)।

श्रीराधिकाजू को बोधक हाव, यथा—(सवैया)

(२३५) बैठी हुती बृषभानुकुमारि सखीन की मंडली मंडि प्रबीनी।
लै कुँभिलानो सो कंज परी इक पाइन आइ गुवारि नवीनी।
चंदन सों छिरक्यो वह वा कहँ पान दए करुनारसभीनी।
चंदनचित्र कपोलनि लोपिकै अंजन आँजि बिदा करि दीनी ।५५।

भावार्थ—(सखी की उक्ति सखी प्रति) हे सखी, आज सखियों की मंडली में चतुर राधिका बैठी थीं। इतने ही में एक नवोढ़ा ग्वालिन हाथ में कुम्हलाया हुआ कमल लिए आई और उनके पैरों पड़ी। इन्होंने कमल पर चंदन छिड़का, करुणा भाव से उसके हाथों में पान दिए, उसके कपोलों पर लगा हुआ चंदन छुड़ा दिया और नेत्रों में अंजन लगाकर उसे बिदा दिया।

गूढ़ार्थ—कुँभिलानो कंज=राधिका के विरह में श्रीकृष्ण कमल की तरह मुरझा रहे हैं। पाइन परी = श्रीकृष्ण ने मिलने की प्रार्थना पैरों पड़कर की है। चंदन सों छिरक्यो = मैं उनका विरहताप शांत करूँगी। पान दए = मैं पान (पाणि = हाथ) देती हूँ, निश्चित मिलूँगी। चंदनचित्र कपोलनि लोपिकै = चंद्रमा के डूब जाने पर, चाँदनी हट जाने पर मिलूँगी। अंजन आँजि = अंधकार में मिलूँगी या श्याम मेरी आँखों में बसते हैं।

अलंकार—सूक्ष्म।

श्रीकृष्णजू को बोधक हाव, यथा—(सवैया)

(२३६) सखि गोकुल गोप-सभा महँ गोबिँद बैठे हुते दुति कों धरिकै।
जनु केसव पूरन चंद लसै चित चारु चकोरनि को हरिकै।
तिनकों उलटो करि आनि दियो किहुँ नीरज नीर नएँ भरिकै।
कहि काहे तें नेकु निहारि मनोहर फेरि दियो कलिका करिकै ।५६।

शब्दार्थ—दुति = तेज। किहुँ = किसी ने। नीरज = कमल। नेकु = थोड़ा सा। निहारि = देखकर।

५४–को-के। औरहि०–समुझत कोइ। सब-यों। ५५—की मंडली–के मंडल। मंडि-मध्य। आइ-आनि, आगें। इक०–जु कोऊ इक ग्वालिनि पाइ। चंदन–बंदन। छिरक्यो-छिरको। कपोलनि लोपिकै–कपोल बिलेपिकै। ५६—गोकुल–मोहन, सोहत। चारु–चार, चोर।

भावार्थ—(सखी की उक्ति सखी प्रति) हे सखी, गोकुल में गोपों की सभा में श्रीकृष्ण जी कांतियुक्त बैठे हुए थे। मानो चकोर के सुंदर चित्तों को हरण करके पूर्ण चंद्र शोभा दे रहा हो। उन्हें किसी ने कमल में ताजा जल भरकर और उसे उलटा करके दिया। न जाने क्यों उन्होंने उसे थोड़ी देर तक भावुकता के साथ देखकर और कली बनाकर लौटा दिया।

गूढ़ार्थ—नीरज नीर० = नायिका के कमलवत् नेत्र आपके विरह में आँसू बहा रहे हैं। कलिका करिकै० = जब कमल बंद होंगे (सूर्यास्त के समय) तब मिलूँगा।

अलंकार—सूक्ष्म।

सूचना—'कविप्रिया' में यही छंद सूक्ष्मालंकार के उदाहरण में दिया गया है।

(दोहा)

(२३७) **राधा राधारमण के कहे जथामति हाव।**
ढिठई केसवराय की छमियो कबि कबिराव।५७।

इति श्रीमन्महाराजकुमार श्रीइंद्रजीतविरचितायां रसिकप्रियायां राधिकाकृष्ण हावभाववर्णनं नाम षष्ठः प्रभावः॥

सप्तम प्रभाव

अथ अष्टनायिका-वर्णन—(दोहा)

(२३८) **ये सब जितनी नाइका, बरनी मति-अनुसार।**
केसबदास बखानियै, ते सब आठ प्रकार।१।

(२३९) **स्वाधिनपतिका, उत्कहीं, बासकसज्जा नाम।**
अभिसंधिता बखानियै, और खंडिता बाम।२।

शब्दार्थ—उत्कहीं = उत्कंठिता ही। अभिसंधिता = कलहांतरिता। बाम = स्त्री, नायिका।

(२४०) **केसव प्रोषितप्रेयसी लब्धाबिप्र सु आनि।**
अष्टनायिका ये सकल अभिसारिका सु जानि।३।

शब्दार्थ—प्रोषित० = प्रोषितपतिका। लब्धा० = बिप्रलब्धा। आनि = अन्य।

५७—मति–बिधि। राय–दास। छमियो–छमिजो।

१—बखानियै–बखानिजै। ते सब–बुधिबल। २—स्वाधिन०–स्वाधिन-पतिका, उत्कला स्वाधीनपतिका उत्कँठा, स्वाधीनपति उत्कंठिता। ३—सु आनि–सु जान, सु आन। सकल–सबै। सु जानि सु बखान, सु जान।

अथ स्वाधीनपतिका-लक्षण—(दोहा)

(२४१) केसव जाके गुन बँध्यो, सदा रहै पति संग।
स्वाधिनपतिका तासु कों, बरनत प्रेम-प्रसंग।४।

प्रच्छन्न स्वाधीनपतिका, यथा—(सवैया)

(२४२) केसव जीवन जो ब्रज को पुनि जोवहु तें अति बापहि भावै।
जापर देव-अदेव-कुमारिनि वारत माइ न बार लगावै।
ता हरि पै तूँ गँवार की बेटो महावर पाइ झवाँइ दिवावै।
हौं तौ बची अब हाँसिनहीं ऐसें और जौ देखै तौ ऊतरु आवै।५।

शब्दार्थ—जीवन = प्राण। भावैं = अच्छे लगते हैं। माइ = माता। अदेव = मनुष्य। वारत = न्यौछावर करने में। बार = विलंब। झवाँइ = झावें से पैर रगड़वाकर। दिवावै = दिलवाती है। हाँसी = उपहास, अप्रतिष्ठा। ऊतरु आवै = उसे क्या उत्तर दोगी अर्थात् कोई नहीं।

भावार्थ—(सखी की उक्ति नायिका प्रति) हे सखी, जो व्रजवासियों के प्राण हैं और जिन्हें पिता भी प्राणों से अधिक प्यारा समझते हैं, जिन पर उनकी माता देव तथा नर-कुमारियों को न्यौछावर कर देने में देर नहीं लगातीं, ऐसे कृष्ण से भी तू ग्रामवासी की छोकरी (राधिका) होकर पैरों में झावें से रगड़वाकर महावर लगवाती है। मैं तो केवल हँसकर ही टाल गई। यदि कोई दूसरा देखेगा तो क्या तुझसे उत्तर बन आएगा? (अर्थात् नहीं)।

प्रकाश स्वाधीनपतिका, यथा—(कबित्त)

(२४३) चोली को सो पान तोहिं करत सँवारिबोई,
मुकुर ज्यों तोहीं बीच मूरति समानी है।
तोहीं तियदेवता पै पायो पति केसौदास,
पतनी बहुत पतिदेवता बखानी है।
तेरे मनोरथ भागीरथ-रथ पाछै पाछै,
डोलत गुपाल मेरे गंग को सो पानी है।
ऐसी बात कौन जो न मानी सुनि मेरी रानी,
उनकें तौ तेरी बानी बेद की सी बानी है।६।

४—तास कों–तास-कहँ, तास कहि। ५—पुनि–अरु। बापहि–तातहि। कुमारिनि–कुमारनि। बार०–बारनि लावै। गँवार–अहीर। महावर०–झमाइकै पांइ महावर द्यावै। हौं तौ०–हौंतो रही बचि, मैं तो चलो अब। ऐसे–अस, सखि। तौ–सो।६—को सो–के सो। बीच–माँह। तियदेवता–पतिदेवता। केसौदास–केसोराइ। तेरे०–मनोरथ रथ भगीरथ रथ पीछे। डोलत०–डोलै नंदलाल। बेद–देव।

शब्दार्थ—चोली = पान रखने की डलिया। पान = तांबूल। करत सँवारिबोई = सँवारते रहते हैं। तियदेवता = स्त्री ही है देवता जिसके लिए (वह पति)।

भावार्थ—(सखी की उक्ति नायिका से) हे सखी, वे तुझे डलिया में रखे पान की तरह उलट पलट कर सँवारते रहते हैं, दर्पण की भाँति तुझमें ही उनकी मूर्ति बसी हुई है। पतिदेवता (पतिव्रता, पति को देवता माननेवाली) स्त्रियाँ तो बहुत सी प्रसिद्ध हैं पर स्त्रीदेवता (स्त्री को देवता माननेवाला) पति तो तुझी को मिला है। तेरे मनोरथ रूपी भगीरथ के रथ के पीछे पीछे मेरे कृष्ण गंगाजल की भाँति चलते हुए दिखाई देते हैं (तेरे मनोरथ के अनुकूल कार्य करते देखे जाते हैं) हे रानी, उन्होंने तेरी ऐसी कौन सी बात थी जो टाल दी ? वे तो तेरी बात वेद-वाणी-तुल्य समझते हैं।

अलंकार—दृष्टांत और रूपक।

सूचना—वेदवाणी अमान्य नहीं की जाती जैसे स्वामी की वाणी। श्रीकृष्ण नायिका की वाणी भी अमान्य नहीं करते।

अथ उत्का-लक्षण—(दोहा)

(२४४) **कौनहुँ हेत न आइयो, प्रीतम जाके धाम।**
ताकों सोचति सोचि हिय, केसव उत्का बाम।७।

प्रच्छन्न उत्का, यथा—(कवित्त)

(२४५) **किधौं गृह-काज कै न छूटत सखा-समाज,**
किधौं कछू आज व्रत-बासर बिभात तैं।
दीनो तैं न सोध, किधौं काहू सों भयो बिरोध,
उपज्यो प्रबोध किधौं उर अवदात तैं।
सुख में न देह किधौं मोहीं सों कपटनेह,
किधौं देखि मेह अति डरे अधरात तैं।
किधौं मेरी प्रीति की प्रतीति लेत केसौदास,
अजहूँ न आए मन सुधौं कौनी बात तैं।८।

शब्दार्थ—किधौं गृहकाज = घर का कोई काम आ पड़ा है। कै = अथवा। छूटत न = छोड़ न सके। व्रत-बासर = व्रत का दिन। विभात = प्रभात। आज० = आज व्रत के दिन का प्रभात (आरंभ)। सोध = पता, समाचार। बिरोध = झगड़ा। प्रबोध = ज्ञान, वैराग्य। अवदात = विमल।

७—उत्का–उत्कंठिता। सोचि–सोच। केसव०–सो उत्कंठा। ८—कै न–कि न, किधौं। छूटत–छूटघो न। किधौं उर–उर सोधु। केसवदास–केसवराइ। सु धौं–सूधो।

उपज्यो० = अथवा उनके निर्मल हृदय में वैराग्य उत्पन्न हो गया है। सुख में न देह=शरीर सुख में नहीं है, अस्वस्थ हैं। कपट-नेह = दिखौआ प्रेम। मेह = वर्षा। अधरात तें = आधी रात हो जाने के कारण। प्रतीति = विश्वास। प्रतीति लेना=परीक्षा करना, जांच करना। मन = हे मन। सु धौं = सो न जाने। कौनी बात तें = किस कारण से।

प्रकाश उत्का, यथा--(सवैया)

(२४६) सुधि भूलि गई, भुलए किधौं काहु कि भूलेई डोलत बाट न पाई।
भीत भए किधौं केसव काहू सों, भेंट भई कोऊ भामिनि भाई।
मग आवत हैं किधौं आइ गए, किधौं आवहिंगे सजनी सुखदाई।
अब आए न नंदकुमार बिचारि, सु कौन बिचार अबार लगाई।९।

शब्दार्थ—सुधि = स्मृति, स्मरण। भुलाए० = किसी ने भुलावा दे रखा हैं, किसी ने अपने चक्कर में फँसा रखा है। भूलेई डोलत = मार्ग भूलकर घूम रहे हैं। बाट = मार्ग, रास्ता। भीत=भयभीत। भामिनि = स्त्री, नायिका। भाई = अच्छी लगी। मग = (मार्ग) रास्ता। बिचारि = तू विचार कर। बिचार = कारण। अबार = देर।

अथ वासकसज्जा-लक्षण—(दोहा)

(२४७) बासकसज्जा होइ सो, कहि केसव सबिलास।
चितवै रतिगृहद्वार त्यौं, पिय-आवन की आस।१०।

शब्दार्थ— सविलास = विलासपूर्वक, विलासयुक्त। रतिगृह = प्रिय से मिलने का गृह। त्यौं = ओर।

वासकसज्जा, यथा—(कवित्त)

(२४८) चंदन बिटप बपु कोमल अमल दल,
कलित ललित लता लपटी लवंग की।
केसौदास तामें दुरी दीप की सिखा सी दौरि,
दुरवति नीलबास दुति अंग अंग की।
पौन पानी पंछी पसु बस सब्द जित जित
होइ तित तित चौंकि चाहै चोप संग की।
नंदलाल-आगम बिलोकें कुंजजाल बाल
लीनी गति तेहीं काल पंजर-पतंग की।११।

९—यथा सवैया-मदनमनोहर छंद। कि—कै। काहू सों—काहू कै। कोऊ—कोई। मग०-आवत हैं मग आइ गए। आइ०—आए गए। अब आए—आए। बिचारि०--सखी सुनु कौने। बिचारि—बिचारु। १०—चितवै०- चितै रहै। ११—कलित—बलित, बिमल। दुरवति०--दरसत। पानी--पान। बस०--बसै सदा जित जित, सब्द जित जित। होइ०--होइ तित तित चौंकि चाहै, बास सदा जित जित होइ। बिलोकें०--बिलोकिबे को कुंज बाल। लीनी--कीनी। तेहीं--तिहीं।

केसौदास सब छाड़ि कियो हठ ही सों हेत,
वाहू छोड़ि जिय जिये बिन कहा जात है।
ऐसे प्यारे पीय ही सों मान्यो न मनायो तब,
ऐसी तोहि बूझियै जु पाछें पछितात है।१४।

शब्दार्थ—बालिस = (सं० बालिश) मूर्ख। ज्यों = भाँति। कह = क्यों। बिललातु है = व्याकुल होता है। पाहन = (पाषाण) पत्थर। तें=से (भी अधिक)। पीन=मोटा, कठोर। माखन सो = मक्खन की भाँति मृदु। हेत = प्रेम, संबंध। जिय = हे मन। जिए बिन=जीते रहे बिना, अब जाओगे कहाँ, तुम्हें जीते रहना ही पड़ेगा, मरने चले हो तो मर भी न सकोगे। ऐसी०= क्या तुझे ऐसा करना चाहिए था कि तू पीछे पछताए ?

प्रकाश अभिसंधिता, यथा—(सवैया)

(२५२) पाइ परेहू तें प्रीतम त्यौं कहि केसव क्योंहूँ न मैं दृग दीनी।
तेरी सखी सिख सीखी न एकहूँ रोष ही की सिख सीखि जु लीनी॥
चंदन चंद समीर सरोज जरै दुख, देह भई सुखहीनी।
मैं उलटी जु करी बिधि मो कहँ न्यायनहीं उलटी बिधि कीनी।१५।

शब्दार्थ—पाइ० = पैर पड़ने पर भी। त्यौं = और। दृग दीनी = देखा। सिख = शिक्षा। रोष=क्रोध। समीर=वायु। बिधि=ढंग, तरीका। न्यायनहीं=न्यायानुसार ही, ठीक ही। बिधि = ब्रह्मा। उलटो = विपरीत, प्रतिकूल। बिधि = रीति। कीनी = की।

अथ खंडिता-लक्षण—(दोहा)

(२५३)　आवन कहि आवै नहीं, आवै प्रीतम प्रात।
जाके घर सो खंडिता कहै जु बहु बिधि बात।१६।

प्रच्छन्न खंडिता, यथा—(कबित्त)

(२५४) आँखनि जौ सूझत न काननि तौ सुनियत,
केसौदास जैसे तुम लोकनि में गाए हौ।
बंस की बिसारी सुधिकाक ज्यों चुनत फिरौ,
जूठे सीठे सीथ सठ-ईठ ढीठ ठाए हौ।
दूरि दूरि करतहूँ दौरि दौरि गहौ पाइ,
जानौ न कुठौरु ठौरु जानि जिय पाए हौ।

१४—जब-जनु। न बालिस०—नाहिं बालिस तू। परे०—परे पाइ तित्यो, पाइ परे त्यों त्यों। सो—त्यों। कियो—कीनो। प्यारे—प्यारी। पीय०—पियहि सों, पीउहूं को, पीय ही तो। बूझियै—पूछियै। जु—तू। पाछें—पीछे। १५—तें—न। क्यों हूं न—कैसहूं। एकहूँ—एक ए। १६—जाके—ताके। घर—धर। जु—सु। जु०—रोष सों बात।

काको घर घालिबे कौं बसे कहाँ घनस्याम,
घूघू ज्यौं घुसन प्रात मेरे गृह आए हौ ।१७।

शब्दार्थ—सीठे=निस्सार वस्तु, किसी वस्तु का तत्त्व निकाल लेने पर जो अवशिष्ट रहे । सीथ = कण, भात का दाना । सठ-ईठ = शठ को इष्ट, शठ की तरह । ठाए हौ = हो गए हो । घूघू = घुग्घू, उलूक, उल्लू ।

भावार्थ—(नायिका की उक्ति नायक से) यदि मेरी आँखों को (तुम्हारे कथनानुसार ठीक ठीक) दिखाई नहीं देता तो कानों से तो वे सब बातें सुनती ही हूँ जिनमें दुनिया तुम्हारे गीत गाती है । आपने कुल का ध्यान छोड़ दिया है । कौए की तरह उच्छिष्ट और निस्सार अन्नकण चुगते फिरते हैं । आप तो शठों की तरह धृष्ट हो गए हैं । 'दूर रहो दूर रहो' कहते रहने पर भी दौड़ दौड़कर मेरे पैर क्यों पकड़ते हैं ? आप ठौर कुठौर तो कुछ समझते नहीं, मैंने आपको भली भाँति पहचान लिया है । कहिए किसका घर घालने के लिए रात में कहाँ बसे रहे ? अब घुग्घू की भाँति (दूसरे का घर घालकर) मेरे घर में प्रातःकाल घुसने चले हैं ।

प्रकाश खंडिता, यथा—(सवैया)

(२५५) आजु कछू अँखियाँ हरि और सी मानो महावर माहँ रँगी हैं ।
मोहन मोही सी लागति मोहिं इते पर मोहन मोह लगी हैं ।
मेरी सौं मो सहुँ भानहु बेगि हिये रसरोष की रीति जगी हैं ।
मेरे बियोग के तेज तचीं किधौं केसव काहू के प्रेम पगी हैं ।१८।

शब्दार्थ—और सी = और ही प्रकार की । मोहन = हे मोहन । मोही सी = मुग्ध हुई सी । मोहि = मुझे । मोहन मोह० = मोहनेवाले मोह से युक्त, अत्यंत आकर्षक भाव से युक्त हैं । मो सहुँ = मुझसे । भानहु = बताइए । तेज = अग्नि । तचीं = पकी हैं ।

भावार्थ—(नायिका की उक्ति नायक प्रति) हे कृष्ण, आज आपकी आँखें कुछ और ही प्रकार की हैं । मानो महावर (के रंग) में रँगी हुई हैं । हे मोहन, मुझे तो ये मोह ली गई सी जान पड़ती हैं, फिर भी ये मुझे मोहक भाव से युक्त जान पड़ रही हैं । मेरी शपथ, आप शीघ्र मुझसे यह रहस्य बताएँ क्योंकि मेरे मन में विपरीत भावों की स्थिति एक साथ ही दिखाई पड़ रही है—रस (प्रेम) की भी और रोष की भी । यदि ये आँखें मेरे वियोग की अग्नि से तपकर लाल हुई हैं (तब तो रस की स्थिति ठीक ही है) और यदि ये किसी दूसरी नायिका के प्रेम (लाल रंग) में पागकर लाल हुई हैं तो रोष की स्थिति स्पष्ट है ।

१७— तौं-तें । केसौदास-केसौराइ । लोकनि०-लोक महि, लोक माँझ । फिरौ-फिरै । ज्यों-की । गृह-घर । १८—माहँ-रंग मो सहुँ-मोहूँ सों ।

सूचना—(१) प्रेम का रंग लाल होता है और रोष का भी रंग लाल होता है।

(२) इस छंद के अनेक शंका-समाधान टीकाकारों ने किए हैं।

अथ प्रोषितपतिका-लक्षण—(दोहा)

(२५६) **जाको प्रीतम दै अवधि, गयो कौनहूँ काज।**
ताकों प्रोषितप्रेयसी, कहि बरनत कबिराज।१६।

प्रच्छन्न प्रोषितपतिका—यथा, (सवैया)

(२५७) **केसव कैसेहूँ पूरब पुन्य मिल्यो मनभावतो भाग भरयो री।**
जानै को माई कहा भयो क्योंहूँ जु औधि को आधिक द्योस टरयोरी।
ताकहुँ तूँ न अजौं हँसि बोलै जऊ मेरो मोहन पाइ परयो री।
काठहु तें हठ तेरो कठोर इतें बिरहानलहूँ न जरयो री।२०।

शब्दार्थ—मनभावती = मनचहेता (नायक)। भाग भरयो = भाग्यवती हुई। माई = हे माई, आश्चर्यबोधक। आधिक = आधा। द्योस = दिवस, दिन। टरयो री = टल गया, बीत गया। अजौं = अब भी। इतें = इतने तीव्र।

भावार्थ—(सखी की उक्ति नायिका से) हे सखी, न जाने क्या कारण हुआ कि अवधि से केवल आधा दिन ही किसी प्रकार अधिक व्यतीत हो गया और श्रीकृष्ण प्रतिज्ञानुसार समय पर नहीं पहुँच सके। इतने थोड़े समय के विलंब के लिए तू अब भी उनसे हँसकर नहीं बोल रही है, यद्यपि वे तेरे पैरों पड़ रहे हैं। यह नहीं समझती कि न जाने किस पूर्वजन्म के पुण्य से प्रिय से भेंट हुई है, भाग्योदय का समय आया है। इसलिए मेरी दृष्टि में निश्चय ही तेरा हठ काठ से भी कड़ा है। क्योंकि उनके वियोग की विरहाग्नि में भी वह न जल सका (तो अब क्या आशा की जाय, अब भी तो तू अपना हठ नहीं छोड़ती)।

प्रकाश प्रोषितपतिका, यथा—(सवैया)

(२५८) **औधि दै आए उहाँ उनसों यह भोजन कै अब ही हम ऐहैं।**
वाकहँ तौ अब लौं बहराइकै राखी बरयाइ मरू करि मैं हैं।
बैठे कहा इनके ढिग केसव जाउ नहीं कोउ जाइ जु कैहैं।
जानत हौ उन आँखिनि तें अँसुवा उमहे बहुरयो पुनि रहैं।२१।

शब्दार्थ—उनसों = उस नायिका को। अब ही = अभी। ऐहैं = आएँगे। अब लौं = अब तक। बहराइकै = भुलावा दे करके। बरयाइ = बलात्। मरू

१६—प्रोषितपतिका-प्रोषित प्रेयसी। २०—क्योंहूँ जु-कैसेहूँ, कान्ह को। आधिक-आधो कु। टरयो-टरयो। बोलै०-बोलति मेरो ज्यों। हूँ न-हूनो। २१—आए-आपु। उनसों-उनको। यह-यहाँ। बरयाइ-स्ववाइ, बराइ। मरू०-बरू कहि। इनके-इनकी। जाप-जाउ। उन-इन। उमहे-उमड्यो।

करि = अत्यंत कठिनाई से। कहा = क्यों। इनके = इस नायिका के। ढिग = पास। कैहैं = कहिहैं, कह देंगे। जाउ० = जाते क्यों नहीं, कोई जाकर यदि ये समाचार (उस नायिका को जिससे भोजन करके आने की कह आए हैं) सुना आए तो। उमहे = उमड़ने पर। बहुरयो = तदनंतर। रैहैं = रहिहैं, रहेंगे, रुकेंगे। पुनि रैहैं = क्या फिर रोके रुक सकेंगे ?

अथ विप्रलब्धा-लक्षण—(दोहा)

(२५९) दूती सों संकेत कहि लैन पठाई आप।
लब्धबिप्र सो जानियै, अनआए संताप।२२।

शब्दार्थ—लैन पठाई = बुलाने के लिए भेज दी।

प्रच्छन्न विप्रलब्धा, यथा—(सवैया)

(२६०) सूल से फूल सुबास कुबास सी भाकसी से भए भौन सभागे।
केसव बाग महाबन सो जुर सी चढ़ी जोन्ह सबै अँग दागे।
नेह लग्यो उर नाहर सो निसि नाह घरीक कहूँ अनुरागे।
गारी सो गीत बिरी बिष सी सिगरेई सिँगार अँगार से लागे।२३।

शब्दार्थ—सूल = (सं० शूल) काँटा। कुबास = दुर्गंध। भाकसी = (भस्त्रा) भाड़, भरसाईं। भौन = महल। सभागे = अच्छे, मनभावने। बाग = बगीचा, उपवन। महाबन = घोर जंगल सा भयावना। जुर सी = ज्वर की भाँति। जोन्ह = (ज्योत्स्ना) चाँदनी। दागे = जलाए। नाहर = सिंह (की भाँति त्रासद)। निसि = रात्रि में। नाह = नाथ (पति)। घरीक = घड़ी भर। निसि नाह = रात्रि में घड़ी भर के लिए अपने पति के कहीं अन्यत्र रम जाने के कारण। गारी से = गाली की भाँति अप्रिय। बिरी = पान का बीड़ा।

प्रकाश विप्रलब्धा, यथा—(कबित्त)

(२६१) देखत उदधिजात देखि देखि निज गात,
चंपक के पात कछू लिख्यो है बनाइकै।
सकल सुगंध टारि फूल-माल तोरि डारि,
दूतिका कों मारि पुनि बीरी बगराइकै।
लै लै दीह साँस तजि बिबिध बिलास हास,
केसौदास ह्वै उदास चली अकुलाइकै।
सेइकै संकेत सूनो कान्हजू सों बोलि ऊनो,
मोसों कर जोरि दूनो दूनो दुख पाइकै।२४।

२२—कहि--बदि, करि। लब्ध--लब्धा। सो--सु। जानियै--जानिजै। २३—सभागे--सुभागे। गारी सो--गारी से। २४—टारि--ढारि। बीरी--बीरा। हास--आस। बोलि--मान। कर०--जोरे कर, करयो जोर, करि जोसो। दूनो--बोली दूनों।

शब्दार्थ—उदधिजात = चंद्रमा। गात = गात्र, शरीर। पता = पत्ता, पंखुड़ी। बनाइकै = भली-भाँति मन लगाकर। टारि = हटाकर, दूर करके। मारि = पीटकर। बगराइकै = बिखेरकर, फैलाकर। दीह = दीर्घ। बिलास = प्रसन्नता की चेष्टाएँ। सेइकै = अर्थात् वहाँ रहकर। ऊनो = उदास भाव की बातें। दूनो = दोनो ही। दूनो = दूना, अत्यधिक।

सूचना—इस कबित्त के प्रथम चरण के लेख के बारे में अनेक अटकलें लगाई गई हैं। सरदार ने बड़ा लंबा चौड़ा वाग्विस्तार किया है। सीधी बात इतनी ही है कि चंद्रमा को देखकर उसके शरीर में जो कामोद्दीपन हो रहा था उसी के लिए उसने चंपकदल पर राहु का चित्र अंकित किया, जिससे उसका तेज मंद पड़े। चंपकदल चुनने का कारण यह है कि उसके शरीर के रंग से उसका साम्य है।

अथ अभिसारिका-लक्षण—(दोहा)

(२६२) **हित तें कै मद मदन तें, पिय पै मिलै जु जाइ।**
सो कहियै अभिसारिका, बरनी त्रिबिध बनाइ।२५।

शब्दार्थ—हित तें = प्रेम से (प्रेमाभिसारिका)। मद तें = गर्व से (गर्वाभिसारिका)। मदन तें = काम से (कामाभिसारिका)।

अथ स्वकीया अभिसारिका-लक्षण—(दोहा)

(२६३) **अति सलज्ज पग मग धरै, चलत बधुन के संग।**
स्वकिया को अभिसार यह, भूषन भूषित अंग।२६।

सूचना—निम्नलिखित चार दोहे हस्तलिखित प्रति में नहीं हैं। सरदार ने इन्हें अन्य का माना है—

परकीया अभिसारिका, यथा—(दोहा)

जनी सहेली सोभही, बंधुबधू सँग चार।
मग में देइ बराइ डग, लज्जा को अभिसार॥

सामान्या को अभिसार, यथा—(दोहा)

चकित चित्त साहस सहित, नीलबसनजुत गात।
कुलटा संध्या अभिसरै, उत्सव तम अधिरात॥
चहूँ ओर चितवै हँसै, चित चोरै सबिलास।
अंगराग-रंजित नितहि, भूषन-भूषित भास॥
कुसुम कंजु कर मंदगति, सखी-संग मग चार।
सखी सहेली साथ बहु, बरनि नारि-अभिसार॥

२५—पै-सों, को। २६—सलज्ज-सुलज्ज। पग०—पग डग धरै, डगमग भरी, डगमग धरै। चलत-चरति। बधुन-बधू। स्वकिया-स्वीया। यह-वह, इह।

प्रच्छन्न प्रेमाभिसारिका, यथा—(कवित्त)

(२६४) लीनो हम मोल अनबोलें आई जान्यो मोह,
मोहिं घनस्याम घनमाला बोलि लाई है।
देख्यो ह्वै है दुख जहाँ देहऊ न देखी परै,
देखी कैसे बाट केसौ दामिनी दिखाई है।
ऊँचे नीचे बीच-कीच कंटकनि परे पग,
साहस गयंद गति अति सुखदाई है।
भारी भयकारी निसि निपट अकेली तुम,
नाहीं प्राननाथ साथ प्रेम जु सहाई है।२७।

शब्दार्थ—हम = हमको। अनबोलें = बिना बुलाए। घनस्याम = हे कृष्ण। घनमाला = काले बादलों का समूह। बोलि = बुलाकर। बाट = मार्ग। साहस = हिम्मत। गयंद = हाथी। गति—चाल। सहाई = सहायक।

भावार्थ—(नायक और नायिका का संवाद) (नायक)—तुमने तो मुझे मोल ही ले लिया है? क्योंकि बिना बुलाए ही आईं। तुम्हारा प्रेम मैंने जान लिया।

(नायिका)—हे घनश्याम, मुझे तो काले बादलों की पंक्ति बुलाकर लाई है।

(नायक)—तब तो तुमने दुख देखा होगा (तुम्हें बड़ा कष्ट हुआ होगा)।

(नायिका)—जहाँ (जिस अँधेरी रात्रि में) शरीर भी दिखाई नहीं देता, वहाँ दुख क्या दिखाई देगा।

(नायक)—तो फिर उसमें तुमने रास्ता कैसे देखा ?

(नायिका)—मार्ग तो बिजली (के प्रकाश) ने दिखा दिया।

(नायक)—फिर भी चढ़ाव, उतार, कीचड़ और काँटों पर पैर पड़े होंगे जिससे कष्ट मिला होगा।

(नायिका)—साहस रूपी हाथी की सुखदायी चाल से आई हूँ (कष्ट मिलने का प्रश्न ही नहीं उठता)।

(नायक)—महा भयंकर (डरावनी) रात्रि में भला तुम अकेली कैसे आईं।

(नायिका)—हे प्राणनाथ, साथ में आपका प्रेम मेरा सहायक जो था।

प्रकाश प्रेमाभिसारिका, यथा—(कबित्त)

(२६५) नैननि की अतुराई बैननि की चतुराई,
गात की गुराई न दुरति दुति चाल की।

२७—लीनो-लीने। हम-हमै। आई-आए। मोह-माहि, नेह। लाई-ल्याई। देखी कैसे-दीखो कैसे। परे-पीड़े। गति०-की सी गति सुखदाई। भयकारी-यह कारी। जु-जो।

आपने चरित्रनि के चित्रत बिचित्र चित्र,
चित्रिनी ज्यों सोहै साथ पुत्रिका गुवाल की।
चंद्र के समान चारु चाय सों चढ़ाएँ फिरै,
करिकै तिहारे मृगनैननि की पालकी।
कीजै पयपान अरु रखै पान प्रानप्यारे,
आई है जु आई अलबेली ग्वालि काल की।२८।

शब्दार्थ—अतुराई=आतुरता, तत्परता। न दुरति=छिपती नहीं। दुति=द्युति। चित्रत=बनाती हैं। पुत्रिका=पुत्री। गुवाल=ग्वाला। चारु=सुंदर। चाय=प्रेम। पयपान=जलपान। काल की=कलवाली, जिसकी चर्चा कल मैंने की थी, या आपने जिसे कल देखा था।

प्रच्छन्न गर्वाभिसारिका, यथा—(सवैया)

(२६६) लाड़िली लीली कलोरी लुरी कहँ लाल लुकै कहँ अँग लगाइकै।
आजु तौ केसव कैसहूँ लेरुवै लागन देति न देखहु आइकै।
बेगि चलौ उठि आई लिवावन दौरि अकेलियै हौं अकुलाइकै।
भूलिहू गोकुल गाँव में गोबिंद कीजै गरूर न गाइ चराइकै।२९।

शब्दार्थ—लाड़िली=प्यारी। लीली=नीली, श्यामवर्ण की। कलोरी=बिना बरदाई या ब्याई जवान गाय। लुरी=नवप्रसवा, थोड़े दिन की ब्याई हुई। कहँ=को। लाल=हे कृष्ण। लुके=छिपे। कहँ=कहाँ। अंग लगाइकै=अपने अंग लगाकर, अपने हाथ की करके। लेरुवै=बछड़े को। लागन देति न=थन छूने (पीने) नहीं देती। अकेलियै॥ अकेले ही। गोबिंद=गऊ के स्वामी गोपालक। गरूर=गुमान, अभिमान।

प्रकाश गर्वाभिसारिका, यथा—(कवित्त)

(२६७) चंदन चढ़ाइ चारु अंबर के उर हारु,
सुमन-सिँगार सोहै आनँद के कंद ज्यों।
वारौ कोरि रतिनाथ बीन में बजावै गाथ,
मृगज मराल साथ बानी जगबंद ज्यों।
चौंकि चौंकि चकई सी सौतिन की दूती चलीं,
सौतैं भई दीनी अरबिंद दुतमिंद ज्यों।
तिमिर बियोग भूले लोचन चकोर फूले,
आई ब्रजचंद चलि चंदावलि चंद ज्यों।३०।

२८—अतुराई-आतुराई। दुरति-दुराई जात। के-कौ। चित्र-गति। चढ़ाएँ०-चढ़ी फिरति। प्रानप्यारे-प्राननाथ। अलबेली-अनबोली। २९—सवैया-कमल छंद। कहं-कहु। कहं-कहाँ। अंग-आँग, आँगि। देखहु-कैसहूँ। उठि-चलि। लिवावन-बुलावन। अकेलियैं-अकेलियौ। ३०—के उर-को उर। कोरि-कोरि। बीन-बीना। मृगज-मृगय। दीनी-दीन। दुति-गति।

शब्दार्थ--चारु=सुंदर। अंबर=वस्त्र। के उर=के बीच, भीतर वस्त्रों के नीचे। सुमन=पुष्प। वारौं=न्यौछावर करूँ। कोरि=कोटि, करोड़ों। बानी जगबंद=संसारपूज्या सरस्वती। दीनी=दुःखी। अरबिंद= कमल। ब्रजचंद=श्रीकृष्ण। ज्यों=जैसे, तरह।

भावार्थ--(सखी की उक्ति नायक प्रति) शरीर में चंदन लगाए, सुंदर (श्वेत) वस्त्र पहने, उन वस्त्रों के नीचे मोतियों के हार गले में डाले, (श्वेत) पुष्पों की माला वक्षःस्थल पर धारण किए वह आनंद की जड़ सी शोभित होती है। (उसकी सुंदरता पर) करोड़ों रति न्यौछावर करती हूँ। हे नाथ, वह वीणा में आपका गुणगान करती है। उसके साथ मृगछौने तो हैं ही, हंस भी जा रहे हैं, जिससे जगद्वंद्य शारदा सी जान पड़ती है। जिसे देख कर (सौतों की) दूतियाँ चकित होकर चकई की भाँति भाँग चलीं और सौतें कमलिनी की भाँति मुरझाकर दुःखित हुईं अर्थात् कोई उसके सौंदर्य के सामने ठहर न सकी (चंद्रमा को देखकर चकई एवम् कमल मंद हो जाते हैं)। अंधकार रूपी वियोग जाता रहा। नेत्र रूपी चकोर प्रफुल्ल हुए। हे ब्रजचंद, वह चंद्रावली की भाँति चलकर चंद्र (आप) के पास आई है।

अलंकार--उपमा से पुष्ट रूपक।

सूचना--यहाँ 'दूती चौंकि चलीं', 'सौतैं दीनी भई' और 'वारौं कोरि रति' पदों से नायिका के सौंदर्य की पराकाष्ठा सूचित होती है। वह वीणा बजाकर प्रतिपक्षियों को चुनौती देती है, जिससे उसका गर्व प्रकट होता है। अतः गर्वाभिसारिका है।

प्रच्छन्न कामाभिसारिका, यथा--(कवित्त)

(२६८) **उरझत उरग चपत चरननि फन,**
देखत बिबिध निसिचर दिसि चारि के।
गनति न लागत मुसलधार सुनत न,
झिल्लीगन-घोष निरघोष जल-धारि के।
जानति न भूषन गिरत, पट फाटत न,
कंटक अटकि उर उरज उजारि के।
प्रेतनि की पूछैं नारि कौन पै तैं सीख्यो यह,
जोग कैसो सारु अभिसारु अभिसारिके।३१।

शब्दार्थ--उरग=सर्प। फन=फण, सिर। दिसि०=चारो दिशाओं के। घोष=शब्द, ध्वनि। निरघोष=घोर ध्वनि। धारि=धारा। भूषन=

३१--चरननि०-फन चरननि, चरननि फनि। सुनत न-बरषत। गिरत-गिरन।

गहना । उरज = स्तन । उजारि के = उजाड़वाले, कंटकबिद्ध । सारु = तात्विक साधना ।

भावार्थ—(सखी की उक्ति सखी से) पैरों में सर्प उलझ जाते हैं, उनके फण कुचल जाते हैं। अनेक निशाचर चारो दिशाओं में उसे देख रहे हैं। मूसलाधार पानी बरस रहा है, पर वह उसे कुछ नहीं गिनती। झींगुरों का शोर भी वह नहीं सुनती। जलधारा की प्रचंड ध्वनि भी उसे सुनाई नहीं पड़ती। गहनों के गिरने का भी उसे पता नही चलता। काँटों से फँसकर वस्त्र का फटना और छाती पर के स्तनों का कष्ट पाना भी उसे ज्ञात नहीं होता। प्रेतों की स्त्रियाँ उसकी इस एकाग्रता को देखकर पूछती हैं कि ऐ अभिसारिके तूने योग-साधना के तत्व से पूर्ण येह अभिसार किससे सीखा है ?

प्रकाश कामाभिसारिका, यथा—(सवैया)

(२६९) गोप बड़े बड़े बैठे अथाइन केसव **कोटि सभा अवगाहीं।**
खेलत बालकजाल गलीन में बाल बिलोकि बिलोकि बिकाहीं।
आवति जाति लुगाईं चहूँ दिसि घूँघट में पहिचाननि छाहीं।
चंद सो आनन काढ़ि कहा चली'सूझत है कछु तोहि कि नाहीं।३२

शब्दार्थ—अथाई = बैठक, गोष्ठी। अवगाहीं = कर चुके हैं, थहा चुके हैं अर्थात् सभा में प्रवीण हैं। जाल = समूह। बाल = नवयुवती। बिकाहीं = मुग्ध हो जाती हैं। लुगाई = स्त्रियाँ। छाहीं = छाया।

भावार्थ—(सखी की उक्ति नायिका प्रति) तू (इस समय) चंद्र-समान मुख खोले कहाँ जा रही है ? तुझे कुछ दिखाई देता है या नहीं ? बड़े बड़े (वयोवृद्ध) गोप बैठकों में बैठे हैं। ऐसे गोप जिन्होंने करोड़ो (अनेक) सभाएँ की हैं। गलियों में बालकों का समूह खेल रहा है, जिन्हें देख देखकर बालाएँ मोहित हो जाती हैं। चारो ओर स्त्रियाँ आ जा रही हैं। ऐसी स्त्रियाँ जो घूँघट के भीतर की भी छाया पहचान लेती हैं। (फिर भी तू निर्भय चली जा रही हैं !)।

(२७०) केसवदास **सुतीन बिधि, बरनि स्वकीया नारि।**
परकीया द्वै भाँति पुनि, आठ आठ अनुहारि।३३।

(२७१) **उत्तम मध्यम अधम अरु, तीन तीन बिधि जान।**
प्रकट तीन सै साठ तिय, केसवदास **बखान।३४।**

सूचना—स्वकीयादि ३ × पद्मिनी आदि ४ = (१२ + परकीया२ + सामान्य१ = १५) × स्वाधीनपतिकादि ८ = १२० × उत्तमादि ३ = सब ३६०।

३२—कोटि--कोरि। ३३—सु—रु।

अथ उत्तमा-लक्षण—(दोहा)

(२७२) **मान करै अपमान तें, तजै मान तें मान।**
पिय देखें सुख पावई, ताहि उत्तमा जान।३५।

उत्तमा, यथा—(सवैया)

(२७३) **होइ कहा अब के समुझे न तबै समुझे जब हे समुझाए।**
एक ही बंक बिलोकनि माँह अनेक अमोल बिबेक बिकाए।
जानिपनो न जनावहु जी जनमावधि लौं उहि जानि हौ पाए।
बातैं बनाइ बनाइ कहा कहौ लेहु मनाइ मनाइ ज्यों आए।३६।

शब्दार्थ—अब के समुझे = इस समय समझने से। समुझाए हे = समुझाए गए थे। हौं = मैं। बंक बिलोकनि = टेढ़ी चितवन। माँह = में। अमोल = अमूल्य। बिबेक = ज्ञान। जानिपनो = ज्ञानीपना, चतुराई। जनमावधि लौं = जन्म भर में, सारी जिंदगी लगाकर।

भावार्थ—(सखी की उक्ति नायक प्रति) जब मैंने आपको समझाया तब तो आपने समझा नहीं, अब समझने से भी क्या लाभ ? (अन्य नायिका की) एक ही टेढ़ी चितवन में आपके अनेक अमूल्य ज्ञान बिक गए। आपने यह नहीं समझा कि वह अप्रसन्न हो जाएगी। आपका ज्ञानीपना समझ गई। उसे दिखाने की कोशिश मत कीजिए। सारी जिंदगी खपाकर तो उसे किसी प्रकार आपने समझा है। उसके स्वभाव को पहचाना है। बातें बना बनाकर कहने से क्या होगा ? जैसे उसे पहले मनाते रहे हैं उसी प्रकार फिर क्यों नहीं मना लेते ?

अथ मध्यमा-लक्षण—(दोहा)

(२७४) **मान करै लघु दोष तें, छोड़ै बहुत प्रनाम।**
केसवदास **बखानियै ताहि मध्यमा बाम।३७।**

शब्दार्थ—बहुत प्रनाम = बहुत प्रणाम करने पर, पैरों पर गिरने से।

मध्यमा, यथा—(सवैया)

(२७५) **भूलेहूँ सूधे नहीं चितयो इहिं कान्ह कियो लचि लालच केतौ।**
हाहा कै हारि रहे मनमोहन पाइ परे त्यों परेई रहे तौ।
हौं तो यहै तब ही की बिचारति होतौ गुमान क्यों याहि धौं एतौ।
लाँबी लटैं अरु पातरी देह जु नेक बड़ो बिधि आँखि न देतौ।३८।

शब्दार्थ—लचि = नम्रतापूर्वक। हाहा कै = दीनता दिखाकर।

३५—पिय-प्यौ। ३६—होइ-होहि। हे-हौं। जानिपनो-जानि परो, जान परयो। बातें-बात। ३७—छोड़ै-छोड़ौ। छोड़ै०—तजै मान तें मान। बखानियै-बखानिहु। ३८—मनमोहन-पुनि केसव। पाइ०-प्यारी के पाइ। त्यों-तो। बिचारति-बिलोकति। याहि धौं-खाहि सो। धौं-तौ। एतौ-केतौ।

भावार्थ—(सखी की उक्ति सखी से) हे सखी, इस नायिका ने भूलकर भी सीधी चितवन से श्रीकृष्ण की ओर नहीं देखा, यद्यपि वे बेचारे नम्रतापूर्वक न जाने कितनी लालसाएँ करते रहे। वे बिनती करके भी थक गए, पैरों पड़े तो पैरों पर पड़े ही रह गए। मैं तो तभी से यही विचार रही हूँ कि इसे इतना घमंड आखिर क्यों हुआ। यदि कहीं ब्रह्मा इसे लंबी लंबी लटें, पतली देह और बड़ी बड़ी आँखें न देता (इन्हीं पर तो यह गुमान कर रही है) तो इतना गुमान न करती।

अथ अधमा-लक्षण—(दोहा)

(२७६) रूठै बारहिं बार जो, तूठै बेहीं काज।
ताही सों अधमा सबै, कहि बरनत कबिराज।३६।

अधमा, यथा—(सवैया)

(२७७) काटौं कपट्ट जु कान्ह सों कीजै री बाँटौं वे बोल कुबोल कसाई।
फारौं जु घूँघट ओट अटै सोई डीठि फोरौं अध कों जु धँसाई।
केसव ऐसी सखीन कों मारौं सिखै कै करैं हित की जु हँसाई।
बारहि बार को रूसबो बारौं बहाऊँ सु बुद्धि बियोग-बसाई।४०।

बचन—सखी की उक्ति नायिका से।

शब्दार्थ—काटौं = काट दूँ। बाँटौं = पीस डालूँ। बाँटौं वे बोल० = उन कसाई कुबोलों को पीस डालूँ (बुरी बात कहना तू छोड़ दे)। फारौं = फाड़ डालूँ। ओट अटै = बाधा डाले (चेहरा न देखने दे)। फोरौं = फोड़ डालूँ। अध को० = जो दृष्टि नीचे ही देखती रहे (श्रीकृष्ण की दृष्टि से मिलकर प्रेमालाप न करे)। हित = प्रेम। हित की० = प्रेम की हँसी कराए (निर्द्वंद्व प्रेम करने में बाधा उपस्थित करे)। बारौं = जला दूँ। बहाऊँ = बहा दूँ, प्रवाहित कर दूँ। बियोग-बसाई = जो वियोग में बसती हो, जो वियोग करानेवाली हो।

(दोहा)

(२७८) इहि बिधि नायक-नायिका बरनहुँ सहित बिबेक।
जाति काल बय भाव तें, केसव जानि अनेक।४१।

अथ अगम्या नायिका—(दोहा)

(२७९) तजि तरुनी संबंध की, जानि मित्र द्विजराज।
राखि लेइ दुख भूख तें, ताकी तिय तें भाज।४२।

३६—बेहीं-बैठहि, बिनहीं। सों-कों। सबै-बरन। कहि०-कहैं महा। ४०-फोरौं-फुरौं। हित की-हित हीं। रूसबो-रूसनो। सु-जु। ४१—रनहुँ-बनौं। जाति-देस। ४२—जानि-जती।

शब्दार्थ—संबंध की = संबंध में पड़नेवाली (भगिनी आदि)। मित्र = मित्र की पत्नी। द्विजराज = ब्राह्मण की पत्नी। राखि० = दुख पड़ने पर जिसने रक्षा की हो उसकी पत्नी और जिसका या जिसने पालन-पोषण किया हो उसकी पत्नी। भाज = भागो, बचना चाहिए (प्रेम नहीं करना चाहिए)।

(२८०) **अधिक बरन अरु अंग घटि, अंत्यज जन की नारि।**
तजि बिधवा अरु पूजिता रमियहु रसिक बिचार।४३।

शब्दार्थ—अधिक बरन = अपने से उच्च वर्ण की। अंग घटि = अपनी जाति से नीची जाति की। अंत्यज = चांडाल। जन = दास।

(२८१) **यह संजोग सिँगार की केसव बरनी रीति।**
बिप्रलंभ सिंगार की रीति कहौं करि प्रीति।४४।

इति श्रीमन्महाराजकुमारइंद्रजीतविरचितायां रसिकप्रियायामष्ट-नायिकासंभोगश्रृंगारवर्णनं नाम सप्तमः प्रभावः ॥७॥

अष्टम प्रभाव

अथ विप्रलंभश्रृंगार-लक्षण—(दोहा)

(२८२) **बिछुरत प्रीतम प्रीतमा होत जु रस तिहिं ठौर।**
बिप्रलंभ सिंगार कहि बरनत कबि-सिरमौर।१।

शब्दार्थ—प्रीतम = प्रियतम, नायक। प्रीतमा = प्रियतमा, नायिका।

अथ विप्रलंभश्रृंगार भेद-वर्णन—(दोहा)

(२८३) **बिप्रलंभ सिंगार को चारि प्रकार प्रकास।**
प्रथम पूर्ब-अनुराग पुनि, करुना, मान, प्रवास।२।

तात्पर्य—विप्रलंभ के भेद—पूर्वानुराग, मान, प्रवास और करुण विरह।

अथ पूर्वानुराग-लक्षण—(दोहा)

(२८४) **देखतहीं दुति दंपतिहि, उपजि परत अनुराग।**
बिन देखे दुख देखियै, सो पूरब अनुराग।३।

शब्दार्थ—दुति = कांति, सौंदर्य। दुख देखना = दुख पाना।

श्रीराधिकाजू को प्रच्छन्न पूर्वानुराग, यथा—(कबित्त)

(२८५) **फूल न दिखाव सूल फूलत है हरि बिनु,**
दूरि करि माल बाल ब्याल सी लगति है।

४३—अंत्यज—अक्षत।

१—प्रीतमा—प्रीतमहि। सिंगार०—तासों कहैं। बरनत०—केसव कबि, कहत रसिक। २—वर्णन—कथनम्। ३—देखियै—देखई।

चँवर चलाव जिन बीजन हलाव मति,
केसव सुगंध बाय बाय-सी लगति है।
चंदन चढ़ाव जिन ताप सी चढ़ति तन,
कुंकुम न लाव अंग आग सी लगति है।
बार बार बरजत बावरी है वारौं आनि,
बीरी न खवाव बीर बिष सी लगति है ।४।

शब्दार्थ—सूल फूलत = काँटे की तरह कसकते हैं, पीड़ा बढ़ती है । दूरि करि = हटा दे । बाल = बाला, स्त्री । ब्याल = सर्प । बालब्याल = सर्पिणी, नागिन । चँवर = मुर्छल । जिन = मत, नहीं । बीजन = (सं० व्यजन) पंखा । मति = मत, नहीं । सुगंध बाय = सुगंधित वायु, सुगंधित पदार्थों के संस्पर्श से सुगंधित होकर आनेवाली वायु । बाय = बाई (व्याधि) । ताप = ज्वर । 'ताप' शब्द का स्त्रीलिंग में व्यवहार ज्वर अर्थ में होता है । कुंकुम = केसर । न लाउ = मत लगा । अंग = शरीर में । बावरी = पगली, मूर्ख । वारौं = बलिहार होती हूँ । आनि = आकर । बीरी = पान की गिलौरी । बीर = हे सखी ।

श्रीराधिकाजू को प्रकाश पूर्वानुराग, यथा—(सवैया)

(२८६) केसव कैसहूँ ईठनि डीठि ह्वै डीठ परे रति-ईठ कन्हाई ।
ता दिन तें मन मेरे को आनि भई सु भई कहि क्योंहूँ न जाई ।
होइगी हाँसी जौ आवै कहूँ कहि, जानि हितू हित बूझन आई ।
कैसे मिलौं री, मिले बिनु क्यों रहौं, नैननि हेत, हियें डर माई ।५।

शब्दार्थ—कैसहूँ = किसी प्रकार से । ईठनि = यत्नों से डीठि । ह्वै डीठ परै = दृष्टि द्वारा देखे गए, ध्यान देकर उनका रूप देखा । रति-ईठ = प्रेम के लिए इष्ट, प्रिय । कन्हाई = कृष्ण । आनि० = (मेरे मन पर) जो आ पड़ी वह किसी प्रकार कही नहीं जा सकती । होइगी० = यदि कहीं कोई बात मुँह से निकल गई तो मेरा उपहास होगा । हितू = हितैषिणी । हित = पथ्य, अनुकूल कार्य अर्थात् उपाय । बूझन = पूछने के लिए । हेत = प्रेम । हियें = हृदय में । माई = हे सखी ।

श्रीकृष्णजू को प्रच्छन्न पूर्वानुराग, यथा—(सवैया)

(२८७) एक समै बृषभानसुता सजनी-गन में जननी-सँग बैसी ।
जात उन्हें चितयो जिहिं रीति सु प्रीति हियें कहि जाइ न तैसी ।

४—फूलत- सूलति । माल बाल०—माला बाला ब्याल, काल ब्याल बाल । मति—लागै । ताप०—ताप सों लगति । ५—डीठि ह्वै—ईठि ते । परे—परेव । कन्हाई—कहाई । कहूँ—कछु ।

वा दिन तें जग की जुवतीनि की लागत केसव बात अनैसी।
चाहि फिर्‌यो चित चक्र चहूँ न कहूँ दुति देखिये वा मुख कैसी।६।

शब्दार्थ—बृषभानसुता = राधिका। सजनी = सखी। जननी = माता। बैसी = बैठी थी। चितयो = (जाते हुए श्रीकृष्ण को राधिका ने) देखा। रीति = भाँति। अनैसी=बुरी, भद्दी। चाहि फिर्‌यो = देखकर चित्त लौट आया। चक्र = दिशा, ओर। चहूँ = चारो।

श्रीकृष्णजू को प्रकाश पूर्वानुराग, यथा—(सवैया)

(२८८) भाँति भली बृषभानलली जब तें अँखियाँ अँखियानि सों जोरी।
भौंह चढ़ाइ कछू डरपाइ बुलाइ लई हँसि कै बस भोरी।
केसव काहू त्यौं ता दिन तें रुचि कै न बिलोकति केतौ निहोरी।
लीलत है सब ही के सिँगार अँगारनि ज्यों बिन चंद चकोरी।७।

शब्दार्थ—भाँति भली = भली भाँति, अच्छे प्रकार। लली = पुत्री, लाड़िली। डरपाइ = डराकर, धमकाकर। बस कै = वश में करके। भोरी = इन भोली भाली आँखों को। काहू त्यौं = किसी की ओर। रुचि कै = चाव से। केतौ = (न जाने) कितना अधिक। निहोरी = (मैंने इन्हें) मनाया। लीलत है = खा जाती है। सब ही के = सखा-सखी, मित्रों के द्वारा किए जाने॰ वाले सजावट के प्रयत्न। अथवा ही = हृदय। सिँगार = (शृंगार) सजावट, प्रफुल्लता, उमंग।

भावार्थ—(नायक की उक्ति सखी से) जब से वृषभानु की पुत्री (राधिका) ने मेरी इन आँखों से अपनी आँखें भली भाँति मिलाई हैं और इन भोलीभाली बेचारियों को भौंहें चढ़ाकर, कुछ डरा धमकाकर, हँसकर और वश में करके अपने पास बुलाया तभी (उस दिन) से ये किसी की ओर रुचिपूर्वक देखती ही नहीं। मैंने न जाने कितना मनाया (पर व्यर्थ)। जैसे बिना चंद्रमा के चकोरी अंगारे लीलने लगती है वैसे ही (राधिका के मुखचंद्र के बिना) ये भी मेरे हृदय की सारी उमंगें खाए जा रही हैं (मेरे हृदय में प्रफुल्लता रह ही नहीं गई है।)

अथ दशदशा-वर्णन—(दोहा)

(२८९) अबिलोकनि आलाप तें मिलिबे कौं अकुलाहिं।
होत दसा दस बिनु मिले केसव क्यों कहिं जाहिं।८।

दशदशा-नामकथन—(दोहा)

(२९०) अभिलाष सु चिंता गुनकथन स्मृति उद्वेग प्रलाप।
उन्माद ब्याधि जड़ता भए होत मरन पुनि आप।९।

६—संग-ढिग। जुवतीनि-बतियानि। की लागत-लगावत। बात-भाँति। चाहि-चाहें। ७-काहू त्यौं-क्यों हूँ सु। बिलोकति-निहारति।

सूचना—इस दोहे के प्रथम और तृतीय चरणों में १३-१३ के बदले १५-१५ मात्राएँ हैं।

अथ अभिलाष-लक्षण—(दोहा)

(२६१) **नैन बैन मन मिलि रहे, चाहै मिलन सरीर।**
कहि केसव अभिलाष यह बरनत हैं मतिधीर।१०।

श्रीराधिकाजू को प्रच्छन्न अभिलाष, यथा—(सवैया)

(२६२) **सुधि बुद्धि घटी दुति देह मिटी दिनहीं दिन चाहिये बाढ़ति सी।**
कछु केसव आपने पेट की पीर दुरावति है मुख काढ़ति सी।
बिसरयो सुख सखी भूख निसि नींद परी चितचाहन आढ़ति सी।
गिरि गो कछु गाँठि तें छूटि छबीली सु काहे तें डोरति डाढ़तिसी।११।

शब्दार्थ—सुधि बुद्धि = सुधबुध, होश-हवास। घटी = कम हो गई। दुति = द्युति, कांति। मिटी = दूर हो गई। दिनहीं दिन = प्रतिदिन। चाहिये० = देह की कांति के मिटने का कोई कारण नहीं, प्रत्युत उसे और प्रतिदिन बढ़ना ही चाहिए। पेट की० = हृदय की बात तू छिपा रही है, मुख से कहने में सँकोच सा कर रही है। बिसरयो = तुझे सुख भूल गया है। भूख नहीं रह गई है और रात में तुझे नींद भी नहीं आती। परी चितचाहन० = चित्त की लालसाओं को आश्रय की खोज पड़ी हुई है, वे टिकाव का स्थान चाहती हैं। गिरि गो० = क्या तेरी गाँठ से खुलकर कुछ गिर गया है? (तेरी कोई वस्तु तो नहीं खो गई है?) काहे = क्यों। तैं = तू। डाढ़ति सी० = आग से जलती हुई सी। तेरी चाल ऐसी जान पड़ती है मानो तेरे शरीर में आग सी लग गई हो और उससे व्यग्र होकर तू छटपटाती हुई इधर उधर फिर रही हो।

श्रीराधिकाजू को प्रकाश अभिलाष, यथा—(सवैया)

(२६३) **जौ कहूँ देखें लगै दिखसाध दिखावतहीं दिनहीं दुख पैहौं।**
या ही में केसव देखिये वा तन देखिहौं देखि सखी अधिकैहौं।
यों उनकी दुरि देखिहौं देह ज्यों आपनी देह न देखन दैहौं।
देखिबे कौं बहरावति मोहिं सु हौं ब कहा कछु देखि ही लैहौं।१२।

शब्दार्थ—जौ कहूँ = यदि कहीं। देखें लगै दिखसाध = देखने पर देखने का अभिलाष हो जाए तो। दिनहीं = दिन प्रतिदिन। या = इस। ही = हृदय। बहरावति = फुसलाती है।

भावार्थ—(नायिका-वचन सखी प्रति) हे सखी, तू मुझे उनके दर्शन कराने को कहती है, यदि कहीं देखने पर दर्शनाभिलाष जग पड़ा तो तेरे दिखाने

१०—मति-कबि। ११—घटी-पटी। पीर-बात। है--पै। चाहन--चाहत, चाहति। १२—कहूँ--कहौं, कहो। वा तन--वो तन, बोल न, बोलु न। अधिकैहौं-अब कैहौं। दुरि--दुति। ज्यों--जो। दैहौं-सैहौं।

का परिणाम यह होगा कि मैं दिन प्रतिदिन दुःख ही पाऊँगी। मैं तो अपने हृदय में ही उनके शरीर को देख लेती हूँ। यदि उन्हें देखूँगी तो अधिकाधिक देखने लगूँगी। इस प्रकार मैं उनके शरीर को छिपकर ही देखूँगी (उनके रूप का ध्यान यहीं एकांत में कर लूँगी)। अपनी देह तक मैं उन्हें न देखने दूँगी। तू जो मुझे देखने के लिए फुसला रही है, मानो तेरे फुसलाने से मैं अब कुछ उन्हें देख ही लूँगी (बड़ी दिखानेवाली आई है, जा तेरे दिखाने से तो मैं देखने से रही!)।

श्रीकृष्णजू को प्रच्छन्न अभिलाष, यथा—(सवैया)

(२६४) पाइ परौं बलि जाउँ मनोहर आपुन सो न करौ अब ताहू।
देखें अघात नहीं दिन के फिरि बारक लौं अनदेखें ही जाहू।
मो सों कही सु कही अब केसव कैसहुँ कान्ह पत्याव न काहू।
डाढ़हुगे जु कहूँक इति रुचि तातो है नेक सिराइ धौं खाहू।१३।

शब्दार्थ—मनोहर = मन को हरनेवाले (श्रीकृष्ण)। आपुन सो = अपने समान बदनाम। ताहू = उसे (नायिका को) भी। अघात नहीं = तृप्त नहीं होते। दिन के = दिन भर के समय में। बारक लौं = कई दिनों तक। पत्याव न काहू = किसी का ऐसा विश्वास मत करना। डाढ़हुगे = जलोगे। कहूँक = कहीं। रुचि = लालसा। तातो = गरम। नेक = जरा। सिराइ धौं खाहु = कुछ ठंढा करके खाओ। धौं = तो।

भावार्थ—(सखी की उक्ति नायक प्रति) हे मनमोहन, आपने मुझसे जो कहा सो कहा अब और किसी का विश्वास करके ऐसा मत कहिएगा। मैं आपके पैरों पड़ती हूँ और बलिहारी जाती हूँ। अब उसे (नायिका को) भी अपना सा मत बना डालिए। जब उसे दिनदिन भर देखकर आपकी तृप्ति नहीं होती तो कहीं फिर कई दिनों तक बिना देखे ही न लौट जाना पड़े। उतावली में पड़कर गरम ही गरम पीने के फेर में कहीं अपना कोई अंग न जला लें। गरम (दूध) को जरा ठंढा हो जाने दीजिए तब पीजिए। (अभी प्रेम का आरंभ है, इसी में इतनी उतावली ठीक नहीं)।

श्रीकृष्णजू को प्रकाश अभिलाष, यथा—(सवैया)

(२६५) हैं कोइ माई हितू इनको यह जोइ कहै किहि बाइ बहे हैं।
न्यायहीं केसव गोकुल की कुलटा कुलनारिन नाउँ लहे हैं।
देखि री देखि लगाइ टकी इन सोनो सो घालिकै चाहि रहे हैं।
'को है री को' जैसे जानत नाहिन काल्हि ही वाके सँदेस कहे हैं।१४।

१३—आपुन०--आपु समान। अब--पुनि। दिन--तिन। के--कौ। ही--न। कहूँक०--कहूँ को इतो रसु, कहूँ बहुतो रुचि। १४—कोइ-कोउ। न्यायहीं--न्यारही। चाहि-डाहि, डारि। नाहिन--नाहिं ब।

शब्दार्थ—माई = माता, सखी (संबोधन)। इनको = श्रीकृष्ण का। हितू = कल्याण चाहनेवाला, हितुआ। कहे = अर्थात् पूछे। किहि बाइ बहे हैं = किस वाह (प्रवाह) में बह रहे हैं, किस ढर्रे पर जा रहे हैं। न्यायहीं = ठीक ही है। कुलनारि = कुलवती स्त्रियाँ। कुलटा० = कुलटाएँ जो कुलवती स्त्रियों का नाम धरने लगी हैं वह ठीक है, क्योंकि जब इनकी यह करनी है तो उन बेचारियों का नाम रखा ही जायगा, उनकी बदनामी कुलटाएँ करेंगी ही। टकी = टकटकी (लगाकर)। इत = इधर की ओर। सोनो सो घालिकै चाहि रहे हैं = 'सोना फेंककर देखना' ध्यान देकर देखने या घूरने के अर्थ में आता है। देख कैसी टकटकी बाँधकर घूर रहे हैं। को है० = पूछते हैं कि तू कौन है मानो जानते ही नहीं। अभी कल इन्हीं से मैंने उसके (नायिका के) संदेश कहे हैं।

सूचना—छपी प्रतियों में निम्नलिखित सवैया भी मिलता है जिसे 'सरदार' ने केशव का नहीं माना है—

> केसव नैननि लागिहै ज्यों वह मूरु ह्वै प्रेम अदृष्ट बढ़ावै।
> क्यों वह कामकला मिलै मोहिं सु तौ मन मूढ़ उपाउ न पावै।
> कीजै कृपा बुधि दीजै बुधीसजू राधिका के उर में यह आवै।
> लागति ज्यों कबहूँ कबहूँ मुख चंपक ज्यों मुख सों मुख लावै।

अथ चिंता-लक्षण—(दोहा)

(२९६) **कैसें के मिलियै, मिलें हरि कैसे बस होइ।**
यह चिंता चित चेत कै, बरनत हैं सब कोइ।१५।

शब्दार्थ—मिलियै = मिलूँ। मिलें = मिलने पर। धौं = न जाने। चेत कै = विचारकर।

श्रीराधिकाजू की प्रच्छन्न चिंता, यथा—(दोहा)

(२९७) **आपुनहीं तन, आपुनो होत न देखें जाहि।**
आपुनहीं तें आपनो क्यों मन, करिहै ताहि।१६।

शब्दार्थ—आपुनहीं = अपना ही। तन = शरीर। आपनो = अपना। जाहि = जिसे। आपनहीं तें = स्वयम् अपनी ओर से। करिहैं = करेगा।

भावार्थ—(नायिका की उक्ति मन के प्रति) हे मन, जिस नायक को देखकर अपना ही शरीर अपने वश में नहीं रह जाता वे स्वयम् तेरे वश में हो जाएँगे ऐसा कैसे संभव है।

१५—कैसें० कैसे मिलिए। कैसें-कैसें धौं। बरनत०-रहै निरंतर सोइ।
१६—आपुनहीं०-अपनोऊ तन, आपुनहीं तू, अपुनउ तनु तू।

श्रीराधिकाजू की प्रकाश चिंता, यथा—(कवित्त)

(२९८) प्रेम भय भूप रूप सचिव सँकोच सोच,
बिरह बिनोद पील पेलियत पचिकै।
तरल तुरंग अवलोकनि अनंत गति,
रथ मनोरथ रहैं प्यादे गुन गचिकै।
दुहूँ ओर परी जोर घोर घनी केसौदास,
होइ जीति कौन की को हारै जिय लचिकै।
देखत तुम्हैं गुपाल तिहि काल वहि बाल,
उर सतरंज की सी बाजी राखी रचिकै।१७।

शब्दार्थ—भूप=राजा, बादशाह। रूप=भाँति। सचिव=मंत्री, वजीर। पील=हाथी, फील। पेलियत=जबर्दस्ती चलाया जाता है। पचिकै=परेशान होकर। तरल=चंचल। तुरंग=घोड़ा। अवलोकनि=चितवन। अनंत गति=अनेक प्रकार की चालें चलनेवाला; अनेक प्रकार के कटाक्षपात करने वाली। गचिकै=भली भाँति किलेबंदी करके। लचिकै=दबकर। बाल=बाला, नायिका।

भावार्थ—(सखी की उक्ति नायक से) हे गोपाल, तुम्हें देखकर उसी समय से उस नायिका ने शतरंज की सी बाजी बिछा रखी है। प्रेम और भय राजा (बादशाह) हैं, संकोच और सोच फरजी (वजीर) हैं। विरह और विनोद हाथी हैं, जो परेशान होकर चलाए जाते हैं। चितवन तथा अनेक गति ही चंचल घोड़े हैं, मनोरथ ही रथ हैं, गुण ही प्यादे हैं जो पक्की मोरचेबंदी किए हुए हैं। दोनो ओर से जोरशोर की बाजी (लड़ाई) हो रही है। देखो किसकी विजय होती है और कौन दबकर (मात होकर) हारता है।

सूचना—सरदार की टीका में उपमेय और उपमान पक्ष की संख्याओं की गिनती मिलाने के लिए कई प्रकार के अर्थ पेश किए गए हैं। (१) रूप को वजीर माना गया है, दो आकृति होने से दोनो वजीरों से उसकी संगति बैठ जाती है। संकोच, सोच, विरह, विनोद चार हाथ हो गए। इन चारो अवस्थाओं की चितवनें घोड़े हो गईं, इन्हीं चारो की दशा के मनोरथ (अभिलाष) रथ (ऊँट) हो गए। बादशाह से घोड़े तक सोलह हुए। इन सोलहों के गुण प्यादे हो गए। (२) विरह-विनोद या विप्रलंभ चार प्रकार का होता है—पूर्वानुराग, मान, प्रवास और करुण। ये चारो हाथी हुए। अवलोकनि अर्थात् दर्शन चार प्रकार के होते हैं—श्रवण, चित्र, स्वप्न और प्रत्यक्ष। ये चार घोड़े हैं। मनोरथ या नीति चार प्रकार की—साम, दान,

---

१७—पील-फील। अवलोकनि-अबिलोकनि। प्यादे-पैदा, पै वा। हारै-रहै। तिहि-तेही।

दंड, भेद। साम = प्रियमिलन, दान=आनंददान, भेद = सखी को मिला लेना, दंड = कुलकानि का नाश ये चार रथ हैं। गुण या शृंगार सोलह होते हैं— उबटन, स्नान, वस्त्रधारण, केश सँवारना, कज्जल, सिंदूर, महावर, तिलक, तिल (गोदनाबिंदु), मेंहदी, अरगजा-लेप, आभूषण, पुष्पधारण, तांबूल और मिस्सी। (३) प्रच्छन्न और प्रकाश भेद से विरह एवम् विनोद के दो दो रूप होंगे। अतः हाथी चार हुए। इसी प्रकार चितवन संकोच और सोच के प्रकाश प्रच्छन्न भेद से चार प्रकार की हुई। अतः घोड़े चार हुए। विरह एवम् विनोद के मनोरथ के दो रथ भी इसी प्रकार चार हुए। इन सबके गुण सोलह हुए।

श्रीकृष्णजू की प्रच्छन्न चिंता, यथा (कवित्त)

(२९९) केसौदास सकल सुबास को निवास तन,
कहि कब भृकुटिबिलास त्रास छोलिहै।
कैसो है सुदिन बड़भागी अनुरागी जिहिं,
मेरो दृग वाके संग लागि लागि डोलिहै।
ऐसी ह्वैहै ईस पुनि आपने कटाछ मृग-
मद घनसार सम मेरे उर ओलिहै।
दीप के समीप पुनि दीपति बिलोकि वह,
चित्र की सी पूतरी सु क्योंहूँ हँसि बोलिहै।१८।

शब्दार्थ—सुबास = सुगंध। निवास = वासस्थान। तन = शरीर। छोलिहै = छील डालेगी, दूर कर देगी। भृकुटि॰ = अपनी भौंहों की भंगिमा से त्रास दूर करेगी। मृगमद = कस्तूरी। घनसार = कपूर। ओलिहै = डालेगी।

भावार्थ—(नायक की उक्ति अपने मन से) (हे मन) जिसका शरीर ही समस्त सुगंधों का वासस्थान है कह तो वह कब अपने भृकुटि-विलास से मेरा त्रास दूर करेगी? वह भाग्यशाली प्रेम से भरा सुदिन कब होगा जब मेरे नेत्र उसके अनुगामी हो होकर चलेंगे। हे ईश्वर, क्या ऐसा होगा कि वह कस्तूरी एवम् कपूर के समान अपने कटाक्ष मेरे हृदय में डालेगी। क्या ऐसा दिन कभी आएगा जब किसी दीपक के पास रात में खड़ी उस चित्र कीपुतली सी नायिका की दीप्ति दिखाई पड़ेगी और किसी प्रकार वह हँसकर मुझसे बोलेगी?

श्रीकृष्णजू की प्रकाश चिंता, यथा—(सवैया)

(३००) राधिका को जननी कों जनी कोऊ क्योंहूँ स्वयंबर बात जनावै।
देवकुमार से गोपकुमारनि मान दै दै बृषभान बुलावै।
केसव कैसहु बाल भली वह माल सु मेरे हियें पहिरावै।
तोहि सखी समदै सँग वाके सु क्यों यह बात सबै बनि आवै।१९।

१८—तन-मनु। जिहि-जब। मेरो-अंग, मेरी बोर। संग-संग संग। पुनि-निसि। १९—कों-सों। जनावै-चलावै।

शब्दार्थ—(श्रीकृष्ण का वचन सखी से) जनी = दासी। राधिका०= राधिका की माता को कोई इस बात के लिए प्रेरित करे कि वह राधिका का स्वयंवर रचे। देवकुमार = देवपुत्र, देवता। देवकुमार० = देवताओं के समान अच्छे अच्छे कुलवाले गोपों को उस स्वयंवर में वरण के लिए स्वयम् वृषभानु (राधिका के पिता) आमंत्रित करें (यह आमंत्रण मुझे भी मिले और मैं भी जाऊँ)। बाल = बाला, नायिका, राधिका। समदै = भेंट करे। कैसहु० = उस स्वयंवर के समारोह में वह मेरे गले में जयमाल डाले। तोहि०=हे सखी, फिर बिदाई के समय भेंट में तुझे भी उसके साथ अर्पित करें। ये सब संयोग किस प्रकार हों।

अथ गुणकथन-लक्षण—(दोहा)

(३०१) जहँ गुनगन गुनि देहदुति, बरनत बचन बिसेषि।
ताकहँ जानहु गुनकथन, मनमथ-मथन सु लेखि।२०।

शब्दार्थ—गुनि = स्मरण करके। देह० = अंगदीप्ति, सौंदर्य। मनमथ-मथन० = कामव्यथा का विशेष उल्लेख करके।

श्रीराधिकाजू को प्रच्छन्न गुणकथन, यथा—(कबित्त)

(३०२) कीरति सहित नित केसव कुँवर कान्ह,
केवल अकीरति नृपति सोम मानियै।
छुवत चंपकपात कुँभिलात जात तन,
अति हरषित गात हरिजू को जानियै।
कोमल सुबासजुत प्यारे के परम पानि,
कंटककलित नील नलिन बखानियै।
लोचन बिसाल चारु मदनगुपालजू के,
मदन-सरनि दरसन-रस हानियै।२१।

शब्दार्थ—कान्ह = श्रीकृष्ण। सोम = चंद्रमा। अकीरति = क्षीण होना, कलंकयुक्त होना, दिन में मलिन रहना आदि। परम=विशाल। पानि = (सं० पाणि) हाथ।

भावार्थ—(नायिका की उक्ति आत्मगत) कुँवर कन्हैया तो सर्वदा कीर्ति-सहित रहते हैं पर सोम राजा (चंद्रमा) केवल अकीर्तिसहित (अतः दोनो की समता क्या ?)। श्रीकृष्ण का शरीर (सदा) प्रफुल्ल रहता है पर चंपक पुष्प के दल तो स्पर्श मात्र से कुम्हला जाते हैं (इसलिए चंपक उनके शरीर के वर्ण की बराबरी नहीं कर सकता)। प्रियतम (श्रीकृष्ण) के .वशाल

२०—गुनि-मनि। ताकहँ०-तासों कहिये। मथन०-मनु से लेखि।
२१—सुबास-सुबाहु। रस-हित।

हाथ कोमल एवम् सुगंधित हैं पर कमल-नाल तो कँटीली होती है (फिर दोनों की समता कैसी ?)। मदनगोपाल के नेत्र विशाल और सुंदर हैं पर कामदेव के बाणों के तो दर्शन ही दुर्लभ हैं (इसलिए यह उपमान भी ठीक नहीं)।

अलंकार—व्यतिरेक ।

श्री राधिकाजू को प्रकाश गुणकथन, यथा—(सवैया)

(३०३) खंजन हैं मनरंजन केसव **रंजन नैन किधौं मति जी की।**
मीठी सुधा कि सुधाधर की दुति दंतन की किधौं दाड़िम ही की।
चंद भलो मुखचंद किधौं सखि सूरति काम कि कान्ह की नीकी।
कोमल पंकज कै पद-पंकज प्रान पियारे कि मूरति पी की ।२२।

शब्दार्थ—मनरंजन=मन को प्रसन्न करनेवाले । रंजन=रमानेवाले। मति=बुद्धि, वृत्त । जी=अंतःकरण। सुधा=अमृत। सुधाधर की=अधर की सुधा, अधरामृत। दुति=प्रकाश, शोभा। दाडिम=अनार। नीकी=भली। पंकज=कमल। पी की=प्रिय की।

भावार्थ—(नायिका की उक्ति सखी से) हे सखी, खंजन पक्षी विशेष मन का रंजन करनेवाले हैं अथवा प्रिय के नेत्र अंतःकरण की वृत्ति को विशेष रमानेवाले हैं। वह अमृत विशेष मधुर है या प्रिय का अधरामृत। अनार के दाने की शोभा विशेष आकर्षक है या उनके दाँतों की चमक। चंद्र विशेष अच्छा है अथवा उनका मुखचंद्र। काम की मूर्ति अधिक अच्छी है या श्रीकृष्ण की सुंदर मूर्ति। कमल विशेष कोमल हैं या उनके पदकमल। प्राण अधिक प्रिय हैं या प्रिय की मूर्ति अधिक प्रिय है।

सूचना—सरदार ने 'पीकी' का अर्थ 'पीका' के आधार पर निकाला है। वृक्ष में निकले नए पत्ते को 'पीका' कहते हैं।

श्रीकृष्णजू को प्रच्छन्न गुणकथन, यथा—(सवैया)

(३०४) जौ कहौं केसव **सोम सरोज सुधासुर भृंगनि देह दहे हैं।**
दाड़िम के फल श्रीफल बिद्रुम हाटक कोटिक कष्ट सहे हैं।
कोक कपोत करी अहि केहरि कोकिल कीर कुचील कहे हैं।
अंग अनूपम वा तिय के उनकी उपमा कहँ वेई रहे हैं ।२३।

शब्दार्थ—सोम=चंद्रमा (मुख)। सरोज=कमल (नेत्रों) सुधासुर=राहु। दाड़िम=अनार (दाँत)। श्रीफल=बेल (कुच)। विद्रुम=मूँगा (होंठ)। हाटक=सोना (शरीर का वर्ण, रंग)। कोक=चकवा (स्तन)। कपोत=कबूतर (ग्रीवा)। करी=हाथी (गति)। अहि=सर्प (बाहें)। केहरि=(सं० केसरी) सिंह (कमर)। कोकिल=कोयल (वाणी)।

२२—रंजन नैन-इंगित नैन। कि०—कै सुधारस। किधौं—सखी लखि।
२३—केहरि-केसरि।

कीर=सुग्गा (नासिका)। कुचील=कुरूप, मलिन।

भावार्थ—(नायक की उक्ति आत्मगत) यदि उसके (नायिका) के मुख की समता चंद्रमा से दूँ तो उसे राहु जलाता है और यदि उसके नेत्र को कमल कहूँ तो उसे भौंरे सताया करते हैं। अनार, बेल, मूँगा और सोना भी अपने उपमेयों की समता नहीं कर सकते, क्योंकि ये भी अनेक (करोड़ों) कष्ट सहते हैं। इसी प्रकार चक्रवाक, कबूतर, हाथी, सर्प, सिंह, कोयल और शुक भी अपने-अपने उपमेयों की समता नहीं कर सकते, क्योंकि ये कुरूप हैं। उस नायिका के समस्त अंग अद्वितीय हैं, उनकी समता उन्हीं से हो सकती है।

अलंकार—केशव ने इसे 'कविप्रिया' में दूषणोपमा के उदाहरण में रखा है। यह एक प्रकार का अनन्वय हीं है।

श्रीकृष्णजू को प्रकाश गुणकथन, यथा-(सवैया)

(३०५) लोचन बीच चुभी रुचि राधे की केसव क्योंहूँ सु जाति न काढ़ी।
मानहुँ मेरें गही अनुरागनि कुंकुम-पंक अलंकृत गाढ़ी।
मेरियै लागि रही तनुता जनु यों दुति नील निचोल की बाढ़ी।
मेरे ही मानो हियें कहँ सूँघति यों अरबिंद दियें मुख ठाढ़ी।२४।

शब्दार्थ—चुभी=धँस गई। रुचि=कांति। मेरें०=मेरे प्रेम से गृहीत हैं, मेरे अनुरागों से युक्त हैं। कुंकुम-पंक=केसर के गाढ़े लेप से युक्त। तनुता=शरीर का रंग (श्यामता)। नील निचोल=नाला वस्त्र। अरबिंद=कमल।

भावार्थ—(नायक की उक्ति सखी से) मेरे नेत्रों में राधिका की कांति ऐसी गड़ गई है कि किसी प्रकार निकाले नहीं निकलती। केसर के गाढ़े लेप से युक्त वे ऐसी जान पड़ती हैं मानो मेरे ही प्रेम को धारण किए हुए हैं। उनके नीले वस्त्र की शोभा तो ऐसी व्यक्त हो रही है मानो मेरे शरीर की ही श्यामता उन्हें लग गई है। वे जो मुँह से कमल लगाए हुए खड़ी हैं (उसे सूँघ रही हैं) वह ऐसा जान पड़ता है मानो मेरे हृदय को ही सूँघ रही हैं।

अलंकार—उक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा।

अथ स्मृति-लक्षण—(दोहा)

(३०६) और कछू न सुहाइ जहँ, भूलि जाहि सब काम।
मन मिलिबे को कामना ताही स्मृति है नाम।२५।

शब्दार्थ—सुहाइ न=अच्छा न लगे।

श्रीराधिकाजू की प्रच्छन्न स्मृति, यथा—(सवैया)

(३०७) बोल्यो सुहाइ न खेल्यो हँस्यो अरु देख्यो सुहाइ न दुक्ख बढ़्यो सो।
नीकियौ बात सुनें समुझै न मनो मन काहू के मोह मढ़्यो सो।

२४—क्योंहूँ सु-कैसहूँ। अलंकृत-कलंकित। २५—जाहि-जाइ। **ताही-ताको।**

केसव ढूँढ़ति यों उर में मतिमूढ़ भयो गुन गूढ़ पढ़्यो सो।
को करै साज बजावै को बीनहि याको कछू चित चाकचढ़्यो सो।२६।

शब्दार्थ—सुहाइ न=अच्छा नहीं लगता। नीकियौ बात=भली बात भी, सीधी सरल बात भी। सुनें=सुनने पर। मनौ०=मानो मन किसी के प्रेम में मढ़ गया है। ढूँढ़ति=अपने हृदय के भीतर वह वैसे ही कुछ ढूँढ़ती सी रहती है जैसे कोई गूढ़ गुण पढ़ने के अनंतर मतिविभ्रम हो जाने पर हृदय के भीतर कुछ खोजा करता है। को=कौन। साज=वाद्य को बजाने के निमित्त व्यवस्थित करना। बीनहि=वीणा को। चाक=चक्र। चाकचढ़्यो=भ्रमित।

श्रीराधिकाजू की प्रकाश स्मृति, यथा—(सवैया)

(३०८) मेरे मिलाएहीं मिलिहौ मनमोहन सों मन मोहि न दीजै।
मौनहि मौन बनै न कछू अब क्यों मन मानद के रस भीजै।
ऐसेहीं केसव कैसें जियै अहो पान न खाहु तौ पान्यौ न पीजै।
जानिहै कोऊ कहा करिहौ तब सोच न एतौ सकोच तौ कीजै।२७।

शब्दार्थ—मिलाएहीं पै=मिलाने पर ही। मोहि=मोहित होकर। मौनहि०=चुप्पी साधे रहने से तो काम नहीं बन सकता। क्यों=किस प्रकार। मानद=प्रिय। रस=प्रेम। रस भीजै०=प्रेम में डूबे। पान्यौ=पानी भी। जानिहै कोऊ=कोई जान जायगा। सोच=भय। संकोच=लज्जा।

भावार्थ—(सखी की उक्ति नायिका से) मेरे मिलाने पर ही उन (नायक) से मिलना होगा। मनमोहन पर मोहित होकर इस प्रकार मन देना ठीक नहीं इस प्रकार चुप्पी साधे रहने से भी काम न चलेगा। मौन रहने से भला प्रिय के प्रेमरस में मन कैसे भींग सकता है? तुम (जो खाना-पीना छोड़ बैठी हो सो) इस प्रकार जी कैसे सकोगी? यदि पान नहीं खाती हो तो क्या पानी भी नहीं पीना चाहिए? यदि कोई जान जाएगा तो क्या करोगी? लोगों के जानने का यदि भय नहीं है तो (कम से कम) लोगों का संकोच तो करना ही चाहिए।

श्रीराधिकाजू की प्रच्छन्न स्मृति, यथा—(सवैया)

(३०९) घोरि घनो घनसार घस्यो घनस्याम सु चंदन छ्वै तन तूल्यो।
केसव कुंज को कूल चितै प्रतिकूल भयो सुभ फूलनि फूल्यो।
भूले से डोलत बोलतहूँ उत जात कितै मन संभ्रम भूल्यो।
जानति हौं यह काहू के आजु मनोहर हार हिँडोरनि झूल्यो।२८।

शब्दार्थ—घनसार=कपूर। घस्यो=लगाया। तन तूल्यो=शरीर के

२६—मोह-मोद। मति-मन। याको-बाको। चाक-चक्र। २७—मिलाएहीं०-मिलाए हिये। मोहि-मारि। एतौ-जौ तौ, तौ हौ। २८—छ्वै-दै। भयो-भए। सुभ-सब। मनोहर०-मनो हरि।

वर्ण के तुल्य हो गया (जल गया)। कुंज को कूल = कुंज का तट, छोर। हार = माला ।

भावार्थ—(सखी की उक्ति नायक प्रति) हे घनश्याम, मैंने आज भली भाँति कपूर को घोलकर और उसमें चंदन मिलाकर आपके शरीर पर लगाया। पर शरीर छूते ही वह (जलकर) आपके शरीर के वर्ण के तुल्य हो गया। (अर्थात् जल गया)। शुभ फूलों से फूले हुए उस कुंज की ओर देखने पर भी प्रतिकूल ही बात हुई (विषाद हुआ, हर्ष नहीं)। आप भूले से फिर रहे हैं। बुलाने पर भी उधर कहाँ जाते हैं, आपका मन किस भ्रम के चक्कर में पड़ा है ? मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि आपका मन आज किसी के मनोहर हार रूपी झूले में झूलता रहा है। इसी से उसे चक्कर आ रहे हैं (आप किसी की स्मृति कर रहे हैं)।

अलंकार—हेतूत्प्रेक्षा ।

श्रीकृष्णजू की प्रकाश स्मृति, यथा—(सवैया)

(३१०) बासन बास भए बिष केसव डासन डासन की गति लीने।
चंदन चाँदनी त्यौं चित चाहै न चंद्रक चंद चितारस-भीने।
पान न खात न पान करै कछु हास-बिलास बिदा करि दीने।
ऐसी हैं गोकुल के कुल की जिहिं गोकुलनाथ के ये ढँग कीने।२६।

शब्दार्थ—बासन = वस्त्र। बास = सुगंध। डासन = बिछौना। डास = मच्छड़ (काटनेवाला)। त्यौं = उसी प्रकार अथवा और। चाहै न = चाहता नहीं अथवा देखता नही। चंद्रक = कपूर। चंद = चंद्रमा। चितारस-भीने = बीभत्स, बुरे (लगते हैं)। पान करै न = पीती नहीं। बिदा० = छोड़ दिए।

अथ उद्वेग-लक्षण—(दोहा)

(३१०) दुखदायक ह्वै जात जहँ सुखदायक अनयास।
सो उद्वेग दसा दुसह, जानहु केसवदास।३०।

श्रीराधिकाजू को प्रच्छन्न उद्वेग, यथा—(सवैया)

(३१२) चंद नहीं बिषकंद है केसव राहु इहीं गुन लीलि न लीनो।
कुंभज पावन जानि अपावन धोखें पियो पचि जानि न दीनो।
यासों सुधाधर सेष बिषाधर नाउँ धर्यो बिधि है बुधिहीनो।
सूर सों माई कहा कहियै जिन पापी लै आप-बराबर कीनो।३१।

शब्दार्थ—कंद=जड़, मूल। चंद० = यह चंद्रमा नहीं है विष की जड़ है। इहीं गुन = इस (अवगुण) के कारण। लीलि न लीनो=एकदम निगल

२६—भए- भयो। त्यौं—ज्यों। चंद—बंद। जिहिं—जिनि। ये—जे। ३०—जानहु—बरनहु। ३१—इहीं—यही, यहै। बुधि—बिधि। जिन—जेहि, यह। पापी—पापु जु।

नहीं गया (मुँह में लेकर भी उगल देता है) । कुंभज = अगस्त । पावन = पवित्र (कुंभज का विशेषण) । अपावन = इसे अपवित्र जानकर । पचि जानि न दीनो = पचने नहीं दिया (समुद्र पीते समय चंद्रमा को पी तो गए पर पचा नहीं सके) । यासों = इसको । सुधाधर = अमृत धारण करनेवाला । सेष बिषाधर=शेषनाग की तरह बिषैला । बिधि=ब्रह्मा । बुधिहीनो=बुद्धिहीन । यासों० = ब्रह्मा सचमुच ही बुद्धिहीन है जिसने इसे तो 'सुधाधर' नाम दिया और शेष को 'बिषाधर' ('विषाधर' तो इसे कहना चाहिए था) । सूर = सूर्य । सूर = सूर्य को क्या कहा जाय जिसने इस पापी को अपने बराबर कर रखा है ।

श्रीराधिकाजू को प्रकाश उद्वेग, यथा—(सवैया)

(३१३) केसव कालिह बिलोकि भजी वह, आजु बिलोकें बिना सु मरै जू ।
बासर बीस बिसे बिष मींडियै, राति जुन्हाई की ज्योति जरै जू ।
पालिक तें भुव भूमि तें पालिक आलि करोरि कलालि करै जू ।
भूषन देहु कछू ब्रजभूषन दूषन देह को हेरि हरै जू ।३२।

शब्दार्थ—भजी = भाग गई । कालिह० = आपको देखकर वह भाग गई (पर इतने में ही आपकी छटा उसके मन में ऐसी बस गई कि यदि वह अब आपको न देखे तो मर जाएगी) । बासर = दिन । बीस बिसे = पूर्ण प्रकार से । बिष मींडियै = विष में मसलती है । बासर = दिन में तो वह सब प्रकार से विष में डूबी रहती है । जुन्हाई = चाँदनी । ज्योति = प्रकाश । राति० = रात में चाँदनी के प्रकाश से जलती रहती है । पालिक = पल्यंक, पलंग, शय्या । भुवि = पृथ्वी पर । आलि = मेरी सखी, नायिका । कलालि = कलाछ, बेचैनी से इधर उधर होना । पालिक० = वह पलंग से पृथ्वी पर और फिर पृथ्वी से पलंग पर हो जाती है, इस प्रकार पलंग से पृथ्वी, पृथ्वी से पलंग पर आने जाने में मेरी सखी अनेक कलाछें करती रहती है । भूषन देहु = (अथवा कोई) आभूषण दीजिए । ब्रजभूषन=श्रीकृष्ण । दूषन=दोषों, दुःखों, कष्टों । देह को = अपने शरीर का । हेरि = (जिसे) देखकर । हरै = दूर करे । भूषन० = आप कोई अपना गहना ही दे दीजिए जिसे देखकर वह अपनी तपन कुछ शांत कर सके ।

श्रीकृष्णजू को प्रच्छन्न उद्वेग, यथा—(सवैया)

(३१४) मेघनि ज्यों हँसि हंस न हेरत हंसनि ज्यों घनरूप न पीवैं ।
कंजनि ज्यों चित चंद न चाहत चंद ज्यों कंजनि क्योंहूँ न छीवैं ।

३२—भजी-भगी । सु-सो । मींड़ियै-मीड़ियै । पालिक-पालकी । कलालि-कलाप । देहु-देहि ।

ताल तें बागिन बाग तें तालनि ताल तमाल की जात न सीवैं ।
कैसी हैं केसव वे जुवतीं सुनि ऐसी दसा पिय की पल जीवैं ।३३।

शब्दार्थ—मेघनि ज्यों० = जैसे बादल हंसों को नहीं देखता (वर्षा आने पर हंस मानसरोवर चले जाते हैं) वैसे ही वे हँसकर (प्रसन्नतापूर्वक) हंसों को नहीं देखते । हंसनि ज्यों० = जैसे हंस बादल का रूप (रस) पान नहीं करते वैसे ही वे भी बादलों को नहीं देखते । कंजनि ज्यों० = जैसे कमल मन से चंद्रमा को नहीं चाहते वैसे ही वे भी चंद्रमा को नहीं देखते । चंद ज्यों० = जैसे चंद्रमा किसी प्रकार कमलों की नहीं छूता (कमल चंद्रोदय होने पर बंद हो जाते हैं) वैसे ही वे भी कमलों को नहीं छूते । न छीवैं = नहीं छूते । ताल तें० = न ताल से बाग में आते हैं और न बाग से ताल की ओर (जैसे पहले जाया आया करते थे, वे अब सुखद नहीं लगते) । ताल तमाल की० = जहाँ ताल और तमाल के वृक्ष हैं वहाँ (संकेतस्थल समझकर मारे क्लेश के) जाते ही नहीं । सीवैं = सीमा में, निकट । पल = क्षण भर भी ! जीवैं = जीती हैं ।

श्रीकृष्णजू को प्रकाश उद्वेग, यथा—(सवैया)

(३१५) सोचि सखी भरि लेत बिलोचन, काँपत देखत फूले तमालहि ।
भूले से डोलत बोलत नाहिंन बाग गए किधौं तेरे ही तालहि ।
देख्यो जौ चाहति देखि न आवति ऐसे में हौं न दिखैहौं री लालहि ।
आजु कहा दिखसाध लगी जब देख्यो सुहाइ कछू न गुपालहि ।३४।

शब्दार्थ—सोचि = स्मरण करके । बिलोचन = दोनो नेत्र । काँपत० = फूले तमालों को देखकर वे काँपने लगते हैं । भूले० = भूले से फिरते रहते हैं, चुपचाप । बाग गए० = (कभी) तेरे बाग या (कभी) ताल पर जाया करते हैं । देख्यो जु० = यदि उन्हें देखना ही चाहती है तो देख क्यों नहीं आती ? मैं तो ऐसी दशा में लाल को दिखलाने स्वयम् न जाऊँगी । दिखसाध = देखने की उत्कंठा । जब देख्यो = जब गोपाल को कोई वस्तु देखने पर अच्छी नहीं लग रही है तब तुझे देखने की लालसा जगी है ।

अथ प्रलाप-लक्षण—(दोहा)

(३१६) भँवत रहै मन भौंर ज्यों, है तन-मन-परिताप ।
वचन कहै प्रिय पच्छ सों, तासों कहत प्रलाप ।३५।

शब्दार्थ—परिताप = (परि + ताप) अत्यंत ताप । वचन कहै = प्रिय पक्ष की ही बातें कहे, प्रियतम की ही बातें करे ।

३४—[illegible] लोचन । तेरे ही—तेरई । जौ—जु । दिखैहौं—दिखाऊँ ।

३५—भँवत—भ्रमत । [illegible] ।

श्रीराधिकाजू को प्रच्छन्न प्रलाप, यथा—(सवैया)

(३१७) खेल न हाँसी न खोरि अठाउ न हेत न बैर हियो कँपै रोसों।
लेनो न देनो हलाव भलाव न नातो न गोतो कहाँ कहौं तोसों।
आनि दियो दुख में दुख केसव कैसे हँसौं री कहा कहि कोसों।
नैन भरिभरि ग्वालि कहै अरी देख्यो तैं कान्ह कहा कह्यो मोसों।३६।

शब्दार्थ—खोरि = दोष, दुष्टपना। अठाउ = शरारत। हेत = प्रेम। लेनो० = लेना देना कुछ नहीं। हलाव० = हला भला भी नहीं है, दुआ सलाम या भेंट असीस वाली बात भी नहीं। नातो० = नाता गोता भी नहीं, नाता रिश्ता भी नहीं है। कोसों = बुरा भला कहूँ कोसूँ। खेलन० = न तो उनसे खेल खेलने का ही वास्ता है, न उनसे हँसी-मजाक ही है, न कोई दुष्टपना या शरारत ही जान पड़ती है न उनसे कोई मेल-मुहब्बत है और न शत्रुता ही है। पर उन्होंने जो कुछ कहा है उससे मेरा अंतःकरण रोष से काँप रहा है। भरिभरि = आँसू से भली भाँति भरकर। देख्यो तैं० = देखा तूने मुझसे कृष्ण ने क्या कहा ? लेनो० = न उनसे अपना कुछ लेना देना, न दुआ सलामत, न नाता-गोता फिर भी उन्होंने मुझसे ऐसी बात कही, तुझसे क्या कहूँ। आनि० = मैं अपने ही दुख में दुखी थी, उन्होंने मुझे इस दुख में दुख दिया। न हँसते ही बनता है न कोसते ही (हँसूँ तो किस बात पर और कोसूँ तो किस बात पर और कोसूँ तो क्या दोष लगाकर कोसूँ)।

श्रीराधिकाजू को प्रकाश प्रलाप, यथा—(सवैया)

(३१८) आलिनि माँझ मिली हुती खेलति जानै को कान्ह धौं आए कहाँ तें।
डीठिहि डीठि पर्यो न कछू सठ ढीठ गही हठि पीठि की घातैं।
गई गड़ि लाजनहीं हिय हौं तो उठी जरि केसव काँपति यातैं।
इती रिस मैं कबहूँ न बची पै रही पचि हौं अँखियान के नातैं।३७।

शब्दार्थ—जानै को = न जानै। डीठिहि० = आँखों से तो कुछ दिखलाई नहीं पड़ा (सामने से तो वे आए नहीं)। सठ = दुष्ट ने। ढीठ = धृष्ट, नायक। हठि = बरबस। पीठ की घातैं = पीठ की घात से, पीछे की ओर से। हौं गड़ि० = मैं लाज के मारे गड़ गई। उठी जरि० = मैं उस ढिठाई के कारण जल उठी, इसी से काँप रही हूँ। इती रिस० = इतना रोष तो मैंने कभी सहन नहीं किया। केवल आँखों के नाते इतनी परेशानी सह रही हूँ।

३६—हियो-हिये। कँपै-करि। रोसों-होंसों। लेनो०-लेन न देन। हलाव०-हलाउ भला नहि, हलाउ भलाउत। दुख में-सुख भी। हँसौं-सहौं। नैन०-नैननि नीर भरे कहै ग्वालिन। अरी-अलि। ३७—आलिनि-आलि के। डीठिहि-ढीठहि, सु डीठहि। सठ-सुठि। गई-हौं। हिय हौं तो-जु गई पै। केसव-को सब। काँपति-काँपनी। यातैं-वातैं। बची-सही। पचिहौं-बचिहौं।

श्रीकृष्णजू को प्रच्छन्न प्रलाप, यथा (सवैया)

(३१९) नील निचोल दुराइ कपोल बिलोकति ही करि ओलिक तोही।
जानि परी हँसि बोलति भीतर भाजि गई अवलोकत मोही।
बूझिबे की जक लागी है कान्हहि केसव कै रुचि रूप-लिलोही।
गोरस की सौं बबा की सौं तोहि कि बार लगी कहि मेरी सौं को ही।३८

शब्दार्थ—नील=नीला। निचोल=वस्त्र में। दुराइ=छिपाकर। ही=थी। ओलिक=ओट, परदा। जानि परी=मुझे देखकर भाग गई पर ऐसा जान पड़ा कि भीतर हँसकर कुछ बोल रही थी। बूझिबे की=उसके बारे में जानने की। जक=धुन। रुचि=इच्छा। रूप-लिलोही=सौंदर्य को लीलनेवाली, रूपलोभी। कै रुचि०=सौंदर्यदर्शी इच्छा के कारण। गोरस=दूध। सौं=शपथ। बार=द्वार। बार०=बतला दे, तुझे मेरी शपथ द्वार से लगी वह कौन खड़ी थी? अथवा किवार=किवाड़।

वचन—सखी की उक्ति नायिका या सखी से (कृष्ण की बातों को दुहरा रही है)।

श्रीकृष्णजू को प्रकाश प्रलाप, यथा—(कवित्त)

(३२०) मोहन मरीचिका सो हास, घनसार को सो
बास, मुख रूप की सी रेखा अवदात हैं।
केसौदास **बेनी तौ त्रिबेनी सी बनाइ गुही,**
जामें मेरे मनोरथ मुनि से अन्हात हैं।
नेह उरझे से नैन देखिबे कौं बिरुझे से,
बिझुकी सी भौंहैं उझके से उरजात हैं।
लोचन कमल चारु तिन पर पाइ देति,
तेरे घर आई आजु कहि कैसी बात हैं।३९।

शब्दार्थ—मोहन=मोहनेवाली। मरीचिका=किरण। घनसार=कपूर। बास=सुगंध। रूप=सौन्दर्य। अवदात=उज्ज्वल, निर्मल, स्वच्छ। बेनी=(सं० वेणी) चोटी। नेह उरझे=प्रेम में उलझे हुए। बिरुझे=हठ करते हुए। बिझुकी=किंचित् तनी हुई। उझके०=झाँकते हुए से। उरजात=कुच, स्तन।

भावार्थ—(नायक की उक्ति सखी से) जिस (नायिका) की हँसी मोहिनी किरण सी (श्वेत) है, सुगंध कपूर सी है और मुख सौन्दर्य की निर्मल रेखा की भाँति हैं, जिसने अपनी वेणी उज्ज्वल मोती और लाल तागे

३८—करि–किये, करे। ओलिक–पोलिक। कान्हहि–लालहि। लिलोही–मिलोहीं। ३९—कोसो-केसो। बात–बात की सी–कैसी। लोचन०–देवी सी बनाई बिधि कौन की है जाई यह तेरे घर आई आजु कहि कैसी बात है।

से गूंथकर त्रिवेणी (केश = यमुना, मोती = गंगा तथा लाल तागा = सरस्वती) सी बनाई है जिसमें मेरे मनोरथ मुनियों की भाँति स्नान करते हैं, जिसके नेत्र प्रेम में उलझे हुए और (किसी प्रिय को) देखने के लिए हठ करते हुए जान पड़ते हैं, जिसकी भौंहें किंचित् तनी हुई हैं और कुच झाँकते हुए से (उठे हुए) हैं, नेत्र-कमलों पर पैर रखती हुई (लक्ष्मी सी) यह तेरे यहाँ जो आई है कौन है और उसके आने का क्या कारण है।

अथ उन्माद-लक्षण—(दोहा)

(३२१) तरकि उठै पुनि उठि चलै, चितै रहै मुख देखि।
सो उन्माद जनावहीं, रोवै हँसै बिसेषि।४०।

शब्दार्थ—तरकि = सोच-विचार करके। चितै० = मुख देखकर देखता ही रह जाए। जनावहीं = बताते हैं, कहते हैं। बिसेषि = विशेष रूप से।

श्रीराधिकाजू को प्रच्छन्न उन्माद, यथा—(सवैया)

(३२२) केसव सुधि बुधि हरित सु तुम बिन बिथा अगाध राधिकहि बाढ़ी।
छूटी लट लटकति कटितट लौं चितवति नीठि नीठि करि ठाढ़ी।
तरकति तकि तोरति तन तलफति अति अपार उपचारनि डाढ़ी।
सकसकाति लै साँस अचेत सुचेतहु प्रेम-प्रेत गति गाढ़ी।४१।

शब्दार्थ—सुधि बुधि = होश हवास। हरित = हर ली गई। बिथा = (सं० व्यथा) कष्ट, पीड़ा। अगाध = गहरी अत्यधिक। सुधि बुधि० = आपके वियोग में राधिका की ऐसी गहरी व्यथा बढ़ी कि (कुछ कहा नहीं जा सकता) उसकी सारी सुधबुध खो गई है। नीठि = कठिनता से। ठाढ़ी = खड़ी। छूटी० = उसकी छूटी हुई केशों की लट कमर तक लटक रही है। बड़ी कठिनाई से तो वह खड़ी रह पाती है और कठिनाई से ही वह देखती भी रह सकती है। तरकति = सोच-विचार करती है। तोरति तन = शरीर तोड़ रही है, शरीर ऐंठ रही है। उपचार = औषध का प्रयोग। डाढ़ी = जली हुई। तरकति० = किसी की ओर देखकर न जाने वह किस सोच-विचार में पड़ जाती है। वह अपना शरीर तोड़ने लगती है। वह विरहताप के लिए किए गए औषधोपचार से बहुत अधिक जली हुई सी प्रतीत होती है। सकसकाति = (कभी) साँस लेकर वह कुछ कुछ होश में आने का आभास देती है। अचेत० = (कभी) भली भाँति चेत (होश) में रहते हुए भी वह अचेत सी रहती है। प्रेत० = मानो प्रेम रूपी प्रेत ने उसे भली भाँति पकड़ लिया है।

४०—मुख-मुँह। जनावहीं—जु गावहीं, गनावहीं, मनावहीं। ४१—सुधि०—सुबुद्धि सिद्ध हरि तुम। हरित०—रहै तुम्हैं बिन। व्यथा—वृथा। राधिकहि—राधिहि। लौं—लहु। चितवनि—बिनवति। नीठि करि—दीठि करि। ठाढ़ी—गाढ़ी। तरकति०—तरकि तरकि। अचेत०—अचेतहु मानहु।

सूचना—यह छंद मात्रावृत्त है। मात्राएँ ३२ हैं। ऐसे मात्रावृत्त का नाम भी 'सवैया' ही होता है। १६, १६ के विश्राम से अर्थात् दो चौपाई के चरणों के योग से यह छंद बनता है। इसे सवाई या समान सवैया कहते हैं। यह एक प्रकार का ताटंक है।

श्रीराधिकाजू को प्रकाश उन्माद, यथा—(सवैया)

(३२३) केसव चौंकति सी चितवै छतिया धरकै तरकै तकि छाँहीं।
बूझियै और कहै मुख और सु और की और भई पल माँहीं।
डीठि लगी किधौं बाय लगी मन भूलि परयो कै करयो कछु काँहीं।
घूँघट की घट की पट की हरि आजु कछू सुधि राधिकै नाँहीं।४२।

शब्दार्थ—तरकै = सोच-विचार करती है, चकपकाती है। ताकि=देखकर। छाँहीं = छाया। चौंकति० = चौंकती हुई तो वह देखती है। उसकी छाती धड़कती है और अपनी छाया तक को देखकर शोच-विचार में पड़ जाती है। बूझियै और = पूछा जाता है और कुछ। बूझियै० = उससे पूछा कुछ जाता है और उत्तर में उसके मुख से कुछ और ही निकल पड़ता है। वियोग के कारण पल भर में वह दूसरी की दूसरी ही हो गई। डीठि = नजर। बाय = वायु, बात। मन० = मन में ही कोई गड़बड़ी हो गई है। काँहीं = किसी ने। डीठि० = उसे किसी की नजर लग गई अथवा उसे बाई ने घर दबाया अथवा उसके अंतःकरण में ही विभ्रम हो गया है अथवा किसी ने उस पर जादू-टोना कर दिया है, कुछ समझ में ही नहीं आता कि बात क्या है। घट = घड़ा। पट = वस्त्र।

श्रीकृष्णजू को प्रच्छन्न उन्माद, यथा—(सवैया)

(३२४) गूढ़ अगूढ़ प्रकासत बातनि लोक अलोक की बात सरी सी।
रोवत हैं कबहूँ हँसि गावत नाचत लाज की छाँडि छरी सी।
काहू को सोच सँकोच न केसव देखत आवति देह मरी सी।
बाम की बाय कि काम की बाय कि है हरि की मति काहू हरी सी ४३

शब्दार्थ—गूढ़ = अस्पष्ट। अगूढ = स्पष्ट। प्रकासत = कहते हैं। लोक की बात=इस लोक में जैसी बातें होती हैं, साधारण बातें। अलोक की बातें = जो बातें सामान्यतया लोक में नहीं होतीं। गूढ़०=कभी तो उनके मुख से गूढ़ बातें निकलती हैं और कभी अगूढ़। कभी वे संसार की सर्वसाधारण बातें करते हैं कभी उनके मुख से अलौकिक बातें निकल पड़ती हैं। सरी सी=

४२–छतिया–छिति पै। ताकि–छिति। मुख–कछु। और सु–औरई। और की–औरई। भई–कहै। पल–छन। हरि०–कछु आजु सखो सुधि। ४३—अलोक की–अलौकिक। छाँडि–छाँह।

निकली जान पड़ी । छर = लांछन, चिह्न । 'छर' का स्त्रीलिंग छरी। लाज० = लज्जा का चिह्न भी उनमें नहीं रह गया है । देखत० = मैं देखे चली आ रही हूँ । देह० = शरीर चेतनाशून्य सा हो गया है । बाम = स्त्री । बाय = वायु, बात । बाम की बाय = श्रीकृष्ण को किसी स्त्री की हवा लग गई है अथवा काम की बातव्याधि हो गई है अथवा किसी ने,उनकी बुद्धि ही हरण कर ली है।

श्रीकृष्णजू को प्रकाश उन्माद, यथा—(कवित्त)

(३२५) सजल चकित चित चितवत चहूँ दिसि,
चाहि चाहि रहैं मुख चपल चलत धाइ ।
सोचत से मन मन कंपत तपत तन,
केसौदास रोवत हँसत उठैं गाइ गाइ ।
चलहि दिखाऊँ तोहि देखत हीं भयो मोहिं,
भयो सो कहन आई तोसों अलि अकुलाइ ।
जैसें कछु आकबाक बकत हैं आजु हरि,
तैसें जिन नाउँ मुख काहू को निकसि जाइ ।४४।

शब्दार्थ—(सखी की उक्ति राधिका या सखी से) । सजल = अश्रुपूर्ण नेत्रों से । चकित० = चकपकाए हुए चित्त से । चितवत० = चारो दिशाओं को देखते हैं, चारो ओर (चकित हो) देखते हैं । चाहि चाहि रहैं = मुख को देख देखकर रह जाते हैं, जो उनके पास जाता है उसका मुख ध्यान देकर देखने लगते हैं तो देखते ही रह जाते हैं । चपल चलत० = फिर दौड़कर बड़ी तेजी से चलने लगते हैं । सोचन० = मन में कुछ सोचते रहते हैं । मन कंपत = मन ही मन, भीतर ही भीतर काँपते से रहते हैं । तपत तन = शरीर तपता रहता है । चलहि = (हे सखी) चलो । दिखाऊँ० = उन्हें देखकर मेरी जो दशा हुई तुझे दिखला दूँ (समझा दूँ, तेरी भी वही स्थिति हो जाएगी) । उनकी जैसी कुछ दशा है उससे ही मैं व्याकुल होकर तुझसे कहने आई हूँ । आकवाक = अंडबंड, बेसिर पैर की बातें। जैसें कछु० = आज श्रीकृष्ण जैसी बेठिकाने की बातें कर रहे हैं वैसे में (तो मुझे भय हो रहा है कि) कहीं किसी का (तेरा) नाम न निकल जाए (प्रेम की बातें खुल न जायं) ।

अथ व्याधि-लक्षण—(दोहा)

(३२६) अंग-बरन बिबरन जहाँ, अति ऊँचे उस्वास ।
नैननीर परिताप बहु, व्याधि सु केसवदास ।४५।

शब्दार्थ—अंग-बरन = शरीर का रंग । बिबरन = अपने सहज रंग से भिन्न, कष्टसूचक पीला आदि रंग । उस्वास = उछ्वास । नैननीर = आँसू ।

४४—तन-गात । केसौदास-केसौराय । तैसें०-ऐसे मांझ नाउँ जनि ।
४५—ऊँचे-ऊँचो ।

श्रीराधिकाजू की प्रच्छन्न व्याधि, यथा—(सवैया)

(३२७) बेनु तज्यो उनि, बैन तें बोलौ न बोल, बिलोकत बुद्धि भगी है।
वे न सुनैं समुझैं तूँ न बातहि प्रेत लग्यो किधौं प्रीति जगी है।
केसव वे तुहि तोहि रटैं रट तोहि इतै उन्हीं की लगी है।
वे भखैं पान न,पान्यौ न तूँ सु तैं कान्ह ठगे कि तूँ कान्ह ठगी है।४६।

शब्दार्थ—बेनु = बाँसुरी। बैन = (वदन, बयरण, बैन) मुख। बोल = बात। पान्यौ = पानी भी।

भावार्थ—(सखी की उक्ति नायिका से) उधर उन्होंने (श्रीकृष्ण ने) तो बंशी बजाना छोड़ दिया है, इधर तेरे मुख से बोल नहीं निकलते। ऐसी स्थिति को देखने (और उस पर विचार करने से) तो बुद्धि भाग खड़ी होती है। कुछ समझ में ही नहीं आता कि आखिर हो क्या गया है, न जाने ये कैसी चेष्टाएँ करते हैं (यह तो स्वयम् बोलने की, मुख का व्यापार स्वयम् करने की बात हुई)। उधर वे सुनने पर भी किसी की बातें नहीं समझते और तू भी उसी प्रकार किसी की बातें सुनती समझती नहीं। यह (तुम दोनो को) प्रेत लगा है या प्रीति जगी है? (ऐसी चेष्टाएँ तो प्रेत लगने पर ही हुआ करती हैं)। उधर वे तुझे केवल तुझे ही रट रहे हैं इधर तू उन्हें ही रट रही है, उन्होंने पान खाना छोड़ दिया तूने पानी पीना छोड़ दिया, पता नहीं केवल उन्हें श्रीकृष्ण को तूने ठगा है या उन्होंने तुझे ठगा है।

श्रीकृष्जू की प्रकाश व्याधि, यथा—(सवैया)

(३२८) ह्वाँ उनके तनताप तें तापियै, ह्याँ इनके उपचार जड़ैयै।
ह्वाँ उनके उड़ि जैयै उसासनि, ह्याँ इनके अँसुवानि अन्हैयै।
केसव वै नँदलालन ये वृषभान-लली पै निदान न पैयै।
एकहिं बेर दुहूँनि कहा भयो माई री तूँ चलि देखन जैयै।४७।

शब्दार्थ—ताप = जलन। तापियै = तपिए, जलिए। ह्वाँ = वहाँ। ह्याँ = यहाँ। उपचार जड़ैयै = ठंढे ठंढे उपचारों से जाड़ा खाना पड़ता है। निदान = भेद, कारण।

भावार्थ—(सखी का वचन सखी से) वहाँ तो उन (नायक) के शरीर की जलन से जलना पड़ता है और यहाँ आने पर इनके ताप को दूर करनेवाले शीतल उपचारों की शीतलता से जाड़ा खाना पड़ता है। वहाँ उनकी (बड़ी बड़ी और तीव्र) उसासों से उड़ जाना पड़ता है और यहाँ इनके आँसुओं (की धारा में) स्नान करना पड़ता है (बह जाना पड़ता है)। वे तो नंद

४६—बेनु-बैन। बैन-बीन। बोलौ-बोलै, बोल्यो। बोल-बैन। वे न-बैन। तुहि०-तोहि तोहो। तैं-तौ। ४७—ह्वाँ-×। ताप तें-तापनि। इनके०-इनके तन तो। माई-आलि। री तूँ-यहै। देखन०-देखि डरैयै।

जी के पुत्र हैं और ये वृषभानुजी की पुत्री हैं। इन (बड़े बाप के लाडिली-लाड़िलों) का भेद कुछ खुलता नहीं कि आखिर बात क्या है। एक ही साथ दोनो को क्या हो गया, जरा आकर तू भी देख क्यों नहीं जाती।

सूचना—व्याधि के इन दो उदाहरणों में नायक और नायिका दोनो की दशा का साथ ही वर्णन कर दिया गया है, इसी से प्रकाश और प्रच्छन्न के पृथक् पृथक् दो दो उदाहरण केशव ने नहीं रखे।

अथ जड़ता-लक्षण—(दोहा)

(३२९) **भूलि जाइ सुधि बुधि जहाँ, सुख दुख होइ समान।**
तासों जड़ता कहत हैं, केसवदास **सुजान**।४८।

श्रीराधिकाजू की प्रच्छन्न जड़ता, यथा—(सवैया)

(३३०) **खरे उपचार खरी सियरी सियरे तें खरोई खरो तन छीजै।**
ऐसे में और करें तें कछू उपजै तौ सकेलि कहा हम लीजै।
देखत ही यह कामकली कुँभिलानियै जाति कहा अब कीजै।
कौन पै जाऊँ, कहा करौं केसव **कैसें जियै वह क्यों हम जीजै**।४९।

शब्दार्थ—खरे = अच्छे, अत्यंत लाभदायक। खरी = अत्यंत। सियरी = शीतलता। सियरे तें = शीतल से। खरोई खरी = अत्यधिक, और अधिक। छीजै = क्षीण होता है। खरे उपचार० = अच्छे उपचारों से शरीर में अत्यंत शीतलता होती है, पर यहाँ तो शीतोपचार से और भी शरीर क्षीण होता चला जा रहा है। सकेलि कहा हम लीजै० = हम क्या भँजा लेंगी, क्या पाएँगी, हमें क्या मिलेगा ? सकेलना = एकत्र करना, पाना। ऐसे में = ऐसी दशा में कोई और उपचार करने से कहीं कुछ का कुछ न हो जाय तो हम लोग कौन सा भाँड़ा भर लेंगी ? कामकली = नायिका। जीजै = जीवित रहें, जियें।

(३३१) श्रीराधिकाजू की प्रकाश जड़ता, यथा—(सवैया)

अँखियानि मिली सखियानि मिली पतियाँ बतियानि मिली तजि मौनैं।
ध्यान-बिधान मिली मनहीं मन ज्यों मिलै राँक मनौ मन सौनैं।
केसव **कैसहुँ बेगि चलौ नतु ह्वैहै वहै हरि जो कछु हौनैं।**
पूरन प्रेम-समाधि लगे मिलि जैहै तुम्हैं मिलिहौ तब कौनैं।५०।

शब्दार्थ—पतियाँ = पत्रिका। पतियाँ बतियानि = पत्रिका की बातों के द्वारा। ध्यान-विधान = ध्यान करने के ढंग से।

भावार्थ—(सखी-वचन नायक से) वह स्वयम् अपनी आँखों से तुमसे मिली (आँखों से देखना जब संभव नहीं रहा तो) सखियों द्वारा मिली (अर्थात् सखियों

४८—केसवदास-केसवराय। ४९—करें-किये। हौ-ही। कामकली-कामलता। ५०—पतियाँ०-पतियानि मिली बतियाँ। राँक-एक। मन-मिलि, मय। चलौ-मिलौ। नतु-तन। लगे-मिलें।

के माध्यम से बात करती रही, स्वयम् मौन हो रही), फिर उसने सखियों के माध्यम से मिलने की अपेक्षा पत्रिका की बातों के द्वारा प्रत्यक्ष तुमसे बात करना ठीक समझकर उस माध्यम से भी वह मिली। पत्रिका का माध्यम संतोषप्रद न होने से वह ध्यान-विधान से मन ही मन तुमसे मिली, जैसे दरिद्र मन ही मन सोने की कल्पना करके उससे मिलता है। इसलिए अब आप उससे शीघ्र ही मिलिए। नहीं तो जो कुछ होना होगा वही होकर रहेगा। यदि कहीं उसकी पूर्ण प्रेमसमाधि लग गई और (उसने योगियों की भाँति) तुममें अपने को मिला दिया, तब तुम जाकर मिलोगे भी तो किससे मिलोगे? उसमें तुममें अभेद हो जायगा, भेद रहेगा ही नहीं।

श्रीकृष्णजू की प्रच्छन्न जड़ता, यथा—(सवैया)

(३३२) पल ही पल सीतल होत सरीर बिचारे सबै उपचार निदानैं।
जौ करियै तन मंडन खंडन चित्त कछू सुख दुख्ख न आनैं।
केसव कान्ह सुनै समुझै नहिं, बूझिय कौनहिं को पहिचानैं।
जोग लियो कै बियोग है काहू को लोग कहा इन रोगनि जानैं।५१।

शब्दार्थ—पल ही पल = प्रतिक्षण। बिचारे = सोचे। उपचार = रोगशमन के उपाय, औषध। निदानैं = रोग का आदिकारण। मंडन=अलंकृत, सज्जित। खंडन = काट डालना, कष्ट देना। न आनैं = नहीं लाते। चित्त कछु०=उनके चित्त में शरीर को आराम देने या कष्ट पहुँचाने से सुख या दुख नहीं होता। बूझियै० = (श्रीकृष्ण की तो यह दशा है कि वे कुछ सुनते समझते नहीं) अब किससे पूछूँ, कौन रोग की ठीक ठीक पहचान कर सकता है? जोग लियो० = यह योग किया है या किसी का वियोग है, आखिर लोग इन रोगों को समझते ही क्या हैं? (यह योगजन्य है या प्रेमजन्य अथवा अन्य किसी हेतु से है)।

श्रीकृष्णजू की प्रकाश जड़ता, यथा—(सवैया)

(३३३) कान्ह के आसन बासनहीन हुतासन-मीत को प्रासन कीजै।
केसव इंद्रिय सोधि सबै मन साधि समाधिनि के रस भीजै।
जौ लौं भए हरि सिद्ध प्रसिद्ध न तौ लौं बिलोकि अलोक न कीजै।
देवी करैं तप तो लगि वै बरदान न जौ जिय-दान तौ दीजै।५२।

शब्दार्थ—बासन = वस्त्रों से। हुतासन-मीत = हुताशन का मित्र, वायु। प्रासन = भोजन, भक्षण, पान। साधि=स्थिर करके। रस भीजै = आनंद प्राप्त कर रहे हैं। अलोक = बदनामी, अपयश।

भावार्थ—(सखी-वचन नायिका प्रति) श्रीकृष्ण की अवस्था यह है कि वे आसन मारे हुए हैं, वस्त्र उन्होंने उतार फेंके हैं, हवा पीकर रहते हैं, सभी

५१—बिचारे-बिचारि। कान्ह-स्यामु। पहिचानैं यह मानैं। ५२—सोधि०-निग्रह जानिकै सोधि।

इंद्रियों को सोध लिया है (तत्तत् विषयों से उन्हें हटा लिया है—आँखों को देखने से, कानों को सुनने से आदि)। मन को भी साध लिया है और समाधि का आनंद ले रहे हैं। जब तक वे प्रख्यात सिद्ध न हो जायँ तब तक देखो, उनका अपयश मत करो। हे देवी, वे तपस्या तुम्हारे ही लिए कर रहे हैं। यदि वरदान नहीं देती हो तो कम से कम जीवन-दान तो दो (उनकी दशा तो यह है कि प्राण निकलने निकलने हो रहे हैं)।

अथ मरण-लक्षण—(दोहा)

(३३४) बनै न क्योंहूँ मिलन जहँ, छलबल केसवदास।
पूरन-प्रेम-प्रताप तें, मरन होत अनयास।५३।

शब्दार्थ—प्रताप तें = प्रभाव से।

भावार्थ—वियोग से जब किसी प्रकार छल बल से भी संयोग नहीं हो पाता तो पूर्ण प्रेम होने के कारण अनायास मरण हो जाता है।

(३३५) मरन सु केसवदास पै, बरन्यो जाइ न मित्र।
अजर अमर जस कहि कहौं, कैसे प्रेत-चरित्र।५४।

शब्दार्थ—पै = से। अजर अमर० = अजर अमर यश का वर्णन करके अब प्रेतचरित्र (मरण का) वर्णन क्या करूँ?

(३३६) रति उपजै रमनीन के, पहिलें केसवदास।
तिनकी इंगित देखि सखि, करत सुप्रेम-प्रकास।५५।

शब्दार्थ—रति = प्रेम। रमनी = रमणी, नायिका। तिनकी = उनकी। इंगित = चेष्टा।

(३३७) अति आदर अति लोभ तें, अति संगति तें मित्त।
साधुनिहूँ के होत हैं, केसव चंचल चित्त।५६।

सूचना—'रसगाहकचंद्रिका' टीका में इसके अनंतर यह दोहा है—

आदरादि तें साधुहू ज्यों चंचल चित होत।
त्यों परि सखिसँग दंपतिहिं चंचलता उद्दोत।

(३३८) सुभग दसा दस मैं कही, उपजै पूरन राग।
जिहि बिधि उपजै मान मन, बरनौं सुनहु सभाग।५७।

शब्दार्थ—उपजै०—जिनसे पूर्ण प्रेम प्रकट होता है।

इति श्रीमन्महाजकुमारइंद्रजीतविरचितायां रसिकप्रियायां विप्रलंभशृंगार-पूर्वानुरागवर्णनं नामाष्टमः प्रभावः।८।

५३—होत-होहि। ५४—जस०-तासों कहों। कैसे०-केसव प्रेम चरित्र। ५५—की-पै। देखि-जान। सखि-पिय। ५७—मन अब। सभाग-समाय।

नवम प्रभाव

अथ मान-लक्षण—(दोहा)

(३३९) **पूरन-प्रेम-प्रताप तें, उपजि परत अभिमान।**
ताकी छबि के छोभ तें, केसव कहियत मान।१।

शब्दार्थ—प्रताप तें = प्रभाव से, कारण। छबि के छोभ तें = उसकी छटा के उद्रेक से।

(३४०) **प्रकटहि पिय प्रति मानिनी, गुरु लघु मध्यम मान।**
प्रकटहिं पीय प्रियानि प्रति, केसवदास सुजान।२।

शब्दार्थ—पिय, पीय = प्रिय, नायक। प्रियानि प्रति = प्रियाओं के प्रति, नायिकाओं के प्रति।

अथ गुरुमान लक्षण—(दोहा)

(३४१) **आन नारि के चिह्न लखि, अरु सुनि स्रवननि नाउँ।**
उपजत है गुरुमान तहँ, केसवदास सुभाउँ।३।

शब्दार्थ—आन = (अन्य) दूसरी। स्रवननि = अपने कानों से किसी दूसरी नायिका का नाम सुनकर। नाउँ = नाम (गोत्रस्खलन)। सुभाउँ = स्वभाव से।

श्रीराधिकाजू को प्रच्छन्न गुरुमान चिह्न-दर्शन तें यथा—(सवैया)

(३४२) **आजु मिले बृषभानुकुमारिहि नंदकुमार बियोग बितैकै।**
रूप की रासि रस्यो रस केसव हास-बिलासनि रोस रितैकै।
बागे के भीतर देखि हियें नख नैन नवाइ रही सु इतै कै।
फूलिहि में भ्रमि भूलि मनो सकुचे सरसीरुह चंद चितैकै।४।

शब्दार्थ—बियोग = वियोगजन्य दुःख, विरह। वितैकै = व्यतीत करके, दूर करके। रस रस्यो = आनंद प्राप्त किया। रोस रितैकै = रोषशून्य करके, दूर करके। बागा = पोशाक, वस्त्र। इतै कै = इधर की ओर करके, अपनी ओर करके। फूलिहि में = फूलते ही समय। भ्रमि = धोखे में पड़कर।

भावार्थ—(सखी की उक्ति सखी से) आज श्रीकृष्ण राधिका से वियोग-जन्य दुःख दूर करते हुए (परम प्रेम से) मिले और हास-विलास में रोष को दूर करते हुए उन्होंने रूपवती (राधा) के प्रेम का आनंद प्राप्त किया। किंतु संयोग से वस्त्रों के भीतर श्रीकृष्ण के हृदय पर नखक्षत देखकर उन्होंने इस प्रकार उधर से अपने नेत्र हटाकर नीचे कर लिए मानो कमल के दो फूल जिस

१—छोम तें-छोभ सों। २—प्रकटहि०-मानभेद प्रकटहि प्रिया। ३—के—को। अरु-कं। ४—हियें०-नखच्छत। नैन०-रेख बनाइ। सकुचे-सकुच्यो।

समय खिल रहे हों उसी समय किसी (प्रकाशपिंड में) चंद्रमा का भ्रम हो जाने से भूलकर (नखक्षत = द्वितीया का चंद्र) उसे देखते ही संकुचित हो गए हों।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

श्रीराधिकाजू को प्रकाश गुरुमान श्रवण तें, यथा—(सवैया)

(३४३) **बूझति ही वह गोपी गुपालहि आजु कछू हँसिकै गुनगाथहिं।**
ऐसे में काहू को नाम सखी कहि कैसे धौं आइ गयो ब्रजनाथहि।
खात खवावति ही जु बिरी सु रही मुख की मुख हाथ की हाथहिं।
आतुर ह्वै उनि आँखिन तें अँसुवा निकसे अखरान के साथहि।५।

शब्दार्थ—बूझति ही = (श्रीकृष्ण से) पूछ रही थी। गुनगाथहिं = उनकी गुणगाथा, उनकी बातें। कहि आइ गयो = मुख से निकल पड़ा। धौं कैसे० = न जाने कैसे श्रीकृष्ण के मुख से निकल पड़ा, गोत्रस्खलन हो गया। खाति खवावति ही = खा-खिला रही थी। ही = थी। बिरी = पान के बीड़े। सु रही० = जो पान वह खा रही थी वह तो मुँह का मुँह में ही रह गया, दाँतों से या होठों से जहाँ का तहाँ दबाए रह गई और जो हाथ में लेकर उन्हें खिलाने जा रही थी वह हाथ में ही ज्यों का त्यों रह गया, उन्हें खिला न सकी। आतुर ह्वै = व्यग्र होकर। उनि० = उनकी आँखों से। अखरान = नाम के अक्षरों के साथ।

अलंकार—चपलातिशयोक्ति।

अथ नायक को गुरुमान-लक्षण—(दोहा)

(३४४) **लोकलीक उल्लंघि कछु, प्रिया कहै जब बैन।**
उपजि परत गुरुमान तहँ, प्रीतम के उर-ऐन।६।

शब्दार्थ—लोकलीक = लोकमर्यादा। उल्लंघि = उल्लंघन करके (लोक-सीमा को पार करके)। ऐन = (अयन) घर। उर-ऐन = हृदय रूपी घर में, हृदय में।

श्रीकृष्ण को प्रच्छन्न गुरुमान, यथा—(कबित्त)

(३४५) **ऐसी ऐसी रति राचे सौंहनि के साँचे स्याम,**
देखौ आनि बाँचि किधौं कौन की ये चीठी है।
सुनहु सभागी पाई रावरीयै पाग माहँ,
कागर के रूप काहू आगि की अँगीठी है।
जानति हौं याही मग पायो है जनम जग,
औरहूँ अलोकन की बीथी तुम दीठी है।

५—नाम-नाउ। कहि कैसे-सुनि आयो। आइ०-कैसे कह्यो। ६—उपजि०-उपजत है।

शब्दार्थ—खोरि = दोष। खोरि = गली। घनी = अनेक। घरनीनि = स्त्रियाँ।

भावार्थ—(नायक के गुरुमान करने पर बहिरंग सखी की उक्ति नायिका से) अगर कोई शिकायत करनी ही हो तो अपने लोगों से अपने ही सामने (एकांत में) उसे कहते हैं। यह नहीं कि उसके दोषों का खजाना गलियों में खोलने लगें (गली गली सबसे दोष कहते फिरना अनुचित है)। यदि किसी की दृष्टि किसी की ओर जाती है तो इतना ही किया जा सकता है कि वह उधर जाने से रोक ली जाय, यह तो हो नहीं सकता कि चाकू, लेकर नेत्र ही तराश दिए जायँ। (आज तो तू ऐसी बातें करके उन्हें क्रुद्ध कर रही है और वियोग सहा रही है) पर क्या जानती नहीं कि ये वे ही घनश्याम हैं जिनके घड़ी भर के वियोग के कारण अनेक स्त्रियों की ऐसी दशा हो जाया करती थी कि उनकी विरहाग्नि शांत करने के लिए कपूर घोलने की आवश्यकता पड़ जाती थी। तू कैसी बातें करने लगी है, तुझे इस प्रकार बोलना चाहिए जिस प्रकार साधारणतया बोलते हैं। मोल लिए हुए के प्रति भी क्या ऐसी बातें कही जाती हैं, जैसी बातें तूने अपने प्रिय श्रीकृष्ण के प्रति कही हैं? (जो तेरे प्रेम में बिक चुका उसे ऐसी कड़ी बातें!)।

सूचना—सखी की उक्ति से स्पष्ट है कि नायिका ने ऐसी बातें कही हैं जैसी साधारणतः लोकमर्यादा के विरुद्ध हैं। श्रीकृष्ण की ओर से सखी उलाहना दे रही है। वह बहिरंग है अतः प्रकाश गुरुमान है।

अथ लघुमान-लक्षण—(दोहा)

(३४७) देखत काहू नारि-त्यों, देखै अपने नैन।
तहँ उपजत लघुमान कै, सुनें सखी के बैन।९।

शब्दार्थ—त्यौं = ओर।

भावार्थ—स्वयम् अपनी आँखों से किसी दूसरी स्त्री की ओर देखते हुए नायक को देख लेने पर या ऐसी बात सखी से सुनने पर लघुमान उत्पन्न होता है।

श्रीराधिकाजू को प्रच्छन्न लघुमान, यथा—(सवैया)

(३४८) कान्ह तिहारी वा प्रानप्रिया के अयान सयान सबै मन माहीं।
मान किधौं अपमान अबै यह मानस पै अनुमाने न जाहीं।
सुख दुक्ख न केसव जानि परै समुझै रिस हास न हाँ अरु नाहीं।
यौं खिन ही सियरी खिन तातो है ज्यौं बदलै बदरानि की छाहीं।१०।

९—उपजत—उपजै। सखी के—सखीयै। १०—मानस पै—मान लखो। अनुमाने—पहिचाने। न हां—नहीं अरु नाहीं। यौं—जो। ही—में। है—सो, सु। बदरानि—बदरान।

शब्दार्थ—सयान = सयानापन, चतुराई। अयान = मूढ़ता, अज्ञान, भोलापन। मानस = मनुष्य। पै = से। सियरी = ठंढी।

भावार्थ—(सखी की उक्ति नायक से) हे कन्हैया, तुम्हारी उस प्राण-प्यारी की बातें कुछ खुलती नहीं—उसका सयानापन या भोलापन सब उसके मन में ही रहता है। यह मान है या अपमान, अभी तो मनुष्य इसका अनुमान लगा ही नहीं सकता (पता नहीं चलता कि बात क्या है ?)। न तो सुख का पता चलता है न दुख का, न रोष अर्थात् उदासी का ही पता चलता है न हँसी या प्रसन्नता का। (पूछने पर ऐसे ढंग से बोलती है कि) न 'हाँ' का पता चलता है न 'नहीं' का। क्षण भर में तो वह ठंढी (शांत) पड़ जाती है और क्षण भर में गरम (उग्र) हो उठती है। वह तो अपना रंग ढंग उसी प्रकार बदल रही है जैसे बादलों की छाया (थोड़ी देर तक छाया रहती है फिर हट जाती है, फिर आती है फिर हटती है)।

सूचना—जिस अवस्था का वर्णन किया गया है उससे मान व्यंजित होता है। शब्दों द्वारा साफ साफ नहीं कहा गया है इसलिए प्रच्छन्न है। सखी कृष्ण को किसी बात का उलाहना नहीं दे रही है, इससे जान पड़ता है कि नायिका ने श्रीकृष्ण का अन्य स्त्री से प्रेम किसी से सुना है, अतः लघुमान है।

श्रीराधिकाजू को प्रकाश लघुमान, यथा–(कबित्त)

(२४१) झूठहूँ न रूठियै री ईठ सों इतै कहा ब,
नेक पीठ देत ईठ कौन के भए अली।
कालि केतौ नंदलाल मोसों घालि लालि करै,
कालि ही न आई ग्वारि जो पै तूँ हुती भली।
आजुहीं जु बीच परी बीच पारिबे कौं माई,
आन रंग आन भाँति ज्यों कनेर की कली।
तेरे ही कहे की कोऊ साखि है जु बूझियै री,
देखियै जु आँखि ताकी साखि की कहा चली।११।

शब्दार्थ—ईठ = प्रिय, स्वामी, पति। पीठ देत = विमुख होने पर। मोसों घालि = मुझे बीच में डालकर, मेरे माध्यम से। लालि = मिन्नत, लालसा। बीच पारिबे कौं = भेद डालने को। कनेर = कनैल का फूल। साखि = साक्षी, गवाह।

११—इतै०रतो कहा बनै कुडीठि पीठि देत ईठ कौन के अली। देत—देइ। नन्दलाल०—केसौराइ नन्दलाल लालि करे। जो पै—ये तो। आन भाँति—आनमति, आन रंग। ताकी०—ताकी०—ताहि०, साखि बूंझिबे की।

भावार्थ—(सखी और नायिका के उत्तर प्रत्युत्तर) (सखी-) प्रिय से झूठमूठ भी रूठना नहीं चाहिए और इतना अधिक रूठने की तो कल्पना ही नहीं करनी चाहिए। (नायिका ने) विमुख होने पर भला कौन प्रिय होता है? (सखी) कल नंदलाल ने मुझसे तेरे लिए कितनी ही लालसाएँ कीं। (नायिका-) यदि तू बड़ी भोली थी तो कल ही क्यों नहीं झगड़ा निपटाने आई ? सखी-) अच्छा तो मैं आज ही बीच में पड़ती हूँ। (नायिका-) तब तो तू भेद हीं डालने के लिए बीच में पड़ेगी। श्रीकृष्ण तो कनेर की तरह बाहर और भीतर से भिन्न स्वरूप वाले हैं (कनेर की कली ऊपर लाल और भीतर सफेद होती है, श्रीकृष्ण भी दिखाऊ प्रेम करते हैं भीतर से सौतों को चाहते हैं)। (सखी-) तू जो बात कहती है, क्या उसका कोई साक्षी है जिससे पूछा जा सके ? (नायिका-) जो बात मैंने अपनी आँखों देखी उसके लिए साक्षी की आवश्यकता ही क्या ?

सूचना—नायिका ने स्वयम् अपनी आँखों से श्रीकृष्ण को अन्य स्त्री की ओर निहारते देखा है उसी पर लघुमान किया है। सखी (बहिरंग) तक बात पहुँच चुकी है इसलिए प्रकाश है।

अथ प्रिय को लघुमान-लक्षण—(दोहा)

(३५०) **प्रिय को कह्यो करै नहीं, प्रिया कौनहूँ काज।**
उपजत है लघुमान तहँ, बरनि कहत कबिराज।१२।

शब्दार्थ—कौनहूँ काज = किसी कारण से।

श्रीकृष्णजू को प्रच्छन्न लघुमान, यथा-(सवैया)

(३५१) **आगें कहा करिहौ अबहीं तें इतो दुख दीनो कह्यो बिनु कीनें।**
केसव कौनहु लाज कि लाड़ तें भूलि गई तौ भए हित हीनें।
भेंटे नहीं भरि अंक लला भरि जीभ न बोली जु बोल नवीनें।
देखे नहीं कबहूँ भरि आँखिनि आजुहिं कैसें चलै चित लीनें।१।

शब्दार्थ—कह्यो बिनु कीनें = कहा न करके। कि = अथवा। लाड़ तें = प्यार से। हीने = अभाव, कमी। चलै चित लीनें = (चित चलै लीनें) चित्त चंचल कर लिया, चित्त हटा लिया।

भावार्थ—(सखी की उक्ति नायिका से) आगे क्या करोगी, कहा हुआ

१२—प्रिय-तिय। नहीं-न जहँ। प्रिया-पिया। प्रिया०-प्रिय को नाहीं लाज। बरनि०-बरनत हैं। १३—करिहो-हरिहो। तें-तौ। कि-के, को। भए-भई। भेंटे-भेंटत ही। भरि०-भरि जीव, हँसि जोय। आँखिनि-नैननि। चलै-चलौ।

न करके तो अभी तुमने इतना दुःख दिया। किसी लज्जा के कारण या प्यार के कारण भूल कर गईं जिससे हित की हानि हुई। तुमने लाल को अंक भरकर भेंटा नहीं और भर जीभ नई नई बातें भी नहीं कीं। अभी तो भर आँख उन्हें देखा भी नहीं फिर अपने चित्त को आज ही उनसे क्यों चलायमान कर लिया? (उनकी कही बातें क्यों नहीं करतीं)।

सूचना—सखी नायिका को उलाहना देने आई है इससे नायक का लघुमान व्यक्त होता है। बहिरंग सखी भी जानती है, इसलिए प्रच्छन्न है।

श्रीकृष्णजू को प्रकाशन लघुमान, यथा—(सवैया)

(३५२) **बोलि ज्यों आए त्यों बोलत नाहिनै मोसों कहा कछु चूक तिहारी।**
केसव कैसहूँ देखे सुने बिन जानै कहा कोऊ जी की पिहाँ री।
खीर सिराइ न जानत खाइ, नई यह भूख की भाँति निहारी।
काँचि ही दाखहि चाहत चाख्यो सु अंत तऊ तुम कुंजबिहारी।१४।

शब्दार्थ—चूक = भूल, अपराध। यहाँ = छिपी बात। खीर = दूध को ठंढा करके खाना भी नहीं जानते। भाँति = ढंग। दाख = (द्राक्षा) अंगूर।

भावार्थ—(बहिरंग सखी की उक्ति नायक से) हे कुंजबिहारी, मुझसे क्या आपका कुछ अपराध हो गया है जिससे आप जैसे पहले (प्रेमपूर्वक) बोलते थे वैसे (आज) नहीं बोल रहे हैं? कोई भी किसी प्रकार बिना देखे या सुने किसी के हृदय की छिपी बात कैसे जान सकता है (फिर आपने अकारण मुझसे क्यों मन मोटा कर लिया)। मैंने आपकी भूख का यह नया ढंग देखा कि दूध ठंढा भी नहीं होने पाता और आप खाने (पीने) की धुन लगाए हुए हैं। आप तो कच्चे ही अंगूर चखना चाहते हैं। आखिर कुंजबिहारी ही तो ठहरे (पूरे शाखामृग!)।

सूचना—श्रीकृष्ण के मनोनुकूल नायिका ने आलिंगनादि नहीं किया, इसी से वे रूठे हुए हैं। अतः लघुमान है। बहिरंग सखी तक यह बात पहुँच चुकी है, इसलिए 'प्रकाश' है। सभी समझाती हैं कि नायिका के हृदय में प्रेम पक्का नहीं होने पा रहा है, आप उतावली मचा रहे हैं। 'अंत तऊ तुम कुंज-बिहारी' कहकर विनोद द्वारा मानमोचन भी करना चाहती है।

अथ मध्यममान-लक्षण—(दोहा)

(३५३) **बात कहत पिय और सों, देखै** केसवदास।
उपजत मध्यममान तहँ, मानिनि के सबिलास।१५।

सूचना—(लघुमान वहाँ होता है जहाँ केवल अन्य स्त्री की ओर देखते हुए देख ले पर) मध्यममान वहाँ होता है जहाँ (अन्य स्त्री से) बात करते देख ले।

१४—मोसों-मोतें। तिहारी-निहारी। पिहाँ री-बिहारी, तिहारी। अंत०-आनतहूँ। १५—पिय-तिय। सबिलास-अनायास।

श्रीराधिकाजू को प्रच्छन्न मध्यममान, यथा—(सवैया)

(३५४) कहौ कान्ह कहाँ सिगरी निसि नासी सु तौ तुमहीं कहँ चाहतहीं ?
तनु में तनु रेख लिखी किहि केसव कंटक कानन गाहतहीं।
कछू राती सी आँखि कहा भई ताती तिहारे बियोग के दाहतहीं।
हिय-बंचक-रीति रची जब रंचक लाइ लई उर नाह तहीं।१६।

शब्दार्थ—(नायक और नायिका के प्रश्नोत्तर) (नायिका—) हे कन्हैया, कहिए सारी रात कहाँ बिताई ? (नायक—) तुम्हारी प्रतीक्षा करते हुए तो। (नायिका—) कहिए, आपके शरीर में यह पतली (नख की) रेखा कैसी है ? (कृष्ण—) घूमते-फिरते वन में काँटों की खरोंच लग गई है (नायिका—) अच्छा यह तो बताइए आपकी आँखें कुछ लाल क्यों हैं ? (नायक—) तुम्हारी वियोगाग्नि में जलने से गरम होकर ये लाल हो गई हैं।

इस प्रकार कहने पर जब नायिका ने उनकी बातों पर अविश्वास व्यक्त करते हुए विचित्र मुद्रा से कुछ हृदय लुभाने का सा ढंग दिखाया, तब नायक ने उसे हृदय से लगा लिया।

सूचना—अन्य स्त्री से बातें करते देख लेने से नायिका ने मान किया, इसलिए मध्यममान है। नायक-नायिका तक ही बात है इससे प्रच्छन्न। चौथे चरण में मानमोचन हो जाने का आभास मिलता है इसलिए सरदार ने उसका अर्थ इस प्रकार किया है—(नायक) तुमने भी हृदय को धोखा देनेवाली रीति पकड़ी है। (नायिका) आप केवल बात करके क्यों रह गए जरा वहीं पर उसे गले क्यों नहीं लगा लिया।

श्रीराधिकाजू को प्रकाश मध्यममान, यथा—(सवैया)

(३५५) सखि ज्यों उनको तू बकावति मोहूँ कों आई बकावन ह्वै गरई।
अब याही तें तोसहुँ बात कछू कहिबे कों हुती न कही परई।
कहि केसव आपनी जाँघ उघारिकै आपही लाजनि को मरई।
इक तौ सब तें हरए हरि हैं अब होहुँ कहा हरि तें हरई।१७।

शब्दार्थ—गरई = हठीली, ढीठ। हरए = हलके, शरारती, नटखट, निर्लज्ज, दुष्ट। हरई = हलकी, निर्लज्ज।

भावार्थ—(नायिका ने जिस स्त्री से नायक को बातचीत करते देखा है, वही मानमोचन के लिए आई है, नायिका उसी से कह रही है) जिस

१६—नासी–नारी, नाखी। तनु–नख। किहि–कहि। तिहारे–कि तेरे।
१७—सखि ज्यों–ज्यों। तू–त्यों। कों–जू, सों। तोसहु–तो सों है। परई–थरई। कै–ब। आपही–आपुन। अब०–अरु होहू ब होऊँ कहा हरई।

प्रकार तू उन्हें बकबक करने के लिए प्रेरित करती है क्या ढीठ होकर मुझे भी बकबक कराने आई है (जैसे उनका सिर खपाती है वैसे मेरा भी खपाने आई है)। इसी से जो कुछ बात तुझसे कहने को भी थी वह भी मुझसे कही नहीं जाती (कौन तुझसे माथा मारे)। कौन अपनी जाँघ उघारकर स्वयम् ही लज्जा से मरे (तुझसे अपना ही भेद खोलकर मैं क्यों पछताऊँ) । एक तो श्रीकृष्ण और सब लोगों से बढ़कर निर्लज्ज हैं, क्या मैं अब उनसे भी बढ़कर निर्लज्ज हो जाऊँ ?

सूचना—नायिका ने बात करते सुना है अतः मध्यममन। जिससे बात हुई है उसी से बातें हो रही हैं, अतः 'प्रकाश' है।

अलंकार—लोकोक्ति।

अथ प्रिय को मध्यममान-लक्षण—(दोहा)

(३५६) जहाँ न मानै मानिनी, हारै पिय जु मनाइ।
उपजत मध्यम मान तहँ, प्रीतम के उर आइ।१८।

शब्दार्थ—मनाइ हारै = मनाते मनाते थक जाय।

श्रीकृष्णजू को प्रच्छन्न मध्यममान, यथा—(कबित्त)

(३५७) बार बार बरजी मैं सारस सरस मुखी,
आरसी लै देखि मुख आरस में बोरिहै।
सोभा के निहोरे तें निहारति न नेंकहूँ तूँ,
हारी हैं निहोरि सब कहा काहू खोरि है।
सुख को निहोरो जु न मान्यो सो भली करी तैं;
केसौदास की सौं तोहि जौ तूँ मुँह मोरिहै।
नाह के निहोरें किन मानहि निहोरति हौं,
नेह के निहोरें फिर मोहीं जु निहोरिहै।१९।

शब्दार्थ—बरजी=मना किया। सारस = कमल। सरस = रसीला, रसमय। आरसी = दर्पण। आरस में बोरिहै=आलस्य में डुबो देगी, मलिन कर देगी। निहोरे = कारण, बहाने। खोरि = दोष, अपराध, त्रुटि। सौं = सौगंध, शपथ। मुख मोरिहै = विमुख या प्रतिकूल होगी। किन = क्यों नहीं। निहोरति हौं = मनाती हूँ। निहोरें = विवश करने पर।

भावार्थ—(सखी ने मान करते समय नायिका को समझाया था कि मान मत कर तुझे पीछे पछताना पड़ेगा। पर उसने मान किया, नायक के

१८—पिय जु–पीउ। १९—आरस–या रस। तें–तौ, त्यों। जु–जो। **तैं–न, ब। केसौदास–केसोराय। ताहि–अब। मुहँ–मुख, मन। किन–किहि। मानहि–मानति। मोही–मोहू। जु–तू।**

मनाने पर भी मान नहीं छोड़ा। जब प्रिय भी उसके न मानने पर मान कर बैठा तब नायिका नायक को मना लाने के लिए उसी अंतरंग सखी को भेजने लगी। उस समय सखी ने नायिका से कहा कि मैंने पहले ही कहा था कि तुझे ऐसा करना पड़ेगा। सखी नायिका से ही कह रही है कि मैंने पहले तुझसे ऐसा कहा था न !) हे कमल से सरस मुखवाली, मैंने बारंबार मना किया था कि मान मत कर, दर्पण लेकर अपना मुख देख ले, तेरा ऐसा सुंदर मुख मुरझा जायगा। शोभा के निहोरे से भी तू ठीक ठीक देखती नहीं है। (अर्थात् जब यह कहा जाता है कि ऐसा सुंदर मुख क्रोध से लाल पीला करने योग्य नहीं है तब भी तू भौंहें सीधी नहीं करती है)। सब सखियाँ मनाकर हार गईं, अब किसी का क्या दोष है। सुख का भी निहोरा तुझे दिया गया था कि मान करने से तुझे सुख न रह जायगा पर उसे भी तूने नहीं माना। यह तूने अच्छा ही किया। क्योंकि मैं जानती थी कि यदि तू सुख से भी मुख मोड़ लेगी तो मुझसे कभी न कभी नायक को मनाने का आग्रह करना ही पड़ेगा। (मैंने कहा न था कि) मैं प्रार्थना करती हूँ प्रिय के मनाने पर मान जा नहीं तो प्रेम के विवश करने पर तू मुझे ही निहोरेगी (नायक को मना लाने का आग्रह करेगी)।

सूचना—(१) श्रीकृष्ण मनाकर हार गए हैं, इसलिए मध्यममान है। अंतरंग सखी ही जानती है इसलिए प्रच्छन्न है। (२) यह छंद 'कविप्रिया' में 'मान विरह' के उदाहरण में दिया गया है (कविप्रिया, ८/४०)

श्रीकृष्णजू को प्रकाश मध्यममान, यथा—(सवैया)

(३५८) मानहि मान तें मानिनि केसव मानस तें कछु मान टरैगो।
मान रहै सु जु मानै नहीं परिमान नखें अभिमान भरैगो।
ह्वैहै सहेली समान तबै जब सौतिन में अपमान करैगो।
आपु मनावत मानहि री, बहुर्‌यो जु मनावन तोहि परैगो।२०।

शब्दार्थ—मानस=मनुष्य। परिमान नखें=सीमा का उल्लंघन करने पर।

भावार्थ—(बहिरंग सखी की उक्ति नायिका से) हे सखी, मानवती नायिका आदर करने से मानती है (यदि ऐसा नहीं है तो) क्या किसी मनुष्य के हटाने से कहीं मान हट सकता है ? जो मनाने पर मानता नहीं उसके हाथ मान ही मान रह जाता है। सीमा के पार जाने पर तो स्वयम् नायक भी अभिमान (आत्मसंमान) से भर उठता है (वह भी चिढ़ जाता है)। फिर जब वह सौतों में (तुम्हारा) अनादर करने लगेगा तो सखी के ही समान रह जाओगी। (मैंने पहले ही कहा था कि) स्वयम् प्रिय मना रहा है मान जाओ, नहीं तो उलटे तुम्हीं को मनाना पड़ेगा।

२०—टरैगो-हरैगो। रहै-है री। मानै-मानौ। ह्वैहै-ह्वैहौ।

सूचना—यहाँ भी प्रकरण पिछले छंद की ही भाँति है। सखी बहिरंग है अतः 'प्रकाश' मान है।

(दोहा)

(३५६) **राधा राधा-रवन के, बरने मान समान।**
तिनको मान मनाइबो, कहियत सुनौ सुजान।२१।

इति श्रीमन्महाराजकुमारइंद्रजीतविरचितायां रसिकप्रियायां विप्रलंभश्रृंगार मानवर्णनं नाम नवमः प्रभावः। ९।

दशम प्रभाव

अथ मानमोचन-लक्षण—(दोहा)

(३६०) **मान तजहिं प्रीतम प्रिया, कहि** केसव **करि प्रीति।**
बरनि सुनाऊँ सुनहु सब, मैं जु सुनी षट रीति।१।

भावार्थ—नायक और नायिका प्रेमपूर्वक मिलकर मान त्याग देते हैं। इसके छह प्रकार हैं।

(३६१) **साम दान भनि भेद पुनि, प्रनति उपेच्छा मानि।**
पुनि प्रसंगबिध्वंस अरु, दंड होइ रस-हानि।२।

भावार्थ—वे छह प्रकार ये हैं—साम, दान, भेद, प्रणति, उपेक्षा और प्रसंगविध्वंस। दंड में रस नहीं रह जाता इसलिए वह वर्जित है।

अथ साम-लक्षण—(दोहा)

(३६२) **ज्यों क्योंहूँ मन मोहियै, छूटि जाइ जहँ मान।**
सोई साम उपाय कहि, केसवदास **बखान।३।**

शब्दार्थ—ज्यों० = जिस किसी प्रकार से।

श्रीराधिकाजू को साम उपाय, यथा—(सवैया)

(३६३) केसवदास **सदा किये आस रहै सुख की दुख ताहि न दीजै।**
ताहू सों रोष न मानियै मानिनि भूलिहुँ आपनो मानि सु लीजै।
हौं तुमहीं तुम हौं सुनि सुंदरि मूरति द्वै जिय एकहीं जीजै।
मान है भेद को मूल महा अपने सहुँ सो सपनेहुँ न कीजै।४।

२१—बरने मान समान–कहे जथामति मान। सुनौ–सुनहु।

१–तजहिं–तजैं। सुनहु०–सो सबै। २–दान०–दाम अरु। पुनि–अरु, और। अरु–पुनि। होइ–होहि। ३—क्योंहूँ–त्यों करि। छूटि–भूलि। कहि–कबि। ४—ताहू–केहूँ। भूलिहुँ–भुलि सु। सु–जु। हौं तुमहीं०–वै तुम ही तुम वै। अपने०–अपनेहुँ न सों। सपनेहुँ न–सपने नहिं।

शब्दार्थ—हौं = मैं। हौं तुमहीं तुम हौं = मैं तुम हूँ और तुम मैं। अपने सहुँ = अपनों से।

भावार्थ—(नायक की उक्ति नायिका से) जो किसी से सदा सुख की आशा किए रहे उसे दुख नहीं देना चाहिए। जिसे भूल से भी अपना मान लिया गया हो उस पर भी रोष नहीं करना चाहिए। मैं तुम हूँ और तुम मैं हो (दोनों में कोई भेद नहीं है) हे सुंदरी, मूर्तियाँ (शरीर) दो हैं पर (हम दोनों में) प्राण एक ही है, जिससे जी रहे हैं। (इस प्रकार अभेद होने पर मान ठीक नहीं, क्योंकि) मान भेद की जड़ है, इसलिए अपनों से (जिनसे एकत्व की भावना है) स्वप्न में भी मान नहीं करना चाहिए।

सूचना—नायक ज्ञान और व्यवहार की बातों से समझा रहा है। अतः मानमोचन का यह साम उपाय है।

अलंकार—काव्यलिंग (एकत्व की युक्ति द्वारा समर्थन करने से)।

श्रीकृष्णजू को साम उपाय, यथा—(सवैया)

(३६४) कहि आवति है जौ कहावत हौ तुम, नाहीं तौ ताकि सकै हम सौंहीं।
तिहिं पैंड़ें कहा चलियै कबहूँ जिहिं काँटो लगै पग पोर दुकौंहीं।
प्रीति कुम्हैड़े की जैहै जई सम, होति तुम्हैं अँगुरी पसरौंहीं।
कीजै कछू यह जानिकै केसव हौं तुमहीं तुम तौ हरि हौंहीं।५।

शब्दार्थ—सौंहीं = सामने। पैंड़ें = मार्ग पर। दुकौंहीं = दुख देनेवाली। कुम्हैड़े की जई = कुम्हड़े की बतिया। सम = तरह, भाँति। पसरौंहीं = पसारने, दिखलाने से।

भावार्थ—(नायिका की उक्ति नायक से) हे हरि, आप कहलाते हैं इसीलिए लोगों को कहना पड़ता है, नहीं तो किसकी मजाल है कि हम लोगों की ओर ताक भी सके। मेरे विचार से क्या कभी ऐसे मार्ग से चलना चाहिए जिसमें एक तो पैर में काँटा गड़े और दूसरे पैरों को पीड़ा का भी दुख झेलना पड़े। लोग जब तुम्हारी ओर उँगली उठाने लगेंगे (तुम्हारी बदनामी करने लगेंगे) तब तो प्रीति की वैसी ही दशा हो जायगी जैसी कुम्हड़े की बतिया को उँगली दिखाने से होती है (प्रेम नष्ट हो जायगा)। इसलिए आपको समझ बूझकर कोई काम करना चाहिए। मैं आप ही हूँ और आप मैं ही हैं (मुझमें और आपमें अभेद है)।

सूचना—सरदार ने 'छूटि जाइ मान' का ध्यान रखकर ऊपर के दोनों छंदों के चतुर्थ चरणों के उत्तरांश को मान करनेवाले की उक्ति माना है।

५—जौ–जु। दुकौंहीं–दुखौंहीं, पिरोहीं। जैहै–ह्वैहै, जैसे। सम–हरि।

अथ दान उपाय-लक्षण—(दोहा)

(३६५) केसव कौनहुँ ब्याज-मिस, दै जु छुटावै मान।
बचन-रचन मोहै मनहिं, तासों कहियै दान।६।

शब्दार्थ—ब्याज = बहाने से। मिस = बहाना। बचन-रचन = वचनों की रचना से, मीठी बातों से। 'ब्याज-मिस' 'सदासर्वदा' की भाँति द्विरुक्ति है।

(३६६) जहाँ लोभ तें दान लै, छाँड़ै मानिनि मान।
बारबधू के लच्छनहिं, पावै तबहि प्रमान।७।

सूचना—पहले दोहे में कहा गया है कि जहाँ किसी बहाने से कुछ देकर मान छुड़ाया जाय और मीठी बातों से मन मोहा जाय वहाँ दान उपाय होता है। गणिका भी द्रव्य लेती है। इससे दान का उपाय गणिका में ही संभव जान पड़ता है। अतः दोनो का अंतर स्पष्ट करने के लिए दूसरा दोहा लिखा गया है। जहाँ मानिनी के हृदय में लोभ हो वहाँ गणिका और जहाँ उसके हृदय में द्रव्य-लोभ न हो वहाँ (दान उपाय में) गणिका नहीं समझनी चाहिए। गणिका में द्रव्य का लोभ होता है। दान उपाय में धन ही नहीं अन्य वस्तुएँ भी दी जाती हैं।

श्रीराधिकाजू को दान उपाय, यथा—(कबित्त)

(३६७) कोमल अमल दल दीने हे कमल-भव,
अरुन अरुन प्रभुजू कौं सुखदाइयै।
केसौदास सोभाधर सधर सुधा के धर,
मधुर अधर उपमा तौ इनि पाइयै।
उरज-मलय-सैल-सील सम सुनि देखि,
अलक-बलित-ब्याल आसा उरझाइयै।
निपट निगंध यह हार बंधुजीव को सु,
चाइत सुगंध भयो नेक ग्रीव नाइयै।८।

शब्दार्थ—दल = पत्र। कमल-भव = ब्रह्मा। अरुन = (अरुण) लाल। अरुन प्रभु = सूर्य भगवान्। सधर = ऊपर का ओठ। अधर = नीचे का ओठ। सैल = (शैल) पर्वत। बलित = युक्त। ब्याल = सर्प। बंधुजीव = फूल-दुपहरिया। नेक = थोड़ा। ग्रीव = कंठ में।

भावार्थ—(नायिका ने मान किया है, नायक ने सखी के द्वारा फूल-दुपहरिया की माला भेजी है, सखी नायिका से कह रही है) हे सखी, इसकी पंखुड़ियाँ ब्रह्मा ने कोमल और स्वच्छ बनाई हैं। इसका रंग लाल है और यह

६—मिस-कछु। छुटावै-छुड़ावै। मनहिं-मनै। तासों-ताकों। कहियै-कहियत। ७—लै-तें। तबहिं-तहाँ। ८—दीने-दीन्हें, कीन्हें। सधर०-अधर, सुधर। धर-घर। उरझाइयै-उर लाइए, उर आइए, उर धाइय।

सूर्य भगवान् को परम प्रिय है। शोभा को धारण करनेवाले सधर और अमृत को धारण करनेवाले मधुर अधर की समता भी इसी से दी जाती है। पर इसमें सुगंध नहीं है, अतः तेरे सर्प रूपी केशों से आच्छादित कुच रूपी मलयगिरि को देख सुनकर इसका हृदय (सुगंधित हो जाने की) आशा में उलझ जाता है। अतः यह बंधुजीव का निर्गंध हार सुगंधित होना चाहता है, जरा इसे अपनी गर्दन में डाल तो लो।

अलंकार—रूपक।

अन्यच्च, यथा—(सवैया)

(३६८) मत्तगयंदनि साथ सदा इनि थावर जंगम जंतु बिदार्‌यो।
ता दिन तें कहि केसव बंधन बेधन कै बहुधा बिधि मार्‌यो।
सो अपराध सुधारन सोधि यहै इनि साधन साधु बिचार्‌यो।
पावन-पुंज तिहारो हियो यह चाहत है अब हार बिहार्‌यो।९।

शब्दार्थ—मत्तगयंदनि = मतवाले हाथियों के। इनि = इस (गजमुक्ताहार ने)। थावर = स्थावर, अचर। जंगम = चर। जंतु = जीव। बंधन कै = बंधन में डालकर, गुहकर, पिरोकर। बेधन कै = बेधों (छेदों) से। बहुधा = अनेक प्रकार से। बिधि = ब्रह्मा। सुधारन = शुद्धि के लिए। सोध = (शोध) परिष्कार। साधन = उपाय। साधु = ठीक, अच्छा।

भावार्थ—(मानवती नायिका के पास नायक ने गजमुक्ताओं की माला भेजी है, सखी उससे कह रही है) इसने (अर्थात् इस हार के मोतियों ने) मतवाले हाथियों (के मस्तक) के साथ रहकर सदा (पहले बराबर) चर और अचर जीवों का नाश किया। उस दोष के कारण ब्रह्मा ने इसे बिंधवाकर और बँधवाकर (छेद करवाकर और पिरोकर) अनेक प्रकार के कष्ट दिए। उस दोष की शांति के लिए इसने अब यही उचित उपाय विचारा है कि तेरे हृदय में, जो पवित्रता का आगार है, यह विहार करे (जिससे इसके पाप का नाश हो जाय—तू इस माला को गले में पहन ले)।

सूचना—स्तनों की उपमा शंभु से दी जाती है, सखी का लक्ष्य 'पावन-पुंज हियो' से उसी ओर है।

श्रीकृष्णजू को दान उपाय, यथा—(कबित्त)

(३६९) हँसति हँसति आई आनि इक गाथा गाई,
कहहु कन्हाई याको भाउ समझाइकै।
पीवें क्यों अधर-मधु दंपति एक ही बार,
रदन करज थल दीजहि बताइकै।

९—**सोध०—काज यहै सब साधन मंत्र बिचारे। हियो—हिये।**

यह परिरंभन कहावै कौन केसौदास,
मेरी सौं जौ मोसों तुम राखहु दुराइकै।
राधिका की अधिकाई कहा कहौं लीनो आजु,
आपनो पियारो पीउ आपुहीं मनाइकै।१०।

शब्दार्थ—गाथा = प्राकृत भाषा का मात्रिक छंद। भाउ = भाव, तात्पर्य। रदन थल = दंताघात का स्थान। करज = नख। करज थल = नखक्षत का स्थान। परिरंभन = आलिंगन। अधिकाई = विशेषता।

भावार्थ—(सखी की उक्ति सखी से) श्रीकृष्ण के मान करने की बात सुनकर राधिका हँसती हँसती आईं और आकर श्रीकृष्ण को एक गाथा सुनाई। सुनाकर उन्होंने पूछा कि 'इसका तात्पर्य तो मुझको समझा दीजिए। (इसमें दंपति के एक साथ ही अधरपान की जो बात कही गई है वह) कैसे संभव है कि प्रिय और प्रेमिका परस्पर एक दूसरे का अधर-मधु-पान करें (दंत एवम् नखक्षत की बात जो कही गई है वह) दंतक्षत एवम् नखक्षत करने का स्थान कौन सा है? इस प्रकार (स्वयम् आलिंगन करती हुई) आलिंगन करने की बात जो इसमें कही गई है वह कौन सा आलिंगन कहलाता है? तुम्हें मेरी शपथ अगर मुझसे कोई बात छिपा रखो।' राधिका की विशेषता तो देख, उसने स्वयम् ही आज अपने प्यारे पति को मना लिया (हम लोगों की आवश्यकता ही न पड़ी)।

सूचना—'यह परिरंभन कहावै कौन' कहती हुई नायिका ने आलिंगन-दान किया है। यही दान उपाय है।

अलंकार—पर्यायोक्ति (छल से कार्यसिद्धि)।

अथ भेद-लक्षण—(दोहा)

(३७०) सुख दैकै सब सखिनि कहँ, आपु लेइ अपनाइ।
तब सु छुड़ावै मान कों, बरनौं भेद बनाइ।११।

भावार्थ—जहाँ सखियों को अपनी ओर मिला लिया जाय और वे ही मान छुड़ाएँ, वहाँ भेद उपाय होता है।

श्रीराधिकाजू को भेद उपाय, यथा—(सवैया)

(३७१) केसव धाइ खवासिनि तोहि सखी सकुचैं सब आपनी घातैं।
मोहिं तौ माई कहेहीं बनै अब बाँधि दई बिधि तो कहँ तातैं।
नेक हरें हरें बोलि बलाइ ल्यों हौं डरपौं म्राड़ि जाइ न जातैं।
माखन सो मेरे मोहन को मन काठ सी तेरी कठेठी ये बातैं।१२।

१०—गाथा-गाहा। कहहु-कहौ धौं। एक हीं-सु एकै। रदन०-उरज करज। दीजहि-दीजै जू। केसौदास-केसौराय। राखहु-राखि हौ। ११—सु छुड़ावै०-जु मनावै मानिनिहिं। छुड़ावै-छिड़ावै। बनाइ-सुनाइ। १२—तो-तौ। जातैं-यातैं।

शब्दार्थ—धाइ = धात्री। खवासिनि = दहेज में वधू के साथ आनेवाली लौंड़ी। आपनी घातैं = अपने स्वार्थ से। माई = हे सखी। तातैं = इस कारण। नेक = जरा। हरें हरें बोलि = धीरे से बोलो। बलाइ ल्यौं = बलैया लेती हूँ। डरपौं = डरती हूँ। जातैं = जिससे, इससे। माखन सो = मक्खन की भाँति (मृदु)। कठेठी = कठोर।

भावार्थ—(नायक ने सखी को अपनी ओर मिला लिया है, वह नायिका से कह रही है) हे सखी, धाय और दासी सब अपनी गौं से तुझे सकुचती हैं। पर मुझे तो कहना ही पड़ता है (कहाँ तक संकोच करूँ)। ब्रह्मा ने मुझे तेरे साथ बाँध दिया है, इसीलिए (नहीं तो मुझे क्या पड़ी थी)। मैं तेरी बलैया लेती हूँ, थोड़ा धीरे धीरे बोल, मुझे डर लगता है कि मेरे मोहन का मन मक्खन की तरह मृदु है और तेरी बातें काठ की तरह कठोर हैं—कहीं ये उसमें गड़ न जाएँ।

अलंकार—धर्मलुप्तोपमा (माखन सो मेरे मोहन को मन), पूर्णोपमा (काठ सी तेरी कठेठी बातें), विषम (कहाँ मृदु मन कहाँ काठ सी बातें)।

श्रीकृष्णजू को भेद उपाय, यथा—(सवैया)

(३७२) काहूँ कह्यो 'हरि रूठि रहे' तब तें बहु बुद्धि बितर्क बढ़ावै।
सोधि सबै अपनो सो रही धन मीत रहैं सु उपाय न पावै।
ह्वाँ वह रीति इहाँ यह केसव **ज्यों दुहुँ ओर जरे कों जरावै।**
बूझति हौं पिय प्यारी तिहारी सु मान करै कि मनावन आवै।१३।

शब्दार्थ—सोधि रही = विचार करके थक गई। मीत = (मित्र) प्रिय।

भावार्थ—(नायिका ने सखी को अपनी ओर मिला लिया है। वह नायक से कह रही है) किसी ने कहीं कह दिया कि श्रीकृष्ण रूठे हुए हैं। जब से ऐसा सुना तभी से वह अपनी बुद्धि में अनेक प्रकार के तर्क-वितर्क कर रही हैं। अपनी वाली सब कुछ कर धरकर वह थक गई। 'धन भी रहे और मित्र भी न जाय' ऐसा कोई उपाय उसे दिखाई नहीं देता। वह तो यहाँ दशा है और यहाँ यह कि आप मान किए बैठे हैं आप भी उसे कष्ट दे रहे हैं (औरों ने वह कथा सुनाकर कष्ट दिया)। उस बेचारी की तो वही दशा है कि दोनो ओर से जल रही है (उसे इस स्थिति से निकालनेवाला कौन है)। इससे मैं आप ही से पूछती हूँ कि वह ऐसी हालत में स्वयम् मान करे या आप को मनाने के लिए यहाँ दौड़ी आए ?

अलंकार—लोकोक्ति।

१३—बहु-यह। रहै-मिलै। सु-सो। ज्यों-जौ। कों-को। जरावै-जुड़ावै। बूझति-पूछति।

अथ प्रणति-लक्षण—(दोहा)

(३७३) अति हित तें अति काम तें, अति अपराधहिं जानि।
पाइ परै प्रीतम प्रिया, ताकों प्रनति बखानि ।१४।

भावार्थ—अत्यंत प्रेम, अत्यंत काम-वासना अथवा अत्यंत अपराध के कारण जहाँ प्रिय प्रिया के पैरों पड़े वहाँ प्रणति से मानमोचन होता है।

श्रीराधिकाजू की प्रेम तें प्रणति, यथा-(सवैया)

(३७४) तैं चितयो जु न सूधे तऊ जऊ प्रेम कके पिय पाउ गह्यो हो।
मोहिं बिलोकि बिलोकि अलीन, अलीक अलीक प्रवाह बह्यो हो।
बूझति हौं सखी सीस दियें तिनु और सबै हिय हेतु रह्यो हो।
कान्हहि आएँ मनावन तोसों में मान किधौं अपमान कह्यो हो।१५

शब्दार्थ—सूधे = सीधे। तऊ = तदपि, तो भी। जऊ = यद्यपि। बिलोकि = देखो। अलीन = सखियों को। अलीक=कलंक, बदनामी। बूझति हौं = मैं पूछती हूँ। सीस दियें तिनु = (मुहावरा) सिर पर तिनका धरकर, नम्रता-पूर्वक, अत्यंत दीनता से।

भावार्थ—(सखी की उक्ति नायिका प्रति) हे सखी, विचार तो! तूने यद्यपि सीधे नहीं देखा, फिर भी नायक ने अत्यंत प्रेम दिखा दिखाकर तेरे पैर पकड़े। और नहीं तो मेरा मुँह देख और इन सखियों को (इनका ही मुँह) देख (और मान करना छोड़ दे)। बदनामी का कैसा झूठा प्रवाह फैला हुआ है। मैं सिर पर तिनका धरकर (अपनी सत्यता और दीनता का प्रमाण देकर) तुझसे पूछती हूँ। हृदय के प्रेम की बातें तो तू जाने दे (और बातों की कोई गिनती नहीं) पर यह तो बतला कि स्वयम् (उलटे) कृष्ण ही तुझे मनाने आए हैं इसमें मान माना जाए या अपमान ?

श्रीराधिकाजू की अति काम तें प्रणति, यथा-(सवैया)

(३७५) बोलति नाहिं बुलाएँहुँ बोल कहा लगी मोहिं बकाएहीं मारन।
सो पर्‌यो पाइनि बूझि सखी सब देति हैं ज्यौं जुवती जिहिं कारन।
हठु छाँडिके कंठ लगाइ उठाइ कहा लगी ऐंठि अकास निहारन।
कौन भए नहिं द्वै दिन ए दिन तू ही लगी कछु ऊलट पारन।१६।

१४—अपराधहिं—पराध तें। १५—चितयो—चितई। जु न—नहिं। तऊ०—जऊ तऊ। प्रेम—प्रीति। जऊ०—तजि प्रेम को प्रीतम। हो—हैं। बूझति—पूछति। कान्हहि—कान्ह जु। १६—बोलति०—न बोलति आप। बकाएहीं—बकाइयें। ऐंठि—बैठि, भेदि। कौने०—कानों भए नट द्वै दिन ये तिन तें ही लगी कछु, कौनौ भए नटि द्वै दिन यै तिन तें ही लगी, कौनु भयो दिन द्वै पै तुही कछु लागी है।

शब्दार्थ—बूझि = समझ, विचार । ज्यौ–जी, प्राण । ऐंठि = अकड़कर । ऊलट पारना=उलटी (बातें) करना ।

भावार्थ—(सखी की उक्ति नायिका से) यदि तू स्वयम् नहीं बोलती है तो बुलाने से तो बोल । क्या मुझे यों बका-बकाकर मार डालने पर लगी है ? अच्छा, तू हीं विचार कि तेरा ऐसा नायक तेरे पैरों पड़ा जिसके लिए सब युवती अपने प्राण देती हैं । हठ छोड़ दे और उठकर उन्हें गले लगा ले, तू अकड़-कर आकाश क्या देखने लगी ? किसे ये दिन दूने नहीं लग रहे हैं—एक दिन दो दिनों के समान हो गया है, तू कैसी उलटी बातें करने लगी है ।

सूचना—युवतियों के जी देने की बात कहने से लक्षित होता है कि काम-प्रेरित प्रणति है ।

श्रीराधिकाजू की अति अपराध में प्रणति, यथा—(सवैया)

(३७६) केसवदास **उदास भई दरसाइ दसा-दुख द्यौस भर्यो री ।**
राति भए अधिरातकहू लौं बिनै बहु बंधुबधूनि कर्यो री ।
धाइ रही समुझाइ कछू न सखीनिहूँ के सिखए तें सर्यो री ।
काहे तें मान्यौ न मानिनि तौलगि जौलगि पाइ न पीउ पर्यो री ।१७।

शब्दार्थ—भर्यो = बिताया । सर्यो री = कुछ भी कार्य न सधा ।

भावार्थ—(रातभर सब लोग मनाते रहे पर नायिका ने मान न छोड़ा, पर जब प्रिय ने पैर पकड़े तब उसने मान छोड़ दिया । सखी नायिका से व्यंग्य कर रही है कि क्यों ऐसी क्या बात थी कि प्रिय के पैर पकड़ने पर ही तूने मान छोड़ा) हे सखी, तू अत्यंत उदास हो गई और दुख की दशा दिखलाकर (दुखी होकर किसी प्रकार) तूने दिन बिताया । जब रात हुई तो आधी रात तक देवरानी जिठानियों ने अनेक विनय की, फिर भी मान न छूटा । धाय भी समझा बुझाकर थक गई, सखियों के सिखाने का भी कोई फल न हुआ । ऐ मानिनी, तब तक तूने मान क्यों नहीं छोड़ा जब तक प्रियतम पैरों नहीं पड़ा ?

सूचना—'प्रियतम के पैर पकड़ने पर मान जाना तथा और किसी के मनाने से न मानना' यह बतलाता हैं कि नायक ने अपराध किया था ।

(दोहा)

(३७७) **पियहि मनावै पाइ परि, प्रिया परम हित मानि ।**
नापराध नहिं काम तें, बरनत ही रस-हानि ।१८।

भावार्थ—नायक के पैरों पड़ने में और नायिका के मान जाने में शुद्ध प्रेम कहीं नहीं दिखाना चाहिए । उसमें अपराध अथवा काम की प्रेरणा होनी

१७—अधिरातकहू लौं–अधिरातक लौं सु । सिखए तें–सिखए न । पीउ–नाह । १८—नापराध–त्यों अपराधन, अति अपराधन, ना अपराधन ।

चाहिए। नहीं तो रस-हानि होगी, ऐसा वर्णन रसात्मक न माना जाएगा।

श्रीकृष्ण की प्रणति अति हित तें यथा—(सवैया)

(३७८) नीरहिं तौ बिन मीन सरै, अरु मीन तौ नीरहिं के जिय जीजै।
जा बिन और सुहाइ न केसव ताहि सुहाइ सु तौ सब कीजै।
जा लगि मो पग लागत हे सु लगी पग अंक लगाइ न लीजै।
हौं सिखऊँ अपनें सपनेंहूँ तौ आवत लच्छि किवार न दीजै।१९।

शब्दार्थ—सरै=काम चल जाता है। अरु=और (फिर भी)। नीरहिं के जिय जीजै=जल के भरोसे ही जीता है। लच्छि=लक्ष्मी।

भावार्थ—(सखी की उक्ति नायक प्रति) सुनिए, चाहे बिना मछली के जल का काम निकल जाय पर मछली तो बिना जल के जी ही नहीं सकती (आपका काम चाहे नायिका के बिना भी चल जाए पर उस बेचारी का काम तो आपके बिना चल ही नहीं सकता, वह जी नहीं सकती)। दूसरी बात यह कि जिसके बिना कोई बात अच्छी नहीं लगती, उस (व्यक्ति) को जो अच्छा लगे वह करना ही पड़ता है (आपको पहले बिना नायिका के चैन नहीं पड़ता था अब उसके मन वाली क्यों नहीं करते ?)। पहले जिससे मिला देने के लिए आप मेरे पैरों पड़ा करते थे (मुझसे बिनती करते थे) वही आपके पैरों पर आज पड़ी है उसे गले क्यों नहीं लगा लेते ? भला कोई स्वप्न में भी आती लक्ष्मी के लिए किवाड़ लगाता है ? इससे मैं जो सिखा रही हूँ उसे मान लीजिए।

अलंकार—दृष्टांत और लोकोक्ति।

अथ उपेक्षा-लक्षण—(दोहा)

(३७९) मान-मुचावन बात तजि, कहिये और प्रसंग।
छूटि जात जहँ मान सो, कहत उपेक्षा अंग।२०।

श्रीराधिकाजू की उपेक्षा, यथा—(कवित्त)

(३८०) चपला न चमकति चमक हथ्यारन की,
बोलत न मोर बंदी सयन-समाज के।
जहाँ तहाँ गाजत न बाजत दमामे दीह,
देत न दिखाई दिनमनि लीने लाज के।
चलि चलि चंदमुखी साँवरे सखा पै बेगि,
सोषक जु केसौदास अरि-सुख-साज के।
चढ़ि चढ़ि पवन-तुरंगनि गगन घन,
चाहत फिरत चंद जोधा तमराज के।२१।

१९—अरु-बरु। तौ-सो। हे-हो। २०—कहियें-कहिजै। जात-जाइ। जहँ-जिहि। सो-तहँ। २१—दीह-दीए। जु-जे।

शब्दार्थ—चपला = बिजली। सयन = (सैन्य) सेना। दमामे=नगाड़े। दीह=दीर्घ, बड़े। दिनमनि = सूर्य। लाज के लीने = लाज को लिए हुए, मारे लज्जा के। साँवरे = श्रीकृष्ण। तमराज = अंधकार रूपी नृपति।

भावार्थ—(सखी उक्ति नायिका प्रति—वर्षा के समय नायिका ने मान किया है सखी विषयांतर करके नायिका का मानमोचन करना चाहती है) यह बिजली नहीं चमक रही है, हथियारों की चमक है। ये मोर नहीं बोल रहे हैं, सेना के वंदी हैं (जो वीरों की प्रशस्ति पढ़ रहे हैं)। जहाँ तहाँ बादल नहीं गरज रहे हैं, बड़े बड़े नगाड़े बज रहे हैं। इसके आतंक से भय के कारण लज्जित होकर सूर्य ने अपना मुँह छिपा लिया है (वह बादलों के आवरण से प्रकृत्या ढका नहीं है, सेना से भयभीत होकर छिप गया है)। इसलिए हे चंद्र-मुखी, श्याम-सखा के पास तू शीघ्र ही चल क्योंकि वे शत्रु के सुखों के शोषक हैं (शत्रु को नष्ट करनेवाले हैं)। ये बादल आकाश में नहीं घूम रहे हैं, महाराज अंधकार के ये वीर हैं जो वायु रूपी घोड़ों पर चढ़कर चंद्रमा को ढूँढ़ते फिर रहे हैं (तू चंद्रमुखी है कहीं तेरे ही ऊपर आक्रमण न कर बैठें)।

अलंकार—अपह्नुति और रूपक का संकर।

श्रीकृष्णजू की उपेक्षा, यथा—(कबित्त)

(३८१) केसौदास **दिनराति केतकी की भावै भाँति,**
जिय में बसति जाति नैननि में नलिनी।
माधवी को पीवै मधु सूझत न अंध कहूँ,
सेवती सेवन कही सेई गंधफलिनी।
और हौं कहति बात कान्ह काहे कों लजात,
ऐसे तौ खिस्याइ सो जु होइ मनमलिनी।
देखौ नहीं प्रानपति निलज अली की गति,
मालती सों मिल्यो चाहै लियें साथ अलिनी।२२।

शब्दार्थ—केतकी = केवड़ा। भाँति = रंगढंग। जाति = जाती, चमेली। नलिनी=कमलिनी। सेवती = सफेद गुलाब। गंधफलिनी = गंधफली, चंपे की कली (मिलाइए—एतस्य कलिका गंधफली स्यादथ केसरे-अमरकोश, २।६४, गंधः फलं साध्यमस्याः-व्याख्यासुधा। प्रियंगौ स्त्री गन्धफली चम्पकस्य च कोरके-रुद्रः)। गंधफली प्रियंगु (काकुनी) और चंपे की कली दोनो को कहते हैं, चंपे की कली को गंधफली इसलिए कहते हैं कि उसमें सुगंध ही फल होता है। प्रानपति = प्यारे स्वामी (मालिक)।

२२—भावै-भरै। भाँति-बास। पीवै-पिये। कहूँ-कछू, कहूँ। कही-चाहि। औरै-और, औरो। देखौ०-देखहु धौं। लिये साथ-लीने संग।

भावार्थ—(सखी की उक्ति नायक प्रति) हे कृष्ण, इस निर्लज्ज भौंरे का चालचलन नहीं देखते, इसे दिनरात केतकी के रंगढंग अच्छे लगते हैं, चमेली इसके मन में बसती है और कमलिनी नेत्रों में। यह माधवी का मधु (मकरंद, पुष्परस) पीता है, देखो इस अंधे को कुछ सूझता भी नहीं, सेवती का सेवन करने की इच्छा करते करते इसने चंपे की कली का भी सेवन कर लिया (यद्यपि भौंरे चंपे के पास नहीं जाते, पर यह उसके पास भी मर्यादा को छोड़कर चला गया)। कहिए आप लज्जित क्यों हो रहे हैं, इस प्रकार तो मलिन मनवाले व्यक्ति लज्जित होते हैं। मैं तो अभी और कहनेवाली हूँ। देखिए वह निर्लज्ज अपनी भ्रमरी को साथ लिए मालती से मिलने आया है।

सूचना—भ्रमर का वर्णन उपेक्षा है। 'काहे को लजात' से स्पष्ट है कि श्रीकृष्ण इस वर्णन को अपने चरित्र से मिलता पाकर मान छोड़कर संकुचित हो रहे हैं।

अलंकार—अन्योक्ति (अथवा अप्पय दीक्षित का प्रस्तुतांकुर)।

अथ प्रसंगविध्वंस-लक्षण–(दोहा)

(३८२) उपजि परै भय चित्तभ्रम, छूटि जाइ जहँ मान।
सो प्रसंगविध्वंस कबि केसवदास बखान।२३।

भावार्थ—भय के कारण चित्तविभ्रम होकर जहाँ मान छूट जाय वहाँ प्रसंगविध्वंस उपाय होता है।

श्रीराधिकाजू को प्रसंगविध्वंस, यथा–(सवैया)

(३८३) केकी न केसव काम के किंकर बोलत डोलत देत दुहाई।
कामनिसा यह कामिनि कोऊ रिसाइगि तासहुँ ह्वै है रिसाई।
गाजति नाहिंन मेघघटा यह बाजति डौंडी सखी सुखदाई।
भोर भएँ फिरि कीबौ अबोलौ सु बोलौ अबै बलि बोलि कन्हाई २४

शब्दार्थ—केकी=मोर। किंकर=सेवक। कोऊ रिसाइगी=यदि कोई नायिका मान करेगी। तासहुँ ह्वै है रिसाई=उस पर (काम महाराज) क्रोध करेंगे। गाजत=गरजते हैं। डौंडी=डुग्गी (कामदेव की)। कीबौ=करना। अबोलौ=मौन, मान। बलि=हे नायिका। बोलि=बुलवाकर।

भावार्थ—(सखी की उक्ति नायिका प्रति) हे सखी ये मयूर नहीं प्रत्युत काम के सेवक बोल रहे हैं, जो घूम घूमकर (काम की) दुहाई दे रहे हैं कि इस कामरात्रि में यदि कोई कामिनी मान करेगी तो उस पर महाराज कामदेव रुष्ट होंगे। यह बादल की घटा नहीं गरज रही है, सुखदायी (काम की) डुग्गी बज रही है। इसलिए, सबेरा होने पर फिर मौन ग्रहण कर लेना इस समय तो कृष्ण को बुलवाकर उन्हें इस (राजघोषणा) का समाचार सुना दो।

२३—छूटि–भूलि। कबि–कहि। २४—तासहुँ–ताकहुँ। भएँ–भयो। सु–जु।

सूचना—यहाँ सखी ने कामोद्दीपन का भय दिखाकर मानमोचन किया है, अतः प्रसंगविध्वंस है।

अलंकार—शुद्धापह्नुति।

श्रीकृष्णजू को प्रसंगविध्वंस, यथा—(कबित्त)

(३८४) कोकनि की कारिका कहति काहू सारिका सों,
दुरि दुरि हित चित चौगुनो चढ़ायो है।
सूकि रही सकुचनि बापुरी सुकी तौ, कहि
काहू सों सकै न देह दुखनि डढ़ायो है।
उठि चलौ न्याउ कीजे अब कै मनाइ दीजै,
नीकें ही में केसोदास कलह बढ़ायो है।
मानत न एते पर उलटि मनावै वह,
ऐसो ही सयान स्याम सुकहि पढ़ायो।२५।

शब्दार्थ—कोकन की कारिका = कोकशास्त्र के सिद्धांत, कामशास्त्र की बातें। सारिका = मैना। सूकि रही = सूखती जा रही है। बापुरी = बेचारी। सुकी = सुग्गी। न्याउ कीजै = फैसला कर दीजिए, झगड़ा निपटा दीजिए। नीकें ही में = अच्छे भले में। कलह = झगड़ा। सयान = चतुराई (की पद्धति)।

भावार्थ—(सखी की उक्ति नायक से) हे श्याम, आपने सुग्गे को न जाने कैसी चतुराई की बातें सिखा रखी हैं कि वह सुग्गी से मान कर बैठा है, मानता ही नहीं। वह किसी मैना से कोकशास्त्र की बातें कर रहा था। छिप छिपकर उसने प्रेम और चित्त दोनो ही चौगुने चढ़ा लिए हैं (उसका प्रेम भी बढ़ गया है और मन भी)। बेचारी सुग्गी (उसकी कथा सुन सुनकर और उसकी करतूत देख देखकर) मारे संकोच के सूखती जा रही है। वह किसी से इस बात को कह नहीं सकती, उसका शरीर दुखों से जल रहा है। इतनी ढिठाई करने पर भी सुग्गा मानता नहीं है (वही मान कर बैठा है) और सुग्गी ही उलटे उसे मना रही है। आप चलकर दोनो के झगड़े का निपटारा कर दीजिए। थोड़े के लिए उसने इतना झगड़ा बढ़ा रखा है।

सूचना—शुक और शुकी के झगड़े के कारण नायक को भय हुआ और उसका मान छूट गया, यही प्रसंगविध्वंस है। यहाँ शुक के चरित्र से श्रीकृष्ण का चरित्र भी मिलता है अतः उपेक्षा की संभावना होती है। पर दोनो में

२५—चढ़ायो-बढ़ायो। सूकि-सोचि। नीकें ही-नेक ही। डढ़ायो-उठायो, बढ़ायो। वह-बरु।

अंतर यह है कि प्रसंगविध्वंस में भय होता है और उपेक्षा में भय नहीं। यदि कोई सारूप्य निर्देश भयरहित होगा तो उपेक्षा होगी और भय की संभावना होगी तो प्रसंगविध्वंस। श्रीकृष्ण के पालतू पक्षियों में से शुकी का सूख जाना स्पष्ट भय का कारण है, अतः यहाँ अन्योक्ति होते हुए भी उपेक्षा न होकर प्रसंग विध्वंस ही होगा। दूसरी बात यह है कि भय पहले होता है, आत्मसाम्य का ज्ञान तदनंतर। इसी से भय प्रधान होगा, आत्मसाम्य गौण।

अलंकार—अन्योक्ति।

(दोहा)

(३८५) **देश काल बुधि बचन तें, कल धुनि कोमल गान।**
सोभा सुभ सौगंध तें, सुख ही छूटत मान।२६।

शब्दार्थ—सौगंध=सुगंध। सुख ही=सरलता से।

भावार्थ—देश, समय, बुद्धिपूर्वक कहे वचन, सुंदर ध्वनि, सुंदर गान, शोभा-दर्शन, अच्छी सुगंध से सहज ही मान छूट जाता है।

यथा—(कवित्त)

(३८६) **घननि की घोर सुनि, मोरनि को सोर सुनि,**
सुनि सुनि केसव अलाप अलीजन को।
दामिनी दमक देखि देह की दिपति देखि,
देखि सुभ-सेज देखि सदन सुबन को।
कुंकुम की बास, घनसार की सुबास भयो,
फूलनि की बास, मन फूलिकै मिलन को।
हँसि हँसि बोले दोऊ, अनहीं मनाएँ मान,
छूटि गयो एकै बार राधिका रमन को।२७।

शब्दार्थ—घन=बादल। घोर=ध्वनि। अलाप=राग। अलीजन=सखियाँ। दामिनी=बिजली। दमक=चमक। सुबन=रमणीय बाटिका। कुंकुम=केसर। घनसार=कपूर। फूलिकै=उत्साहित होकर। अनहीं मनाएँ=बिना मनाए ही। एकै बार=एक साथ ही। राधिका रमन=राधिका और उनके रमण श्रीकृष्ण दोनो का।

सूचना—'घनन की घोर' समय है (वर्षा), 'मोरन को सोर' कल ध्वनि है. 'अलाप अलीजन को' कोमल गान है 'दामिनी दमक' और 'देह की दिपति' शोभा है, 'सुभ सेज' और 'सुबन' देश हैं, 'कुंकुमादि की सुबास' सुगंध है और हँसकर बोलना बुद्धिवचन है।

२७—देह-दीप। सुभ-सुख। सदन-सुंदर। भयो-नयो, नए। बोले-मिले। अनहीं-बिनही। गयो०-गो एकहि। बार-बेर।

व्याकरण—'अन' का प्रयोग बिना के अर्थ में किया गया है।

(दोहा)

(३८७) **इहि बिधि मान छुड़ावहीं, आपुस में नर नारि।**
पल पल प्रीति बढ़ावहीं, केसवदास **बिचारि**।२८।

(३८८) **प्रिया न प्रीतम सों करै, अति हठ** केसवदास।
बहुरयौ हाथ न आवई, जौ ह्वै जाइ उदास।२९।

भावार्थ - हाथ न आवई=वश में नहीं होता, अनुकूल नहीं रह जाता।

(३८९) **बारहि बार न कीजिये, बारक कीजै मान।**
कहि केसव **ज्यों आप में, सदा बढ़ै सनमान**।३०।

शब्दार्थ—बारक=(केवल) एक बार। ज्यों=जिस प्रकार। आप में=परस्पर।

(३९०) **प्रीति बिना भय होय नहिं, भय बिन होइ न प्रीति।**
प्रीति रहै जहँ भय रहै, यहै मान की रीति।३१।

भावार्थ—प्रेम के बिना भय नहीं होता और भय के बिना प्रेम नहीं होता, अतः दोनो साथ साथ रहते हैं। यही मान का कारण और ढंग है।

(३९१) **गर्व, व्यसन, धन-त्याग तें, निष्ठुर बचन प्रवास।**
लालन बिप्रियकरन तें, पिय तें होइ उदास।३२।

तात्पर्य—नायक से नायिका इन कारणों से उदास होती है—गर्व से, व्यसन से, धन के नष्ट होने से, कड़ी बातों से, प्रवास में रहने से, लोभ में पड़ने से, मन के विरुद्ध कार्य करने से।

(३९२) **मान बिबिध बरने बिबुध, जहाँ बिबिध बुधिबास।**
केसव **करुना करि कछू, कहियत बिरह-प्रवास**।३३।

शब्दार्थ—बिबुध=विशेष पंडित। बुधिवास=अनेक प्रकार की बुद्धि-पूवक की गई युक्तियों का निवास जहाँ था। करुना करि=करुणा के द्वारा होनेवाले। बिरह-प्रवास=प्रवास के कारण उत्पन्न विरह।

इति श्रीमन्महाराजकुमारइंद्रजीतविरचितायां रसिकप्रियायां विप्रलंभ-श्रृंगारिमानमोचनं नाम दशमः प्रभावः।१०।

३०—कीजिये–कीजई। ३१—जहँ–जिहिं। **३२—करन तें–करन तिय।**
३३—बिबिध०—बिरह। बिबुध–बिबिध। कहियत–कीजत बिरह प्रकास।

एकादश प्रभाव

अथ करुणाविरह-लक्षण—(दोहा)

(३६३) छूटि जात केसव जहाँ, सुख के सबै उपाय।
करुनारस उपजत तहाँ, आपुन तें अकुलाय।१।

(३६४) सुख में दुख क्यों बरनियै, यह बरनत ब्योहार।
तदपि प्रसंगहि पाइ कछु, बरनत मति-अनुसार।२।

अथ राधिकाजू को प्रच्छन्न करुणाविरह, यथा—(सवैया)

(३६५) मैं पठई मति लेन सखी सु रही मिलिकै मिलिबे कहँ आनै।
जाइ मिले दिन ही दृग-दूत दयाल सों देहदसा न बखानै।
प्रेरत पैज कियें तन प्राननि जोग के और प्रयोग निदानै।
लाज तें बोलन पाऊँ न केसव ऐसें ही कोऊ कहा दुख जानै।३।

शब्दार्थ—आनै = ले आए। प्रेरत = प्रेरित करता है। पैज = प्रतिज्ञा। और = अन्य, दूसरे। निदानै = निदान कर, खोजकर, सोचकर।

भावार्थ—(नायिका की उक्ति मन से) मैंने मति रूपी सखी को नायक को ले आने के लिए भेजा पर वह तो वहीं उनसे मिलकर रह गई, उन्हें मुझसे मिलाने के लिए कौन लाता। इतना ही नहीं नेत्र रूपी दूत भी दयालु (नायक) से जा मिले, जाकर मेरी देहदशा का वर्णन नहीं किया। योग के अन्य प्रयोग सोचकर अब मेरा शरीर प्रतिज्ञा करके (कि अवश्य भेंट होगी) प्राणों को भेज रहा है (देखें क्या होता है)। मै लज्जा के कारण कुछ कह नहीं सकती और बिना कहे यों ही मेरे इस (कठिन) दुख को कोई जान भी कैसे सकता है ?

सूचना—प्राणों के भेजने से यहाँ करुणाविरह है। किसी से कुछ नहीं कहती, मन ही मन सोचती रहती है, अतः प्रच्छन्न है।

श्रीराधिकाजू को प्रकाश करुणाविरह, यथा—(कबित्त)

(३६६) हरित हरित हार हेरत हियो हरत,
हारी हौं हरिननैनी हरि न कहूँ लहौं।
बनमाली ब्रज पर बरषत बनमाली,
बनमाली दूर दुख केसव कैसें सहौं।

२—यह—नहि। ३—कै—कौ। निदानै—निधानै, निधानै दिनानै। कियें—करै।

हृदय-कमल-नैन देखिकै कमल नैन,
होहुँगी कमलनैनि और हौं कहा कहौं।
आप घने घनस्याम घनहीं से होत घन,
सावन के द्योस घनस्याम बिनु क्यों रहौं।४।

शब्दार्थ—हरित हरित=हरे हरे। हार=खेत, जंगल। हरत=हर लेते हैं। हरिननैनी=मृगनेत्री (चपलतापूर्वक चारो ओर देखनेवाली)। वनमाली=वन से घिरा हुआ प्रदेश। बनमाली=(बन=जल+माली=समूह से युक्त) बादल। बनमाली=श्रीकृष्ण। हृदय कमल नैन=हृदय की आँख से, ध्यान करके। कमलनैनि=जलपूर्ण नेत्रवाली (कमल=जल)। आप=जल। घने=अत्यधिक। घन से=बहुत। घनहीं=हथौड़े की भाँति।

भावार्थ—(विरहिणी नायिका किसी सखी के साथ घूम रही है और कह रही है) इन हरे हरे खेतों को देखकर तेरा हृदय मुग्ध हो गया है, पर मैं परेशान हो गई, मैं हरिणनेत्री होकर (चंचलतापूर्वक इधर उधर देखती हुई भी) हरि को कहीं भी देख नहीं पाती हूँ। वनों से घिरे हुए व्रज पर जल से भरे हुए बादल बरस रहे हैं। वनमाली (श्रीकृष्ण) दूर हैं, मैं दुःख कैसे सहूँ। हृदयकमल के नेत्रों से कमलनेत्रवाले श्रीकृष्ण को देखकर मैं जलपूर्ण नेत्रवाली हो जाऊँगी (उनका ध्यान करने से मेरे नेत्रों में आँसू छलक आएँगे)। और अधिक मैं क्या कहूँ अत्यधिक जल से भरे हुए अत्यंत काले ये बादल हथौड़े की भाँति कष्टदायक प्रतीत होते हैं। इन सावन के दिनों में भला घनश्याम के बिना मैं कैसे रह सकती हूँ (जी सकती हूँ)।

सूचना—नायिका का अत्यंत दु:खप्रकाश होने से करुणविरह है, सहेली बातें कर रही है, अतः प्रकाश है।

अलंकार—यमक।

श्रीकृष्णजू को प्रच्छन्न करुणविरह, यथा—(कवित्त)

(३६७) जैसें मिल्यो प्रथम स्रवन-मग जाइ मन,
रवन भवन कीने अलिक अलक में।
मन मिलें मिले नैन केसौदास सबिलास,
छबि-आस भूलि रहे कपोल-फलक में।
नैन मिलें मिल्यो ज्ञान सकल सयान सजि,
तजि अभिमान भूल्यो तन की झलक में।

४—हियो-हिये। हरत-हेरात। घने०-घनघने। सावन०-घननि के घोष, स्यामनि के द्योस।

तैसें छल बल साधि राधिकै मिलन कहँ,
चाहत कियो पयान प्रानहूँ पलक में ।५।

शब्दार्थ—रवन = (रमण) रमणीय । भवन=घर । अलिक = ललाट । अलक = केश, लट । सविलास=आनंदपूर्वक । फलक = पट्टी, स्थान । सयान सजि=चतुरतापूर्वक । झलक = कांति । पलक=(एक पल) क्षण भर में ।

भावार्थ—(नायक की उक्ति आत्मगत) जिस प्रकार पहले कानों के मार्ग से मन जाकर उनसे मिला (कानों से उनकी सुंदरता का वर्णन सुनकर देखने के लिए लालायित हुआ और जाकर मिला) फिर वहाँ वह उनके भालपट्ट और लट में अपना रमणीय घर बनाकर रहने लगा । मन के जा मिलने से नेत्र भी आनंदपूर्वक जा मिले और छबि की आशा में अपने को भूलकर कपोल-देश में रहने लगे । नेत्रों के मिलने से अब चातुर्यसहित ज्ञान (चेतना) भी जा मिला । उसने अपना अभिमान (अहंता) त्याग दिया और वह शरीर की चमक में मुग्ध रह गया । ठीक उसी प्रकार अब छलबलपूर्वक राधिका से मिलने के लिए क्षण भर में प्राण भी प्रस्थान करना चाहते हैं ।

सूचना—प्राण त्यागने की अवस्था उपस्थित होने की बात कहने से करुण-विरह और आत्मगत होने से प्रच्छन्न है ।

अलंकार—एकावली ।

श्रीकृष्णजू को प्रकाश करुणाविरह, यथा—(सवैया)

(३६८) **है तरुनाई तरंगिनि-पूर अपूरब पूरबराग रँगे पय ।**
केसवदास जिहाज मनोरथ, संभ्रम बिभ्रम, भूरि भरे भय ।
तर्क तरंग तरंगित तुंग तिमिंगिल सूल बिसालनि के चय ।
कान्ह कछू करुनामय हे सखि तैं ही किये करुना-बरुनालय ।६।

शब्दार्थ—तरुनाई=युवावस्था । तरंगिनि = नदी । पूर = प्रवाह । अपूरब = अपूर्व, अद्वितीय । पूरबराग = पूर्वराग । पय=जल । संभ्रम = आतुरता । विभ्रम=चक्कर, आवर्त । भूरि भरे भय = अत्यधिक भय से भरे । तरंग= लहर । तरंगित = लहराती हुई । तुंग = ऊँची । तिमिंगिल = बड़े बड़े जलजीव जो तिमि (मछली) को निगल जाते हैं । सूल = (शूल) कष्ट । चय= समूह । हे = थे । बरुनालय = समुद्र ।

भावार्थ—(बहिरंग सखी की उक्ति नायिका से) हे सखी (पहले) कृष्ण के हृदय में तो किंचित् ही करुणा (शोक) थी, तुम्हीं ने उन्हें शोक-

५—जैसे-ऐसे । कीने–किये । राधिकै०–राधिका कुअँरि ।

सागर बना दिया। तुम्हारा यौवन ही नदी का भीषण प्रवाह है, जिसमें पूर्वराग से युक्त होना ही जल है। इस नदी को पार करने के लिए मनोरथ का ही जहाज है, आतुरता ही आवर्त है। इसी प्रकार उसमें अनेक भय (के कारण) भरे हुए हैं। तर्क की ऊँची लहरें उठ रही हैं बड़े बड़े कष्ट ही दीर्घकाय जलजंतु हैं (तेरे यौवन की इस नदी के जा मिलने से नायक अब शोक के समुद्र ही हो गए हैं)।

सूचना—श्रीकृष्ण को शोक-समुद्र (करुणा-वरुणालय) कहने से करुणा-विरह और बहिरंग सखी की उक्ति होने से प्रकाश है।

अलंकार—सांग रूपक।

अथ प्रवासविरह-लक्षण—(दोहा)

(३९९) केसव कौनहु काज तें, पिय परदेसहिं जाइ।
तासों कहत प्रवास सब, कवि कोबिद समुझाइ।७।

सूचना—इसके बाद हस्तलिखित प्रति और लीथोवाली प्रति में यह सवैया दिया गया है, जो मुद्रित प्रतियों में नहीं है—

जानै कहा मेरी दीरघ साँस लै नैन नवाइ दुकाइ बिथाहू।
माथौ न दूखिहै सूधे निहारौ पखारौ नहीं मुख जौ न अन्हाहू।
ऐसें ही केसव क्यों रहै प्रान सु आपनी पीर सुनावहु काहू।
काहे तें भोर को भोजनौ छाड़्यो तौ पानो न पीवौ जौ पान न खाहू॥

श्रीराधिकाजू को प्रच्छन्न प्रवासविरह, यथा—(सवैया)

(४००) तूँ करिहै कहि धौं कब गौनहि नंदकुमार तौ गौन कियोई।
मोहि महा डर तो डर को न रहै लटि लै जिनि को धौं लियोई।
ऐसी न बूझियै केसव तोहि बिचारै जु बीच बिचार बियोई।
तेरे ही जीय जियै जिनको जिय रे जिय ता बिन तूँ ब जियोई।८।

शब्दार्थ—गौनहि = गमन। लटि = क्षीण होकर। बियो = दूसरा।

भावार्थ—(नायिका की उक्ति प्राण से) हे प्राण, नंदकुमार तो गए, अब तू कब गमन करेगा ? मुझे तो बड़ा डर तेरे हृदय का है। कहीं वह दुर्बलता-क्षीणता का बहाना लेकर रह न जाय, प्रत्युत उसने यह बहाना ले ही लिया। तुझे वैसा नहीं करना चाहिए जैसा तू इस समय दूसरे प्रकार का विचार करके करने लगा है (गमन न करके रहना चाहता है)। तेरे ही जी

८—कहि–कब। कब–कहि। मोहि–मोहि तो मोह। रहै–रह्यो। लै जिनि को धौं–लाभ। ऐसी–ऐसो। बिचारै–बिचारचो।

से जिनका जी जीता है (जो तुझे प्राणों की भाँति प्यार करते हैं) ऐसे श्रीकृष्ण के बिना भी तू अब भी जी रहा है ? (यह कार्य ठीक नहीं)।

सूचना—'नंदकुमार तौ गौन कियोई' से प्रवासविरह। प्राणों के प्रति उक्ति होने से प्रच्छन्न है।

श्रीराधिकाजू को प्रकाश प्रवासविरह-वर्णन, यथा—(कबित्त)

(४०१) कौन कें न प्रीति, को न प्रीतमहिं बिछुरत,
याही कें अनोखो पतिव्रत गाइयत है।
केसौदास जतन कियें ही भलें आवै हाथ,
और कहा पच्छिनि के पाछें धाइयत है।
उठि चलि जौ न मानै काहू की बलाइ जानै,
मानसै जु पहिचानै ताकें आइयत है।
याकें तौ है आजु ही मिलौं कि मरि जाउँ ऐसें,
आगि लागें मेरी माई मेह पाइयत है।[१]

शब्दार्थ—कौन कें०=किसके (हृदय में) प्रेम नहीं होता। को न प्रीतमहिं बिछुरत = किसे प्रियवियोग नहीं होता। जतन······धाइयतु है = (पिंजड़े से निकलकर उड़ जानेवाला) पक्षी यत्न करने से ही हाथ आता है, नहीं तो क्या कोई पक्षी के पीछे पीछे दौड़ता फिरता है (अर्थात् नहीं)। बलाइ=बला। उठि चलि० = यदि नहीं मानती है तो चल उठ चलूं, किसी की बला जाने (मुझे क्या)। मानसै=मनुष्य को। मानसै जु० = जो मनुष्य को पहचाने उसी के यहाँ आया जाता है (यह तो जैसे आदमी ही नहीं पहचानती)। मरि जाऊँ = मर जाऊँ (मरकर जा मिलूँ)। माई = संबोधन में। मेह = (मेघ) जल। आगि लागें० = भला कहीं आग लगने पर (मनाने से) पानी बरसता है।

उक्ति—सखी की उक्ति सखी से।

अलंकार—लोकोक्ति।

सूचना—सखियों की परस्पर बातचीत है, अतः बात बाहर तक पहुँच चुकी है इसी से प्रकाश है।

श्रीराधिकाजू को विरह-भयविभ्रम, यथा—(सवैया)

(४०२) कोकिल केकी कुलाहल हूल उठी उर में मति की गति लूली।
केसव सीत सुगंध समीर गयो उड़ि धीरज ज्यों तन तूली।

१—याही कें–तेरे ही। कियें ही–करें ही। चलि–चलौ। मानसै–मानसौं। तौ है०–तो है नोखो व्रत। ऐसें–माई, ×। माई–आली।

जै मुनि जै मुनि कै बची जोन्ह की जामिनी, पै न अजौं सुधि भूली।
क्यों जियै कैसी करौं बहुर्यौ बिष सी बिसनी बिसवासिनी फूली।१०।

शब्दार्थ—केकी=मयूर। कुलाहल=(कोलाहल) शोर। हूल=पीड़ा। लूली=पंगुल। तूली=रूई (वाला)। मुनि=अगस्त्य मुनि। बिष सी=विष की भाँति कष्टदायिनी। बिसनी=कमलिनी। बिसवासिनी=(व्रजभाषा का विशिष्ट प्रयोग) विश्वासघातिनी।

भावार्थ—(सखी की उक्ति सखी प्रति) हे सखी, कोयल और मोरों का कोलाहल सुनकर उस विरहिणी नायिका के हृदय में पीड़ा होने लगी और उसकी बुद्धि पंगु हो गई (वह किंकर्तव्यविमूढ़ हो गई)। शीतल एवम् सुगंधित वायु के चलने से शरीर से धैर्य रूई की भाँति उड़ गया। (उस दिन तो समुद्र का शोषण करनेवाले) अगस्त्य मुनि का बार-बार जयकार करके वह उस चाँदनी रात्रि में बची (क्योंकि चंद्रमा समुद्र का पुत्र है, अपने पिता के शोषक के नाम से डर जाएगा) पर उस दिन उसे जो कष्ट उस चाँदनी रात्रि से मिला उसके कारण वह उसे आज तक भूल नहीं सकी। अब (प्रभात के समय) वह कैसे जी सकेगी और क्या करेगी, क्योंकि विष की भाँति मार डालनेवाली विश्वासघातिनी कमलिनी भी फूलने लगी है।

सूचना-विरहावस्था में संयोग की सुखदायिनी वस्तुएँ दुःखद हो जाती हैं। इसी का वर्णन केसवदासजी ने 'विरह-भयविभ्रम' नाम से अलग कर दिया है।

श्रीकृष्णजू को प्रच्छन्न प्रवासविरह, यथा—(सवैया)

(४०३)जिनि बोलि सुबोल अमोल, सबै अँग केलिकलोलनि मोल लिये।
जिनको चित लालची लोचन रूप अनूप पियूष सु पोय जिये।
जिनके पद केसव पानि छियें सुख मानि सबै दुख दूरि किये।
तिनको सँग छूटत ही फिटु रे फटि कोटिक टूक भयो न हिये।११।

शब्दार्थ—छियें=छूने पर। छूटत=छूटने से। फिटु=धिक्कार।

भावार्थ—(नायक की उक्ति आत्मगत) जिन्होंने सुंदर अमूल्य वाणी बोलकर और क्रीड़ा के किल्लोल (मुद्राओं) से मेरे सभी अंग मोल ले लिए (जिनकी वाणी और मुद्रा पर मेरा शरीर निछावर था), जिनके अनेक रूप (सौंदर्य) के अमृत का नेत्रों द्वारा पान करके मेरा लालची चित्त जीता रहा, जिनके चरणों को हाथ से छूकर सब दुःख दूर करके मैंने सुख माना उनका

१०—जैमुनि०-जामनि जामनि। जियै-जियौ। करौ करे। बिसनी-बिनसी। ११—बिनके पद-जिनको पद। छियें-छवै, हिये। छूटत-फूटत। फिटु-फिटि।

साथ छूटने पर भी ऐ हृदय तू फटकर करोड़ों टुकड़े नहीं हो गया, तुझे धिक्कार है।

सूचना— मन के प्रति होने से प्रच्छन्न है।

श्रीकृष्णजू को प्रकाश प्रवासविरह, यथा—(सवैया)

(४०४) केसव क्योंहूँ चलैं चलि कोरि सँदेस कहैं फिरि पैंडक द्वू पर।
आगें धरैं अपनो सो कै साहस पाछेहीं पेलि परैं पग भू पर।
होत जहीं तहीं ठाढ़े ठगे से चलौ न कह्यो परै कान्ह हितू पर।
लोक की लाज फिर्‌यो न परै पै मिलान करैं अधकोसक ऊपर।।१२।

शब्दार्थ—कोरि = करोड़। पैंड़क द्व पर = दो डग चलने पर। पेलि = बरबस। कान्ह हितू पर = प्रिय कृष्ण से। फिरचौ न परै = लौटा नहीं जाता। मिलान करैं = पड़ाव डालते हैं। अधकोसक० = आधे कोस पर।

भावार्थ—(सखी-वचन सखी से) किसी प्रकार श्रीकृष्ण चलते हैं और दो पग चलने पर ही लौटकर करोड़ों (अनेक) संदेश कह डालते हैं। अपने साहस से आगे को पैर रखते हैं, पर बलपूर्वक वह पृथ्वी पर पीछे ही पड़ता है तहाँ जहाँ वे ठगे से खड़े हो जाते हैं और उनसे (साथवाली सखी या प्रेमिका से) 'चलो' (लौट जाओ) कहते नहीं बनता। लोक लज्जावश उनसे भी लौटते नहीं बनता इसलिए वे आधे आधे कोस पर पड़ाव डालते हुए जा रहे हैं।

सूचना—(१) सखियों तक बात पहुँच गई है (सब जानते हैं), अतः प्रकाश है। (२) हस्तलिखित प्रति में इसके बाद यह दोहा है—

खान पान परिधान पुनि, जान जान दुति अंग।
सुभ संजोग बियोग बिन जानौ सुख तिय संग।।

श्रीकृष्णजू को विरह-भयविभ्रम, यथा—(सवैया)

(४०५) प्रेत की नारि ज्यों तारे अनेक चढ़ाइ चलै चितवै चिहुँघातो।
कोढ़िनि सी ककुरे कर कंजनि केसव सेत सबै तन तातो।
भेटतहीं बरहीं अबही तौ बरयाइ गई हीं सुखै सुख सातो।
कैसी करौं कहि कैसें बचौं बहुरचौ निसि आई कियें मुँह रातो।।१३।

१२—फिरि-पुनि। पेंडक०-पैंड़क ऊपर, पैंड़कहू पर। सो कै-कै सु। कान्ह०-कान्हहि तूपुर। अध-दस। १३—चलै-चली। तौ-तें। ककुरे-सकुरे। अबही-तबही। हौ सुखं०-सँग ही सुख, ही सुखै सुध। बचौं = जियौं।

शब्दार्थ—तारे=नक्षत्र, नेत्र की पुतली। चितवै चहुँघातो = चारो तरफ देखती है। ककुरे = सिकोड़े हुए। तातो=तप्त। भेटतहीं = भेंट करते ही, छूते ही। बरहीं = बलपूर्वक। बरचाइ गई = कठिनता से गई थी, मुश्किल से हटी थी। सुखै = सुखाकर, नष्ट करके। बहुरचौ = फिर, पुनः। सुख सातो = सात प्रकार के सुख (खान-पान परिधान पुनि ज्ञान गान दुति अंग। सुभ संयोग वियोग बिन, सातो सुख तिय संग)। हस्तलिखित प्रति में यह दोहा मूल में है। रातो = रक्त, लाल।

भावार्थ—(नायक-वचन सखी प्रति) प्रेतिनी की भाँति अनेक (नेत्र के) तारों को चढ़ाए हुए (नक्षत्रों से युक्त) चारो ओर देखती चल रही है। कोढ़िन (स्त्री) की भाँति कर रूपी कमलों को सिकोड़े हुए है (रात में कमल संकुचित हो जाते हैं)। इसका सारा शरीर (कुष्ठ के कारण) श्वेत है (चाँदनी फैली है)। शरीर तप्त है (विरह के कारण चाँदनी तप्त जान पड़ती है)। अभी बरबस मुझे छूते ही सातो सुख नष्ट कर, बड़ी कठिनाई से गई थी। मैं क्या करूँ, कैसे अपने को बचाऊँ वह रात्रि (पिशाचिनी) फिर लाल मुँह किए (ललाईयुक्त, उदित होते हुए चंद्रमा से युक्त) आ गई।

सूचना—विरह में सात सुख दुःखद माने जाते हैं—

नींद, सेज, सुमनो, समा, संगति, सालि, सुगंध।
सात बियोगिन कों करत, महा बिरह तें अंध॥ (-सरदार की टीका

श्रीराधिकाजू की निद्रा, यथा—(सवैया)

(४०६) आएँ तें आवैंगी आँखिनि आगेंही डोलिहै मानहु मोल लई है।
सोवै न सोबन देइ न यों तब सोवन में उन साथ दई है।
मेरियै भूलि कहा कहौं केसव सौति कहूँ तें सहेली भई है।
स्वारथ ही हितु है सबकें, परदेस गएँ हरि नींदौ गई है।१४।

शब्दार्थ—आएँ तें = प्रियतम के आने पर। मानहु मोल लई है = मानो मोल ले ली गई है अर्थात् क्रीतदासी की भाँति है। सोवै = (यह) सोती थी, सोना चाहती थी (प्रिय के पास)। तब = जाते समय। सोवन में = सोने के समय। उन=प्रिय ने।

भावार्थ—(नायिका-वचन सखी से) हे सखी, प्रिय के आने पर वह नींद आएगी और क्रीतदासी की भाँति आँखों के आगे नाचा करेगी, पर इस

१४—डोलिहै-डोलैगी। सोवै-सोऊँ। देइ-देउँ। न यों-न ज्यों, सखी। मेरियै-मेरी सों।

समय नहीं आती। (उस समय वह पति के पास सोने की बहुत इच्छा रखती थी) उनके पास सो जाती थी, पर मैं उसे सोने नहीं देती थी। इसलिए विदेश जाते समय (चित्त में कोई खटका न हो) इसलिए वे उसे मेरे साथ सोने के लिए दे गए हैं। पर इसमें भी मेरी ही भूल है, भला कहीं सौत सखी हुई है। सबको स्वार्थ ही प्रिय होता है, प्रिय के परदेश चले जाने पर वह नींद भी उड़ गई है। (वह भी मेरा साथ नहीं देती)।

श्रीकृष्णजू की निद्रा, यथा–(सवैया)

(४०७) केसव कैसहूँ कोरि उपाइन आनि सु तौ उर लागति है।
चकचौंधत सी चितवै चित में चित सोवतहूँ महँ जागति है।
परदेश प्रिया पल मोहिं पत्याति न जानै को याकी कहा गति है।
तजि नैननि नींद नवोढ़बधू लहुँ आधिक राति तें भागति है।१५।

शब्दार्थ—कोरि = करोड़ों। आनि = आकर। सु तौ = वह तो (नींद)। परदेस प्रिया = प्रिया के परदेश में होने से (विरह के कारण), यह प्रिया (नवोढ़ा वधू निद्रा) परदेश में है (पिता के घर से पति के घर आई है)। लहुँ = लौं, समान।

भावार्थ—(नायक-वचन स्वगत या मित्र से) किसी प्रकार करोड़ों उपाय करने पर तो यह छाती से आकर लगती है। (छाती से लगने पर) चित्त में चकपकाती हुई सी देखा करती है (सोती नहीं, पूरी नींद आती नहीं) सोने पर भी चित्त से जागती रहती है, सावधान रहती है (बारबार उचट जाती है)। प्रिया के परदेश में होने से यह मुझ पर क्षण भर के लिए भी विश्वास नहीं करती। न जाने इसकी कैसी चालढाल है। नेत्रों को त्याग कर नवोढ़ा वधू की भाँति निद्रा आधी रात से ही चुपचाप शीघ्रता से भाग जाती है।

अलंकार—रूपक।

श्रीराधिकाजू की सखी की पत्री, यथा–(सवैया)

(४०८) केसव कुँवर बृषभानु की कुँवरि आजु,
देवता ज्यों बन उपबन बिहरति है।
कमल ज्यों थिर न रहति कहूँ एक छिन,
कमलाग्रजा ज्यों कमलनि तें डरति है।
काली ज्यों न केतकी के फूल रुचैं, सीता जू ज्यों
निसिचर-मुख तिन देखे ही जरति है।

१५—अधिक०—आवत ही निसि।

बदन उघारतहीं मदन-सुयोधनहीं,
द्रौपदी ज्यों नाम मुख तेरो ही ररति है ।१६।

भावार्थ—कुँवर = श्रीकृष्ण। वृषभानु की कुँवरि = राधिका। देवता = देवी। बिहरति है=बिहार करती है। कमला = लक्ष्मी। कमलाग्रजा = लक्ष्मी की बड़ी बहन, दरिद्रा। काली = काली देवी (इन्हें केतकी का फूल नहीं चढ़ता, यह पौराणिक मत है)। निसिचर=राक्षस, रात्रि में चलनेवाला (चंद्रमा का विशेषण)। बदन = शरीर। उघारतहीं = खोलने का प्रयत्न करते ही। मदन = काम रूपी। सुयोधनहीं = दुर्योधन के द्वारा। ररति = रटती है।

अलंकार—भिन्नधर्मा मालोपमा।

सूचना—(१) दरिद्रा को 'कमलाग्रजा' कहते हैं। पर कई प्रतियों में 'कमलानुजा' पाठ ही मिलता है। वह केवल प्रमाद जान पड़ता है।

(२) कमलों से वह इसलिए डरती है कि उसे शोभा नहीं भाती।

पुनर्यथा—(कबित्त)

(४०९) भौंरिनी ज्यों भँवत रहति बन बीथिकानि,
हंसिनी ज्यों मृदुल मृनालिका बहति है।
पीउ पीउ रटति रहति चित चातकी ज्यों,
चंद चितै चकई ज्यों चुप ह्वै रहति है।
हरिनी ज्यों हेरति न केसरि के काननहिं,
केका सुनि ब्याली ज्यों बिलानहीं चहति है।
केसव कुँवर कान्ह बिरह तिहारे ऐसी
सूरति न राधिका की मूरति गहति है ।१७।

शब्दार्थ—भँवत रहति = घूमती ही रहती है। बीथिकानि = गलियों में। मृनालिका = कमलनाल। बहति है=धारण करती है (जैसे हंसिनी मृणाल लेकर उसे खेलते खेलते तोड़ डालती है वैसे यह भी उसे लेकर तोड़ डालती है)। हेरति न=नहीं देखती। केसरि के काननहिं=सिंह के वन को (हरिणी के पक्ष में); केसरवाले वन को (नायिका के पक्ष में)। केका = मोर की वाणी। ब्याली = सर्पिणी। बिलानहीं चहति है = बिलों को ही देखने लगती है

१६—सखी की पत्री-श्रीराधिकाजू की प्रकाश पत्री, प्रिया को बिरहनिवेदन। आजु-बन। कहूँ-कान्ह। दिन-ठौर। डरति-जरति, दुरति। रुचै-सुँघै। मुख तिन-मुखचंद, चंदमुख। जरति-रति। १७—भौंरिनी०-भौंरि ज्यों भँवति है भवन। बहति-चहति। काननहिं-कानन को। चहति-कहति।

(छिप जाने के लिए) या छिपना चाहती है; नष्ट हो जाना चाहती है (नायिका के पक्ष)। ऐसी = वह ऐसी हो गई है कि। सूरति = सुधि, चेतना।

भावार्थ—(सखी का पत्र नायक को) हे कुँवर कान्ह, आपके विरह में उसकी ऐसी दशा हो गई है कि वह भौंरी की भाँति वन-वीथिकाओं में घूमा करती है। हंसिनी की भाँति मृणाल धारण करती है (तोड़ती रहती है)। चातकी की भाँति 'पी पी' (शब्द और प्रिय का नाम) चित्त में रटा करती है। चंद्रमा को देखकर चकई की भाँति चुप हो जाती है। हरिणी की भाँति केसरि-कानन को (सिंह जिस वन में रहता है, जिस वन में केसर होती है उसे) देखती नहीं। मोर की केका सुनकर सर्पिणी की भाँति 'बिलान ही' चाहती (बिलों की ओर देखती है; नष्ट हो जाना चाहती है)। राधिका की मूर्ति चेतनाहीन होती जा रही है होश-हवास ठिकाने नहीं है।

अलंकार—भिन्नधर्मा मालोपमा।

श्रीकृष्णजू की सखी की पत्री, यथा—(कबित्त)

(४१०) दीरघ दरीनि बसैं केसवदास केसरी ज्यों,
केसरी कों देखि बनकरी ज्यों कपत हैं।
बासर की संपदा उलूक ज्यों न चितवत,
चकवा ज्यों चंद चितै चौगुनो चपत हैं।
केका सुनि ब्याल ज्यों बिलात जात घनस्याम,
घननि की घोरनि जवासे ज्यों तपत हैं।
भौंर ज्यों भँवत बन जोगी ज्यों जगत निसि,
साकत ज्यों स्याम नाम तेरोई जपत हैं।१८।

शब्दार्थ—दीरघ = (दीर्घ) बड़ी, गंभीर। दरीन = गुफाएँ। केसरी = सिंह; केसर। करी = हाथी। बासर = दिन। संपदा=शोभा। चपत हैं= दुखी होता है। बिलात जात=छिपता जाता है; गलते या नष्ट होते जाते हैं। घोर = गर्जन से। तपत = जलता है। साकत = शक्ति के उपासक, शक्ति।

भावार्थ—(कृष्ण की सखी की पत्रिका राधिका को) सिंह की भाँति बड़ी बड़ी कंदराओं में (एकांत में) रहते हैं। केसरी (सिंह) को देखकर जैसे जंगली हाथी काँपता है वैसे ही केसर को देखकर ये काँपते हैं। उल्लू जैसे दिन की शोभा नहीं देखता वैसे ही ये भी दिन में आँखें मूँदे पड़े रहते हैं।

१८—सखी की पत्री–प्रिय को विरहनिवेदन, श्रीकृष्ण की पत्री, श्रीकृष्ण की सखी की पत्री राधिका सों। केसौदास-केसौराइ। संपदा-संपति। उलूक-चकोर। चितै–ही तें। निसि–रैनि। साकत–चातक।

चक्रवाक की भाँति चंद्रमा को देखकर अत्यंत दुखी होते हैं। मोर की वाणी सुन जैसे सर्प बिलों में छिप जाता है वैसे ये भी गलते जाते हैं। बादलों की ध्वनि से जवासे की भाँति जल उठते हैं। भौंरे की भाँति वन में घूमते हैं, योगी की तरह रात में जागते हैं और शक्ति की भाँति तेरा ही नाम जपा करते हैं।

अलंकार—भिन्नधर्मा मालोपमा।

सूचना—'रामचंद्र-चंद्रिका में 'स्याम के स्थान' पर 'राम' रखकर इसे राम के विरह-निवेदन का छंद बना दिया गया है।

(दोहा)

(४११) केसवदास प्रवास को, कह्यो जथामति साज।
राधा-हरि बाधाहरन, बरनौं सखी-समाज।१६।

इति श्रीमन्महाराजकुमारइंद्रजीतविरचितायां रसिकप्रियायां संभोगश्रृंगार-प्रवासवर्णनं नामैकादशः प्रभावः।११।

द्वादश प्रभाव

अथ सखी-वर्णन–(दोहा)

(४१२) धाइ, जनी, नाइन, नटी, प्रगट परोसिनि नारि।
मालिनि, बरइनि, सिल्पिनी, चुरिहेरनी, सुनारि।१।

(४१३) रामजनी, संन्यासिनी, पटु पटुवा की बाल।
केसव नायक नायिका, सखी करहिं सब काल।२।

शब्दार्थ—धाइ = धात्री। जनी = दासी, खवासिन। सिल्पिनी = चितेरिन, चित्र बनानेवाली। चुरिहेरनी = चुड़िहारिन। रामजनी = जिसके जनक का पता न चलता हो। पटु = चतुर। पटुवा की बाल = पटहारे की स्त्री पटहारिन।

धाइ को वचन राधिका सों, यथा–(सवैया)

(४१४) मोहन-साथ कहा निसि-द्योस रहै सतरंजहि के मिस बैठी।
केसव क्योंहूँ सुनै महतारी तौ राखहि री घर ही महँ पैठी।

२—पटु–बटु। पटुवा–पटवा। करहिं–करौ।

हौं सिखऊँ सुखदै सिख तोहि तें भौंह चढ़ाइ कै डीठि अनैठी।
को न लड़ैती सरूप न काहि तुहीं कछु जाति अकासहि ऐंठी।३।

शब्दार्थ—मिस=बहाने से। घर ही=घर में डाल रखेगी, बाहर न निकलने देगी। सुखदै=हितकारी। अनैठी=अनिष्ट की, तनेनी की। लड़ैती=दुलारी। सरूप=सुंदर।

भावार्थ=(धात्री की उक्ति नायिका प्रति) तू शतरंज खेलने का बहाना करके रातदिन मोहन के साथ बैठी रहती है। यदि कहीं तेरी माता सुन लेगी तो फिर घर में डाल रखेगी (बाहर फटकने भी न देगी)। मैं तो तुझे हितकर शिक्षा देती हूँ और तू उलटे भौंहैं चढ़ाकर मेरे ही ऊपर आँखें तनेनी कर रही है। कौन लाड़-प्यार से पली दुलारी लड़की नहीं है, कौन रूपवती नहीं है, पर तू ही कुछ ऐंठकर आकाश में चढ़ी जा रही है (सभी लाड़िली और सुंदर होती हैं, पर ऐसे ऐंठते तो किसी को न देखा)।

सूचना—'लड़ैती' कहने से यह धाय की उक्ति मानी जायगी।

धाइ को वचन कृष्ण सों, यथा—(कबित्त)

(४१५) थोरी सी सुदेस बैस दीरघ नयन केस,
गौराजू सी गोरी भोरी भवजू की सारी सी।
साँचे की सी ढारी अति सूछम सुढ़ार कटि,
केसौदास अंग अंग भाँइकै उतारी सी।
सोंधे कैसी सोंधी, देह सुधा सों सुधारी पाइ
धारी देवलोक तें कि सिंधु तें उधारी सी।
आजु यासों हँसि खेलि बोलि चालि लेहु लाल,
कालि ऐसी ग्वालि लाऊँ काम की कुमारी सी।४।

शब्दार्थ—थोरी=छोटी। सुदेस=बढ़िया। बैस=(वयस्) उम्र। दीरघ=(दीर्घ) विशाल, लंबे। गौरा=पार्वती। भोरी=भोली-भाली। भव=महादेव। सारी=पत्नी की छोटी बहन, पार्वती की छोटी बहन। सुढार=उत्तम, चढ़ाव-उतारवाली। भाँइकै=खराद पर चढ़ाकर खरादी हुई सुडौल। सोधें०=सुगंध से सुवासित। पाइ धारी=आई, अवतीर्ण हुई। उधारी=उद्धृत की हुई, निकाली हुई। ऐसी=ऐसी ही। ग्वालि ग्वालिनी।

३—महतारी०-जननी तेरी राखिहै। सिखऊँ-सिखवौं। सुखदै०-सिख दै सखि। भौंह०-दीठि। दीठि-भौंह। अनैठी-अमैठी, उमैठी। काहि-का पै।
४—बैस-बेस। गौराजू-गौरीजू, गोरजा। सुढार०-सुधारि कढ़ी। पाइ-पाँउ। उधारी-उबारी। ग्वालि-बाल।

भावार्थ—(धाय की उक्ति कृष्ण प्रति) आज मैं जो नायिका ले आई हूँ, उसकी छोटी और मनमोहनी वय हैं, बड़े नेत्र और लंबे केश हैं, पार्वती की भाँति गोरी है, शंकर की साली की भाँति भोली है, साँचे में ढली हुई, पतली और सुडौल कमर है। प्रत्येक अंग खराद पर चढ़ाकर खरादा हुआ (सुडौल) है, यह सुगंध से सुवासित है, शरीर अमृत से सिक्त है। यह देवलोक से अवतीर्ण (अप्सरा सी) या समुद्र से निकाली हुई (लक्ष्मी) सी सुंदर है आज इसीसे हँसे खेलें और बोलें चालें मैं कल काम की कुमारी सी दूसरी नायिका ले आऊँगी।

सूचना—(१) यह छंद 'कविप्रिया' में विक्रियोपमा के उदाहरण में दिया गया है, पर वहाँ पूर्वार्द्ध इस प्रकार है—

केसौदास **कुंदन के कोस तें प्रकासमान,**
चिंतामनि ओपनी सों ओपिकै उतारी सी।
इंदु के उदोत तें उकीरि ऐसी काढ़ी, सब
सारस सरस सोभा सार तें निकारी सी।

(२) 'कुमारी' शब्द कहने से 'धाय' की उक्ति मानी जायगी।

जनी को वचन राधिका सों, यथा—(कवित्त)

(४१६) **सोभा को सघन बन मेरो घनस्याम नित,**
नई नई रुचि तन हेरत हिराइयै।
केसौदास **सकल सुबास को निवास, करि**
बिबिध बिलास हास, त्रास बिसराइयै।
ऊँख-रस केतक महूख-रस मीठो है,
पियूखहू की पैली घाँ है जाकों नियराइयै।
चोरी चोरी नैननि चुराएँ सुख कौन जौ लौं,
पिय-मन माहिं मन मेलि न चराइयै।५।

शब्दार्थ—रुचि = शोभा। हिराइ = खो जाता है, मन मुग्ध हो जाता है। केतक = कितना (मीठा) है। महूख = (मधु) शहद। पैली = परली, उस पार, पराकाष्ठा। घाँ = ओर।

भावार्थ—(दासी का वचन नायिका प्रति) मेरे घनश्याम तो शोभा के घने वन हैं, नित्य ही उनके शरीर की नई नई शोभा देखकर मन मुग्ध हो जाता है। उनका शरीर सब प्रकार की सुगंध का घर है। उनके द्वारा अनेक प्रकार के हासों का विलास होने से त्रास (विषाद) भूल जाया जाता है। ऊख का रस कितना मीठा है, मधु में भी कितना मीठापन है। उनके निकट जाने से तो

५—जनी के०-प्रिया प्रति जनी को बचन। बन-घन। महूख-मयूख। घाँ है-घातौ।

अमृत की पराकाष्ठा की प्राप्ति होती है। लुकाछिपी के द्वारा उनसे नेत्रों को मिलाने और प्रायः चुराए रखने में क्या सुख ? (लुक-छिपकर थोड़ा नेत्र मिला लेने से कितना सुख मिलेगा) जब तक प्रिय के मन में अपने मन को डालकर (स्वच्छंदतापूर्वक) विचरण करने के लिए न छोड़ दिया जाय (मन से मन भली भाँति मिल न जाय, खुलकर न मिल जाय) ।

सूचना—बिहारी ने भी 'महूख' शब्द का प्रयोग किया है—

छिनक छबीले लाल वह जौ लगि नहिं बतराइ।
ऊख महूख पियूख की तौ लगि भूख न जाइ ।।-बिहरी-सतसैया

'देव' ने भी इसका बहुत प्रयोग किया है। यह 'मयूख' भी लिखा मिलता है।

जनी को वचन श्रीकृष्ण सों, यथा—(कबित्त)

(४१७) ऐसी बातैं ऐसें ही धौं कैसें कै कही परति,
जाकी गति मति लाज-पट सों लपेटी हैं।
मेरें ही न आवै, मेरी बीर एती बेर वे तौ,
जानति हौं धाइ ही के साथ लौटि लेटी हैं।
ऐसी तौ हैं चेरिन की चेरी वाकी केसवदास,
जैसी तुम हाहा करि पाइ परि भेंटी हैं।
जानति हौं नंदजू के ढोटा हौ जू, जानौ बोल,
उतहिं वेऊ तौ बृषभानजू की बेटी हैं।६।

शब्दार्थ-ऐसें ही धौं=जिस प्रकार तुम कह रहे हो। जाकी०=जिसकी चालढाल लज्जा रूपी वस्त्र में लिपटी है, जो अत्यंत लज्जाशील है। मेरे ही= मेरे यहाँ तो कभी आती ही नहीं। हाहा करि=विनय करके। ढोटा=पुत्र।

भावार्थ—(जनी की उक्ति नायक से) आप जैसे कह रहे हैं वैसे भला मुझसे और उस पर भी ऐसी बातें, उससे कैसे कही जा सकती हैं ? यही नहीं उससे जिसकी चालढाल अत्यंत लज्जाशील है (प्रेम की ये प्रगल्भ बातें)। अरी मैया, मेरे यहाँ तो वह आती नहीं और फिर इस समय (रात में) मेरा अनुमान है कि वह (घूम-फिरकर) धाय के साथ साथ लौटी है और आराम कर रही है (इस बीच जाकर कैसे ये बातें कहूँ ?)। जैसी नायिका से विनय करके और पैरों पड़कर आज आपने आलिंगन किया है, वैसी तो उसकी दासी की दासी हैं। जानती हूँ कि आप नंद जी के लाड़ले हैं, आपके बोल मैंने पहचाने। उधर वे भी वृषभानु की लाड़िली पुत्री हैं (मेरी तो हिम्मत नहीं कि उनसे जाकर ऐसी बातें कह सकूँ)।

६—श्रीकृष्ण सों–प्रिय प्रति। ही धौं–हिये। कैसें०–कैसे कही परति धौं, कैसे कही परत न। पट–पाट। बेर–बार। जानति०–जात धाइ ही के घर साथ। केसोदास–केसोराइ। ढोटा–बेटा। बोल–जाहु। उतहि०–वेऊ तौ उतहि।

सूचना—'चेरिन की चेरी' कहने से जनी की उक्ति का पता चलता है।

नाइनि को वचन राधिका सों, यथा—(सवैया)

(४१८) **अब ही तौ गए उठि पौरहूँ लौं न पै बोलन जाहि री पींछहीं लागें।**
करिहौ तब कैसी पराए जु ढोटहि ह्वैहै कछू निसिद्योस के जागें।
जौ न रह्यो परै केसव कैसहुँ देखत ही मुख स्याम सभागें।
देती हौ जान क्यों राखत काहे न आरसीयै करि आँखिन आगें।७।

शब्दार्थ—पौरहूँ लौं=द्वार तक भी। आरसी=(सं० आदर्श) दर्पण। आरसीयै करि आँखिन आगें=क्यों नहीं दर्पण ही बनाकर नेत्रों के सामने रख लेती।

भावार्थ—अभी तो द्वार तक भी नहीं गए कि तू उनसे बोलने (बातें करने) के लिए पीछे पीछे चल पड़ी। पराए लड़के को यदि रातदिन (तेरे साथ) जागते रहने से कुछ हो जाय तो क्या करेगी ? यदि भाग्यवान् श्याम का मुँह देखे बिना तुझसे किसी प्रकार रहा नहीं जाता तो उन्हें जाने ही क्यों देती है ? क्यों नहीं उन्हें दर्पण बनाकर आँखों के आगे रख लेती ?

सूचना—यहाँ 'आरसी' की बात कहने से नायन की उक्ति जान पड़ती है।

नाइन को वचन कृष्ण सों, यथा—(सवैया)

(४१९) **बड़ी जिय लाज, बड़ो डर आली बड़ो लहुरीयौ चलैं चित लोने।**
बड़ो बड़ी आँख बड़ी छबि सों चितवै बड़ी बेर बड़ो सुख दीने।
बड़े ही बिचार बड़ी रुचि केसव क्योंहूँ मिलै तौ मिलै हमही ने।
बड़ीनिहूँ सों तौ बड़े दुख बोलै, इते बड़े मान बड़ो मन कीने।८।

शब्दार्थ—बेर=देर। हमही ने=हमको, हमसे, हमीं से।

भावार्थ—(आप जिससे बातें करने को कहते हैं) उसके हृदय में बड़ी लज्जा है, बड़ा डर है और उसके चित्त के अनुकूल उसकी जेठी और लहुरी सभी चलती हैं। उसकी बड़ी बड़ी आँखें हैं, वह बड़ी शोभा के साथ अत्यंत सुख देती हुई देर तक देखा करती है। उसके विचार बड़े हैं, रुचि (इच्छा, प्रकृति) भी बड़ी है। यदि कहीं हमसे भी मिलती है तो बड़ी कठिनाई से उससे कहीं भेंट हो पाती है। वह तो अपनी बड़ी बूढ़ियों से भी कठिनाई से बोलती है। इतना बड़ा संमान होने से वह अपना मन भी बड़ा किए हुए है (उससे बातें करना हँसी खेल नहीं है)।

७—उठि-नहि, पुनि। न पै-सु तौ। री-तू। **करिहौ-करिहैं, करै। कैसी-कैसे। पराएजु-पराएहि। देखत ही-देखे बिना सुख। देती-तौ देति। ८—बड़ी बड़ो०-आप बड़ेहू बड़ी चितवै हरि बोलत काहे तें बोल सो हीने। बड़े ही०-बड़ी सब भाँति बड़ो बुधि केसव बोलत बोल बड़े रसभीने। मिलै-मिलो। तौ मिलै-जो कहूं, सु बड़ी। इते-इतो।**

किसी प्रकार (चाँदनी रात में) उस रंग (गौर वर्ण) वाली को छिपाकर ले भी आती हूँ तो उसकी (स्वाभाविक सुगंध की) वायु के पथ पर (पीछे पीछे) भौंरे चलने लगते हैं (और चाँदनी की उज्वलता में उसके रंग के मिल जाने के कारण, उसके पीछे पीछे चलनेवाले) भौंरों को ही देखकर सहेलियाँ भ्रमरियों की भाँति उसके पीछे पीछे चलती हैं। क्योंकि उन्हें उसके साथ चलने की इच्छा है, आवश्यकता है। एक तो उसके शरीर की (चाँदनी सी) चमक ही अत्यंत कष्ट दे रही थी (पर जब उसकी कठिनाई दूर करने का रास्ता निकल आया तो) अब उसके शरीर की सुगंध सोलह आने (पूर्णतया) विष की भाँति हो रही है। अब बताइए क्या करूँ ? मैं कोई पक्षी तो हूँ नहीं कि उसे उड़ा लाऊँ। आपसे कैसे मिलाऊँ ?

परोसिन को वचन राधिका सों, यथा–(सवैया)

(४१२) पाइ परें पलिका परस्यो सु लगी रति तोमल मेलि रती हो।
सौंहैं कियें मुँह सौंहों कियो अब लौं तुम पै गति ऐसी न ती हो।
केसव कैसहुँ देखन कौं तिन्हैं भोरहीं भोरी ह्वै आनि दती हो।
पान खवावतहीं तिन सों तुम राति कहा सतराति हती हो।११।

शब्दार्थ—पलिका = पलंग, शय्या। रती = (रति) प्रेम; (रत्तिका) घुँघची। सौंहैं = कसमें। सौंहों = संमुख, सामने। ती = थी। हो = पादपूर्ति के लिए संबोधन में। भोरी = भोली भाली। आनि = आकर। दती हो = डटी हो, जम गई हो। सतराति हती—चिढ़ रही थीं।

भावार्थ—(पड़ोसिन ने रात को नायिका के पान खाने में रूठने की आहट अपने घर से पा ली है, इस पर प्रिय को देखने के लिए आकर डटी हुई नायिका से वह कहती है) आज सवेरे से ही भोली-भाली सी आकर जिन्हें देखने के लिए डटी हुई हो उन्हीं के पैरों पड़ने पर (कल रात में) पलँग को स्पर्श किया था (पैर रखा था)। (और पलँग पर पैर रखने पर भी) रति (प्रीति, घुँघची) को हटाकर तुमने उनकी प्रीति तोलनी आरंभ की। कसमें खाने पर अपने मुँह को उनके सामने किया। ऐसा क्यों ? तुममें अब तक तो ऐसी चालढाल नहीं थी, भला रात में पान खिलाते समय (उनसे) चिढ़ क्यों रही थीं ?

सूचना—सरदार कवि ने यह माना है कि पड़ोसिन ने स्वयम् आहट नहीं पाई है। नायक ही उससे कह गया है। धाय, सखी आदि की अपेक्षा पड़ोसिन से कहना नायिका को उलाहना देने के लिए अधिक संभव है।

११—तोलन–लोलन। सौंहों–सौंहैं। तिन्हैं–जिन्हैं। भोरी–भौंरो। खवावत–चबावत।

परोसिन को वचन कृष्ण सों, यथा—(सवैया)

(४२३) हाँसी में बातक वासों कही हँसि वेहूँ कही सु हितै करि लेख्यो।
आँखैं मिली न मिली सखियाँ मिलबोई सु केसव क्यों अवरेख्यो।
चिन्याइ मरै चुप साधै कि चातक स्वाति समै ही स्रवै सु बिसेख्यो।
आजुहीं क्यों वह आवै यहाँ जिनि आगि लगेंहू न आँगन देख्यो।१२।

शब्दार्थ—हाँसी में=हँसी में, झूठमूठ। बातक=एक बात (मेरे यहाँ क्यों आने लगीं आदि)। वासों=उससे (नायिका से)। सु=वह बातचीत। हितै करि लेख्यौ=आपने अपने अनुकूल समझ लिया। आँखें मिली न=आँखें चार नहीं हुईं। अवरेख्यो=निश्चित कर लिया। चिन्याइ मरै=चिल्लाकर मरता रहे। चुप साधै कि=अथवा चुप होकर रहे। स्रवै=पानी बरसाता है। सु=वह (बादल)। बिसेख्यो=विशेष रूप से, अत्यधिक।

भावार्थ—(पड़ोसिन और नायिका को किसी दिन बातचीत करते हुए नायक ने देखा। पड़ोसिन से नायिका को न आने का उलाहना दिया और नायिका ने भी नायक की ओर देखते हुए हँसी में ही उलाहने का उत्तर देते हुए आने की बात कही। नायक नायिका से मिलने के लिए उसी दिन पड़ोसिन के यहाँ आया है इस पर पड़ोसिन कह रही है) वाह आप भी अच्छे निकले। उससे हँसी में मैंने एक बात कही और उसने भी हँसी में मुझे कुछ उत्तर दे दिया, इधर आपने उसे ही अपनी घात की बात जान लिया। जब आपसे न आँख मिली और न सखियाँ ही मिलने के लिए गईं तब आपने मेरे यहाँ उससे भेंट होने का निश्चय कैसे कर लिया? भला वह भलीमानस आज मेरे यहाँ क्यों आने लगी, वह तो ऐसी है कि जब घर में आग लगी थी तब भी आँगन झाँकने नहीं गई। (आप चातक की ठान क्यों नहीं ठानते, क्योंकि) चातक या तो चिचियाता हुआ मरता रहता है या चुप्पी ही साध लेता है। बादल तो स्वातीं नक्षत्र में ही उसके ऊपर ध्यान देकर विशेष जल गिराता है (ढारस रखिए, कभी न कभी आप पर भी उसकी कृपादृष्टि हो ही जायगी)।

मालिन को वचन राधिका सों, यथा—(कबित्त)

(४२४) दुरिहै क्यों भूषन बसन दुति जोबन की,
देह ही की ज्योति होति द्योस ऐसी राति है।
नाह को सुबास लागें ह्वैहै कैसी केसव,
सुभाव ही की बास भौंर-भीर फारे खाति है।

१२—बातक-बात वै। वेहूँ-वाहू। हितै-हित्वै। क्यों-कै। मरै-मरो। साधै-साधो। स्रवै-सवै। आवै०—आवति ह्याँ। जिनि-जिहि।

देखि तेरी सूरति की मूरति बिसूरति हौं,
लालन को दृग देखिबे कों ललचाति है।
चलिहै क्यों चंदमुखी कुचनि के भार भएँ,
कचनि के भार तौ लचकि लंक जाति है।१३।

शब्दार्थ—दुरिहै = छिपेगी। जोति = ज्योति, दीप्ति। नाह = नाथ, नायक। सुभाव ही की—स्वाभाविक। भौंर-भीर फारे खाति है = भौरों की भीड़ फाड़े खाती है, भौंरे घेरे रहते हैं। सूरति की = सौंदर्यवाली। बिसूरति हौं = मैं सोच रही हूँ। कुच = स्तन। भार = बोझ। लंक = कमर, कटि।

भावार्थ—देह की स्वाभाविक दीप्ति से जब रात दिन की भाँति प्रकाश-युक्त हो जाती है तब फिर यौवन की द्युति उत्पन्न होने पर और भूषण एवम् वस्त्रों से सुसज्जित हो जाने पर तेरी दीप्ति कैसे छिपाए छिपेगी ? जब शरीर की स्वाभाविक सुगंध ही से भौंरों की भीड़ तुझे घेरे रहती है तब नायक की सुगंध लगने से न जाने क्या दशा होगी ? मैं तो तेरी सुंदर मूर्ति देखकर (उसके ऊपर पड़नेवाले झंझटों का ध्यान करके) सोच कर रही हूँ और तू निश्चित होकर नायक को अपनी आँखों से देखने के लिए लालायित हो रही है (नायक को देखने पर तेरी जो दशा होगी उसकी कल्पना से ही मैं दुखी हो रही हूँ और तू उसी के लिए प्रयत्नशील है)। अभी केशों के बोझ से तो तेरी कमर लचक जाती है, जब कुचों का भार होगा तब न जाने तू कैसे चल सकेगी ?

सूचना—(१) केशवदास ने इसे 'कविप्रिया' में अभूतोपमा के उदाहरण में दिया है। (२) 'सुबास', 'भौंर' आदि की बात लाने से 'मालिन' जान पड़ती है।

मालिन को वचन श्रीकृष्ण सों, यथा-(कवित्त)

(४२५) घेरौ जिनि मोहिं घर जान देहु घनस्याम,
घरिक में लागी उर देखिबो ज्यों दामिनी।
होइ कोऊ ऐसी वैसी आवै इत उत ह्वै कै,
वह वृषभानजू की बेटी गजगामिनी।
आदित को आयो अंत आवौ बलि बलि जाउँ,
आवती हैं वेऊ बनी, आई बनि जामिनी।

१३—सुभाव-सुदेह, सुबास। लंक-कटि।

काम के डरनि तुम कुंज गह्यो केसौदास।
भौंरन के भय भौन गह्यो उनि भामिनी ।१४।

शब्दार्थ——घेरौ जनि = रोको मत। घनस्याम = श्रीकृष्ण; बादल। घरिक में = एक घड़ी में। देखिबी = देखोगे। दामिनी=बिजली। लागी उर०= बिजली की भाँति उसे हृदय से लगी देखोगे। ऐसी वैसी = साधारण। इत उत ह्वैकै = इधर उधर से। आदित = (आदित्य) सूर्य। बनि=सजकर। बनी = शृंगार किए हुए। जामिनी = रात्रि। काम = कामोद्दीपन। भामिनी= मन को भाने वाली, प्यारी नायिका।

भावार्थ—हे कृष्ण, आपने काम के भय से (कारण) कुंज में प्रवेश किया और भौंरों के भय से वे घर में बैठी हैं। अब सूर्यास्त का समय हो रहा है (वैराग्य-वेश त्यागिए) शीघ्र सजकर प्रस्तुत हो जाइए, मैं बलिहारी जाती हूँ। रात्रि आ ही गई, वे भी शृंगार किए हुए आ रही हैं (वे पद्मिनी और कमलबदनी हैं, उन्हें सुगंध-लोलुप भौंरे दिन में घेरे रहते हैं)। यदि कोई साधारण घराने की लड़की होती तो इधर उधर से (किसी प्रकार) आ ही जाती, पर एक तो वे वृषभानु की पुत्री हैं (बड़े घराने की हैं) दूसरे गज-गामिनी हैं (धीरे धीरे चलती हैं)। हे घनश्याम, मुझे मत रोकिए (नायिका के घर जाने दीजिए) घड़ी भर में उन्हें आप दामिनी की भाँति अपने हृदय से लगी देखेंगे।

सूचना—(१) नायक दुखी होकर जंगल में चला गया है।
(२) सुवास की चर्चा करने से मालिन है।

बरइनि को वचन कृष्ण सों, यथा—(कबित्त)

(४२६) मैन ऐसो मन मृदु मृदुल मृनालिका के
सूत ऐसी सुरधुनि मनहिं हरति हैं।
दारयो कैसे बीज दाँत, पान से अरुन ओठ,
केसौदास देखे दृग आनँद भरति हैं।
एरी मेरी तेरी मोहिं भावति भलाई तातें,
बूझति हौं तोहि और बूझत डरति हैं।

१४—देखिबी ज्यों--लागि लीजौ, देखि लीजौ। ह्वैकै--होइ, ह्वै सो। वह-वेऊ, वे तौ। बलि बलि--अघनन, बन बलि। आई०--और आई, आई अरु। काम के०--जैसे तुम काम के डरनि कुंजभौन गह्यो केसौराइ। के भय०--भयनि भवन गह्यो, उन भौन गह्यो। उनि--उहि।

माखन सी जीभ, मुख कंज सो कोवँर, कहु
काठ सी कठेठी बातें कैसें निकरति हैं।१५।

शब्दार्थ—मैन =(मदन) मोम। मृदु=कोमल। मृनालिका=कमल-नाल। सूत=कमलनाल तोड़ने से जो पतले सूत दिखाई पड़ते हैं। सुर-धुनि=स्वर की ध्वनि (मधुर राग)। मननि मनों को। दारयो=(दाड़िम) अनार। पान=(पर्ण) पल्लव। देखे०=आँखों से देख लेने पर हृदय में आनंद भर देती है। एरी=एरी सखी। बूझति हौं=पूछती हूँ। और०=और हम पूछते हुए हृदय से डरती हैं। कंज=कमल। कोवँर=कोमल। कठेठी=कठोर। निकरति०=निकलती है।

अलंकार—विभावना।

सूचना—'पान' कहने से बरइन है।

बरइनि को वचन कृष्ण सों, यथा—(कवित्त)

(४२७) नैननि नवावौ नेक अति ही अनीति करें,
जानति न तुम जैसें ब्रज जानियत हैं।
चंचल चरित्र चित्त, चेटक चटकि लावौ,
चेरे कै चितनि अभिसार सौंपियत हैं।
एकनि के पैठे उर, उरिर उरोजन में,
डर डोलैं केसौदास कैसें वै जियत हैं।
ऐसी कहूँ होति है जो बालनि के चोरि चोरि
मन मनमथ ही के हाथ बेचियत हैं।१६।

शब्दार्थ—नवावौ नेक=थोड़ा दबाओ, रोको। अनीति=अन्याय। चेटक=जादू। चटकि=शीघ्रता से। अभिसार०=अभिसार को सौंप देता है, चक्कर में डाल देता है या अभिसार के लिए प्रेरित करता है। पैठे=घुसे। उररि=उलझकर। बालनि=नायिकाओं (ब्रजांगनाओं)।

भावार्थ—हे प्यारे, भला ऐसा भी कहीं किया जाता है ? तुम व्रजांग-नाओं के मन चुरा चुराकर उन्हें काम के हाथ बेच देते हो। इन नेत्रों को

१५—मृदु–तब। के–से। ऐसी–कैसे। मनहि–मन को, मननि। पान से०–पान सो उदरु, बिंब से अरुन। केसौदास०–देखि देखि केसौदास। मेरी–बोर। और–उर। कोवँर–कुँवरि, कुँवर, कोमल। १६—नवावौ–नवैबो। अति ही–निपट। न–हौ। ब्रज–जग। चेटक०–चेटकी चटका गायो। चेरे कै–चोरि कै। उररि–उरझि। डर०–उरझे तें। केसौदास–केसौराइ। वै–ति। के चोरि०–की चोरीचोरी, के चोराचोरी। मन०–चित मति मनमथ हाथ, मन मनमथ चाक।

दबाओ, ये बहुत ही अनीति कर रहे हैं। तुम इन्हें उतना नहीं जानते जितना इन्हें ब्रज जानता है। ये अत्यंत चंचल स्वभाव और चित्तवाले हैं, ये शीघ्र ही जादू डाल देते हैं यही नहीं, चित्तों पर जादू डालकर उन्हें चक्कर में भी डाल देते हैं। ये किसी के स्तनों से उलझकर हृदय में घुस जाते हैं। (चित्त) डरे डरे घूमते हैं। इनके डर से इधर उधर भागते फिरते हैं, न जाने कैसे जीते हैं।

शिल्पिनी को वचन राधिका सों, यथा—(सवैया)

(४२८) **अबहीं पुनि बोलि री बोलि लगी जक पौरिहूँ लौं उठि जान न दीने।**
मेरे ही जान भई उलटी तुमहीं बस केसव **वे कहँ कीने।**
जौ तौ इतौ दुख पावति हौ तलफैं दृग मीन मनो जल झीने।
तौ कत छाड़ति हौ छिन एक रहौ किनि चित्र ज्यों हाथहिं लीने।१७।

शब्दार्थ—बोलि री बोलि = बुला री बुला। जक = धुन, रट। पौरिहूँ लौं = दरवाजे तक भी न जाने दिया। उलटी बस = उलटी तू ही उनके वशीभूत हो गई है। इतौ = इतना (अधिक)। तलफैं = तड़पते हैं। झीने = कम, थोड़े।

भावार्थ—हे सखी, अभी उन्हें यहाँ से उठकर तूने द्वार तक जाने भी न दिया कि 'बुला ले बुला ले' की रट फिर लगा दी। मेरी समझ से तो तू ही उनके वश में हो गई है। उन्हें तो तूने केवल कहने के लिए वश कर रखा है। यदि तू (वियोग से) इतना दुख पाती है और तेरे नेत्र थोड़े पानी में की मछली की तरह तड़पते हैं तो उन्हें पल भर के लिए भी तू क्यों छोड़ती है? हाथ में चित्र की भाँति लिए ही क्यों नहीं रहती?

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

सूचना—यहाँ 'चित्र' शब्द से 'शिल्पिनी' सूचित है।

शिल्पिनी को वचन कृष्ण सों, यथा—(सवैया)

(४२९) **खोट तुरी जिमि खूँट रहौ गहि ठौर कुठौरनि जानिहू जाहू।**
लाज न आवति मारे समाजन लागें अलोक के ताजन ताहू।
कोटि बिचार बिचारहु केसव **देखहु बूझि हितू सब काहू।**
नेह ही के फिरि लागिहौ संग न नैननि के सँग ओर निबाहू।१८।

१७—उलटी--फिरि तू। तुमहीं०--बस केसव हैं कहिबे कहँ। तौ--पै। पावति--देखति। झीने--हीने, जीने। कत--कहा, कित। १८—खोट-खेट, खोटु, खाटु। जानिहू—जानि न। लाज न-लालन। समाजन—सभाजन। बूझि—बोलि। नेह ही—नेह हू।

शब्दार्थ—खोट = खोटा, शरारती। तुरी = घोड़ा। खूँट = ओर, दिशा। अलोक = बदनामी। ताजन = चाबुक, कोड़ा। ओर निबाहू = अंत तक निर्वाह

भावार्थ—खोटे शरारती घोड़े की भाँति आप जिधर जाते हैं, सीधे चले जाते हैं। ठौर कुठौर को जानकर भी उधर ही जाते हैं। समाज द्वारा मारे गए बदनामी के कोड़े के लगने पर भी लज्जा नहीं आती (आप शोख होते जाते हैं)। अनेक प्रकार के विचारों द्वारा विचार लीजिए तथा जो आपके हितुआ हों उनसे भी पूछ लीजिए, प्रेम के ही साथ लगने से काम बनेगा, नेत्रों का साथ देने से अंत तक निर्वाह नहीं हो सकता (आप नायिका से प्रेम करके भी जो अपने नेत्रों को बेलगाम छोड़े रहते हैं सो ठीक नहीं)।

चुरिहेरिन को वचन राधिका सों, यथा—(कबित्त)

(४३०) **मन मन मिलें कहा मिलिहै मिले को सुख,**
मिलिहू धौं देखहु बोलाइ काहू बाल सों।
भूलि परे भौंहनि हीं बाँधिहौ कितेक दिन,
बाँधौ बलि जाउँ बनमाली बनमाल सों।
मुँह मोरें मारें न मरति रिस केसोदास,
मारहु धौं मेरे कहें कमल सनाल सों।
नैननिहीं बिहँसि बिहँसि कौ लौं बोलिहौ जू,
कबहूँ तौ बोलियै बिहँसि मुख लाल सों।१६।

शब्दार्थ—मन मन मिले = केवल मन से मन मिलाने से। कहा = क्या। भूलि = चूक। बनमाली = श्रीकृष्ण। बनमाल सों = वनमाला से अर्थात् स्वागत करके, आलिंगन करके। कमल सनाल = मृणालयुक्त कमल (हथेली सहित भुजा)।

भावार्थ—केवल मन को मन से मिलाने से मिलाने का क्या सुख मिलेगा? यदि आपको मेरी बात का विश्वास न हो तो आप किसी प्रेम करनेवाली स्त्री को बुलाकर और उससे पूछकर ही समझ लीजिए। यदि नायक से भूल हो जाय तो आप भौंहों से कितने दिनों तक बाँधेंगी? (भौंहें टेढ़ी करने से वे कब तक चूक न करेंगे?)। मैं आपकी बलिहारी जाती हूँ उन वनमाली को वनमाला से बाँधो (उनका स्वागत करो, आलिंगन करो, रूठो मत)। क्या कहीं मुँह मोड़ लेने से प्रेम का रोष मारने के मान का होता है? (नहीं, मुँह फेरने से क्रोध नहीं दबेगा)। यदि आप उन्हें किसी अपराध का दंड देना चाहती हैं तो मेरे कहने से उन्हें मृणालयुक्त कमल से मारिए (अपनी भुजाओं से

१६—हीं-धौं। न मरति-मान रति, नाम मन। मरति०-मारैं रिस केसौदास, रति रिस प्यारेलाल। कबहूँ-बचहू। तौ-धौं।

उन्हें भेंटिए)। केवल नेत्रों से हँस हँसकर कब तक बोलोगी ? नायक से कभी हँसकर मुख से तो बोलो।

सूचना—'सरदार' ने 'वनमाल' का अर्थ 'कुंज' किया है।

चुरिहेरिन को वचन कृष्ण सों, यथा–(सवैया)

(४३१) आपुन ह्वै दुखी दुख जाके सु ताहि कहा कबहूँ दुख दीजै।
जा बिन और सुहाइ न केसव ताहि सुहाइ सु तौ सब कीजै।
भाग बड़े जु रची तुमसों वह तौ बिझकाइ कहौ कह लीजै।
जौ रिस जाइ तौ जैये मनावन तातो है दूध सिराइ तौ पीजै२०।

शब्दार्थ—आपुन० = जिसके दुख से स्वयम् लोग दुखी होते हैं। बिझकाइ = तंग करके, चिढ़ाकर। तातो = गरम। सिराइ = ठंढा हो जाए।

भावार्थ—जिसके दुख से कोई स्वयम् दुखी होता है क्या उसे भी वह कभी दुख देता है ? जिसके बिना और कुछ नहीं अच्छा लगता उसे जो कुछ अच्छा लगे वही करना चाहिए। बड़े भाग्य से तो उसने आपसे प्रेम किया, अब उसे तंग करने से आपको क्या मिलेगा ? जब उसका रोष कुछ हटे तब, आपको मनाने जाना चाहिए (व्यर्थं चिढ़ाने के विचार से जाना ठीक नहीं)। अभी दूध गरम है, ठंढा हो जाए तब उसे पीजिए (अभी वह क्रुद्ध है शांत हो जाय तब उसके पास जाइए)।

अलंकार—लोकोक्ति।

सुनारिन को वचन राधिका सों, यथा–(सवैया)

(४३२) लोल अमोल कटाछ कलोल अलौलिक सों पट ओलि कै फेरे।
पानिप सों अति पैने रसाल बिसाल बने मनभावते मेरे।
केसव चीकने चौगुने चोखे चितै कै भए हरि न्यायनि चेरे।
सोच-सकोचन श्रीरति-रोचन धीरज-मोचन लोचन तेरे।२१।

शब्दार्थ—लोल = चंचल। अमोल = अमूल्य। कलोल = क्रीड़ा। अलौलिक सों=अचंचलता से, स्थिरता से। ओलिकै = आड़ करके। फेरे=चलाए। पानिप = शोभा; पानी। पैने = लपलपाते। चीकने = सुंदर। चौगुने = अत्यधिक। चोखे = धारदार, तीक्ष्ण। न्यायनि = उचित ही; ठीक ही। चेरे = दास। सकोचन=(सोच को) कम करनेवाले। श्री = शोभा। रति=प्रीति। रोचन = बढानेवाले। मोचन = छुड़ानेवाले।

२०—सु--हो। बड़े--बड़ो। बिझकाइ--बिरचाइ, बिरछाइ। कह--कहा। रिस जाइ--रिसियाइ। तौ--त, न। २१—ओलि--खोलि। पैने०--बैन बिसाल। भए--किए। मोचन--मोहन।

भावार्थ—चंचल, अमूल्य, कटाक्षों की क्रीड़ा करनेवाले, पानिप (शोभा; पानी) से अत्यंत लपलपाते, रसयुक्त, विशाल, मेरे मन को भानेवाले सचिक्करण, अत्यंत क्षीरण नेत्र पट (घूँघट) की ओट से ही स्थिरता के साथ जब तूने चलाए और हरि ने तेरी ओर देखा तब सब ही तेरे दास हो गए। तेरे नेत्र सोच को कम करनेवाले शोभा और प्रीति बढ़ानेवाले तथा धैर्य छुड़ा देनेवाले हैं।

सूचना—(१) 'ओलि' के स्थान पर 'खोलि' पाठ भी मिलता है। इस पाठ के द्वारा 'ध्यान से निकालकर' अर्थ करना होगा। नेत्रों पर 'तलवार' का आरोप किया गया है।

(२) 'अमोल', 'पानिप' आदि नाम लेने से 'सुनारिन' है।

सुनारिन को वचन कृष्ण सों, यथा—(कबित्त)

(४३३) **हाँसी में हँसे तें हरि हरें कै झुकति मन-**
हारि कै हँसति हरि हियें अनुरागी है।
प्रेम की पहेली गूढ़ जानत जनावतहीं,
आजु अधरातक लौं मेरे संग जागी है।
अब लौं ज्यों धरी धीर तैसें दिन द्वैक और,
धरौ गिरिधर तुमतें को बड़भागी है।
भावती तिहारी वह कालिह ही तें केसौराय,
काम की कथान कछु कान देन लागी है।२२।

शब्दार्थ—हरें कै=धीरे धीरे। झुकति=सिर नवा लेती है। मनहारि= प्रार्थना। हियें=हृदय में, छाती में। जानत=बूझती। जनावतहीं=बुझाती हुई।

भावार्थ—हँसी में भी हँसने पर धीरे धीरे वह सिर नवा लेती है। प्रार्थना करके तो हँसती (और हँसाती) है। अपनी छाती की ओर देखकर प्रेम प्रकट करती है। आज तो कोई आधी रात तक प्रेम की गूढ़ पहेली बूझती-बुझाती हुई मेरे साथ जागती रह गई। जिस प्रकार अब तक धैर्य रखा उसी प्रकार दो दिन और धैर्य रखो। हे गिरिधर, तुमसे बढ़कर भाग्य-शाली और कोई नहीं। तुम्हारी यह प्रेमिका कल से ही काम-कथा में कुछ कान देने (मन लगाने) लगी है।

रामजनी को वचन राधिका सों, यथा–(कबित्त)

(४३४) **कोमल कमल वे तो अमल ये तिल चल,**
मलिन नलिन नवनील के से पात हैं।

२२—हँसे तें—झकें तें। हरें कै–हरिकै। मनहारि–मन हरि, मन हरे। संग–साथ। धरी०–धीर धरयो। केसौराय–केसोदास

सूधे साधु सुद्ध वे तौ कुटिल प्रसिद्ध ये तौ,
केसव मरम-चोर परम किरात हैं।
पाइहैं पकरि तब पाइहै न कैसेंहू तूँ,
थोरो इठलाति ये तौ अति इठलात हैं।
बरजति क्यों न तो सों कब की कहति, मेरे
मोहन के मनै तेरे नैन छ्वै छ्वै जात हैं।२३।

शब्दार्थ—अमल = स्वच्छ। तिक्ष = तीक्ष्ण। चल = चंचल। नलिन = कमल। पात = पत्र, दल। सूधे = सीधे। साधु = सज्जन। सुद्ध = पवित्र। किरात = भील, दुर्जन।

भावार्थ—(श्रीकृष्ण के मन की शुद्धता और राधिका के नेत्रों की अस्पृश्यता का वर्णन है) श्रीकृष्ण का मन तो कमल की तरह कोमल और स्वच्छ है, पर ये तेरे नेत्र तीक्ष्ण, चंचल, मलिन और नए नीले कमल के पत्र के ऐसे है। वे (श्रीकृष्ण मन से) तो सीधे, सज्जन और पवित्र हैं और ये कुटिल, मर्म (चित्त) को चुरानेवाले एवम् निरे किरात (अत्यंत अपवित्र, दुष्ट) हैं। पर जब वे इसे पकड़ लेंगे (तेरे नेत्र उनके मन में धँस जाएँगे) तब तू इन्हें किसी प्रकार पा न सकेगी (फिर वहाँ से निकलेंगे नहीं) तू तो थोड़ा इठलाती है, पर ये तेरे ये नेत्र अधिक इठला रहे हैं। मैं न जाने कब से तुझे मना कर रही हूँ (पर मना करने पर भी) तेरे ये (कुटिल सिरचढ़े) नेत्र मेरे मोहन के मन को बार बार छू छू जाते हैं (तूने नेत्र तो लगाना आरंभ कर दिया, पर ये लगने पर फिर वश में न रह जाएँगे।

रामजनी को वचन कृष्ण सों, यथा—(सवैया)

(४३५) कौनहूँ तोष कहा भयो केसव कामिनि कोटिक सों हित ठाटें।
रंच न साध सधै सुख की बिन राधिकै आधिक लोचन डाटें।
क्यों खरी सीतल बास करै मुख जौ भखियै घनसार के साटें।
लालच हाथ रहै ब्रजनाथ पै प्यास बुझाइ न ओस के चाटें।२४।

शब्दार्थ—तोष = तृप्ति। हित = प्रेम। ठाटें = करने से। रंच = किंचित् भी। साध = इच्छा। सधै = पूरी हो। आधिक = आधे। डाटें = देखने से। खरी = खड़िया। घनसार = कपूर। साटें = बदले में।

भावार्थ—क्या करोड़ों कामिनियों से प्रेम का ठाट ठटने से आपकी कोई

२३—कमल—अमल। प्रसिद्ध—करम। मरम—परम। मरम-चोर—चितचोर। इठलाति—इतराति। तो सों—तु ही। मनै—नैन। २४—रंचन—रंचक। सधै—सुधै। जौ०—जौ रे भखी।

तृप्ति हो गई ? (निश्चित जानिए कि) राधिका को, आधे ही नेत्र से सही, बिना देखे सुख की इच्छा थोड़ी भी पूरी नहीं हो सकती। यदि कपुर के बदले में (उजली उजला) खरिया खा ली जाय तो क्या वह मुँह को शीतल और सुवासित कर सकती है ? (तुम जो बहुतों से प्रेम कर रहे हो, इसमें) हे ब्रजनाथ, केवल लालच ही हाथ रहेगा (तृप्ति न होगी)। क्या कभी ओस चाटने से भी प्यास बुझती है ?

अलंकार—लोकोक्ति।

संन्यासिनि को वचन राधिका सों, यथा—(कबित्त)

(४३६) छुटै न छुटाएँ जब करिहौ धौं कैसी बात,
केसौदास अनयास प्यास भूख भागिहै।
खेल भूलि जाइगो जुड़ाइगो न चित्त चेति,
कछु ना सुहाइगो री रैनिदिन जागिहै।
ताते तें तपति दूनो सीरे तें सहस गुनो,
उपजि परैगी उर ऐसी और आगि है।
ऐंड सों ऐंडाइ जिन अंचल उड़ात, ओली,
ओड़ति हौं काहू की जु डीठि उड़ि लागिहै।२५।

शब्दार्थ—अनयास = बिना परिश्रम, यों ही। खेल = क्रीड़ा। जुड़ाइगो न० = चित्त को शांति न मिलेगी। चेति = सावधान हो। ताते तें = उष्ण उपचारों से। सीरे = शीतल उपचारों से। और = अन्य, विलक्षण। ऐंड़ = लटक, गर्व की मुद्रा। ओली = चादर, अंचल। ओली ओड़ति हौं = अंचल पसारकर प्रार्थना करती हूँ।

भावार्थ—देख तू ऐंड़ से ऐंड़ा मत, तेरा अंचल उड़ा (हटा) जा रहा है। मैं तुझसे आँचल पसारकर प्रार्थना करती हूँ (ऐसा मत कर)। किसी की दृष्टि आकर लग जाएगी। जब (दृष्टि लग जाएगी और) छुटाने से भी न छूटेगी तब क्या करेगी ? यों ही तेरी प्यास और भूख भाग जाएगी। क्रीड़ा भूल जाएगी, चित्त शांत न रहेगा, सावधान हो जा। फिर कुछ भी अच्छा न लगेगा। रातदिन तू जागती ही रहेगी। हृदय में ऐसी विलक्षण आग उत्पन्न हो जायगी कि उष्ण उपचारों से तो दूनी होगी और शीतल उपचारों से सहस्रों गुनी हो जाया करेगी।

२५—छुटै न-छूटिहै, न छूटिहै। बात-तब। भागिहै-लागिहै। न-री। और-एक। ओली-अति। ओड़ति हौं-जानति हैं। उड़ि-उर।

सूचना—'नजर' लगने और दृष्टि लगने (प्रेम करने) की एक सी ही अवस्था मानी गई है।

संन्यासिनि को वचन कृष्ण सों, यथा—(कबित्त)

(४३७) सीतलहू हीतल तिहारें न बसति वह,
तुम न तजत तिल ताको उर ताप-गेहु।
आपनो ज्यौ हीरा सो पराएँ हाथ ब्रजनाथ,
दैकै तौ अकाथ हाथ मैन ऐसो मन लेहु।
एते पर केसौदास **तुम्हैं न प्रवाह वाहि,**
वहै जक लागी भागी भूख सुख भूल्यो देहु।
माड़ौ मुख छाड़ौ छिन छल न छबीले लाल,
ऐसी तौ गँवारिन सों तुमहूँ निबाहौ नेहु।२६।

शब्दार्थ—हीतल=हृदय। तिल=थोड़ा भी। ताप गेहु=ताप का घर, उत्तप्त। ज्यौ=जी, चित्त। अकाथ=व्यर्थ। मैन=मोम। प्रवाह=(परवाह) चिंता। वाहि=उसे। जक=रट, धुन। माड़ौ=केसर आदि से सुशोभित करते हो।

भावार्थ—छबीले लाल, तुम भी कैसी गँवारिन से प्रेम का निर्वाह कर रहे हो। वह तो तुम्हारे शीतल हृदय में बसती नहीं और तुम उसके उत्तप्त हृदय को क्षण भर के लिए भी नहीं छोड़ते (कितना कष्ट सहते हो)। (आप ऐसे उदार हैं कि) अपना हीरे के ऐसा (मूल्यवान्) मन दूसरे के हाथ देकर व्यर्थ ही उसका मोम के ऐसा (तुच्छ) मन लिये हुए हैं। इतने पर भी आपको तो अपने मन की परवा नहीं, पर उसे अपने मन की धुन लगी है। उसी धुन में उसकी भूख भाग गई है, देह की सुध नहीं, सुख भूला हुआ है। फिर भी तुम (केसर से) उसका मुख सुशोभित करते हो और वह क्षण भर के लिए छल नहीं छोड़ती। (व्यंग्य यह है कि आपका हृदय उसके वियोग से उत्तप्त नहीं, उसे आप भूले हुए हैं, पर वह विरह से जलती हुई भी क्षण भर के लिए आपको नहीं भुलाती। आपने अपना हीरे सा कठोर मन दूसरों को सौंप दिया है और उसका मोम सा कोमल हृदय आपके वश में है। आपको तो अपनी कोई चिंता नहीं पर वह अपने मन की बराबर चिंता करती है, इसी मन की दुर्दशा में भूख मारी गई है, देह की सुधबुध नहीं रह गई है। आपके वियोग में उसका मुँह केसर की तरह

२६—**तजत–तजहु। आपनो–आपने। ज्यौ–जो। सो–को। अकाथ हाथ–अकाथ साथ। मैन०–माखन सो। केसौदास–केसौराइ। देहु–गेहु: माड़ौ०–माँजौ मुख छाजौ।**

पीला पड़ गया, है पर आपके मुख पर आँच भी नहीं—ऐसी नागरी से आप कैसे बुरे ढंग से प्रेम को निबाह रहे हैं !) ।

अलंकार—व्याजनिंदा ।

पटइनि को वचन राधिका सों, यथा—(सवैया)

(४३८) याही कों मेरी गुसाइँनि मैं मिलई पहिलें बतियाँ छलि छैलो ।
बातैं मिलै अँखियाँ मिलई सखियान की आँखिनि पारि कै ऐलो ।
आँखि मिले मुँह लागि रहै मन लेहु मिलै ब गहैं हम गैलो ।
मिले मन माई कहा करिहौ मुहँ ही के मिलें तौ कियो मन मैलो ।२७।

शब्दार्थ—याही को=इसीलिए । छलि छैलो=छैल (नायक), को छलकर । बातैं मिलै=बात हो जाने पर । अँखियाँ मिलई=साक्षात्कार कराया । पारिकै=डालकर । ऐलों=धूल । मुँह लागि रहै=मुँह मिला, बातें करने का अवसर मिला । मन लेहु मिलै ब=अब उनके मन मिला न लो । गहैं हम गैलो=हम अपनी गली पकड़ें । माई=हे सखी ।

भावार्थ—क्या इसी अवसर के लिए मैंने वे सब बातें की थीं ? मैंने नायक को छलकर तुम्हारी बातें मिलाईं (बातचीत पक्की की) । बातें मिल जाने पर सखियों की आँखों में धूल डालकर आँखें मिलाईं (साक्षात्कार कराया) । आँखें मिलने पर मुँह मिला (बातचीत का अवसर मिला) । अच्छा अब मन भी मिला लो, हम अपने रास्ते जाएँ । जब तुमने मुँह के मिलने पर ही मन इतना मैला कर लिया तब मन के मिल जाने पर न जाने क्या करोगी (जिसने इतना उपकार किया उसके साथ यह व्यवहार !) ।

सूचना—(१) मानमोचन कराना चाहती है ।
(२) 'मिलाने' का तारतम्य होने से पटइन भासित होती है ।

पुनः—(सवैया)

(४३९) गेह को नेह की देह की दीबे की भूषन की जिन भूख भगाई ।
मोहिं हँसी-दुख दोऊ दई तिनहीं सों जनावति है चतुराई ।
केसवदास **बड़ाई बई तौ कहा भयो जाति-सुभाव न जाई ।**
सोने सिँगारहु सोंधे चढ़ावहु पीतर की पितराई न जाई ।२८।

शब्दार्थ—दीबे की=देने की, धन दे सकने की शक्ति । भूषन=आभूषण । हँसी=आनंद । दई=हे दैव । सोंधै=सुगंध ।

२७—लागि०—सों मिलिहै । लेहु—नेहु । मिले०—माई मिले मन का । तौ—तें, जो । २८—की—के । की—के । की—के । दीबे—दीखे । को—के । भगाई—भराई । केसवदास-केसवराइ । तौ—सो । जाति—जान । चढ़ावहु—बिमायन ।

भावार्थ—जिन्होंने घर, प्रेम, शरीर, धन और आभूषण की तेरी भूख मिटा दी, मुझे हँसी भी आती है और दुख भी होता है कि हे ईश्वर, आज तू उन्हीं से चतुराई कर रही है। भला तुझे इतनी बड़ाई दी भी गई तो क्या हुआ, कभी भी जाति-स्वभाव नहीं जाता। पीतल को चाहे सोने से सिंगारा जाय चाहे उस पर सुगंध का लेप ही क्यों न किया जाय उसकी पितराई (दुर्गुण) जाती नहीं।

अलंकार—लोकोक्ति।

सूचना—सरदार ने लिखा है—'याही पेंच तें केशव सामान्या कहि चुके······हमारे शिष्य नारायण कवि को भ्रम भयो कि यह कबित्त और को है।'

हस्तलिखित प्रतियों में भी यह छंद मिलता है। हाँ, लीथोवाली प्रति में यह नहीं है। छंद 'केशव' का ही जान पड़ता है। धन और भूषणादि की इच्छा पूर्ण करने की बात होने से इसमें सामान्या ही नायिका होगी।

पटइनि को वचन कृष्ण सों, यथा—(सवैया)

(४४०) वा मृगनैनी ज्यों औरनहीं जु लगावत हौ मुँह ऐसे न हूजै।
सोनेंई सी सुनपीतर होइ तौ केसव कैसहुँ हाथ न छूजै।
आप गिरा गुन जौ सिखवै तऊ काक न कोकिल ज्यों कल कूजै।
सुंदर स्याम बिराम करौ कछु आम की साध न आमिली पूजै।२६।

शब्दार्थ—ज्यों = भाँति। सुनपीतर = घटिया पीतल। गिरा = सरस्वती। काक = कौआ। न कल कूजै = सुंदर स्वर से नहीं बोलता। बिराम करौ = रुको, अपने कार्य बंद करो। साध = प्रबल इच्छा।

भावार्थ—उस मृगनयनी की भाँति आप जो अन्य स्त्रियों को मुँह लगाते हैं, एसा न होना चाहिए। सोने की तरह सोनपीतल भी होता है पर उसे कोई हाथ से नहीं छूता। यदि स्वयम् सरस्वती (बोलने का) गुण सिखाए तो भी कौआ कोयल की तरह सुंदर वाणी नहीं बोलता। इसलिए हे श्यामसुंदर, अब आप अपनी करतूत बंद करें। क्या कभी आम की इच्छा इमली पूर्ण कर सकती है?

अलंकार—लोकोक्ति।

(दोहा)

(४४१) बैन ऐन-सुख मैन करि, कहे सखिनि के धर्म।
केसव कहौं कछूक अब तिनके कोबिद कर्म।३०।

२६—सोनेंई०—सोने सो जो कहूँ पीतर। होइ—होहि। धर्म-नर्म, मर्म, कर्म।

शब्दार्थ—ऐन =(अयन) घर । ऐन-सुख = सुख का घर, सुखदायक । मैन=(मदन) काम । कोविद = चातुर्यपूर्ण ।

इति श्रीमन्महाराजकुमार इंद्रजीतविरचितायां रसिकप्रियायां
सखीजनवर्णनं नाम द्वादशः प्रभावः ।१२।

त्रयोदश प्रभाव

अथ सखीजनकर्म-वर्णन—(दोहा)

(४४२) सिच्छा, विनय, मनाइबो, मिलवै करि सिंगार।
झुकि अरु देइ उराहनो, यह तिनको ब्योहार ।१।

शब्दार्थ—सिक्षा=सीख । मिलवै = मिलाती है । झुकि = क्रुद्ध होकर ।

राधिका सों शिक्षा—(सवैया)

(४४३) नाह लगें मुख सौति दहै दुख, नाहिं लगें दुख देह दहैगो ।
नाहीं अबै सुख देति है केसव, नाह सदा सुख देत रहैगो ।
नाही तें नाही री नाहीं भलाई, भली सब नाह ही तें पै कहैगो ।
नाह सों नेह निबाहि बलाइ ल्यौं; नाहीं सों नेह कहा निबहैगो।२।

भावार्थ—(मानवती नायिका को सखी शिक्षा दे रही है) हे सखी, पति के मुख लगने पर (प्रेम करने पर) दुःख सौतों को जलाता है और यदि 'नहीं' मुख लगेगी तो वही दुख तेरे शरीर को जलाएगा । 'नहीं' केवल इस समय सुख देती है और पति सदा सुख देता रहेगा । 'नहीं' से भलाई नहीं है, नहीं है । पति के अनुकूल रहने से ही सब भली कहेंगे । इसलिए मैं तेरी बलैया लेती हूं तू नायक से प्रेम का निर्वाह कर, 'नहीं' से भला क्या प्रेम मिलेगा ।

सूचना—यहाँ देह को केशव ने संस्कृत के अनुकूल पुंलिंग ही रखा है ।

कृष्ण की शिक्षा—(कबित्त)

(४४४) कुंकुम उबटि कुमकुमा के न्हवाइ जल,
सोंधो सिर लाइ याहि लाए कहा रास में ।
चंदन चढ़ाइ फूलमाल पहिराइ भूलि,
वेही काज आँजि मौंलि कीनी है प्रकास में ।

१—वर्णन-कथन । मिलवै-मिलिबो, मिलवहि । करि-करहि । सिंगार-सिंगार । अरु-के । २—राधिका सों-नायिका सों सिखा सखी को, राधिका की सिक्षा प्रकास । दुख देह-मुख देह । तें-री । री-तें । भली-बलो । ही तें-हिते । बलाइ ल्यौं-री बावरी ।

केसव कपूर पूरि काहे कौं खवावौ पान,
जौ पै मन मगन है ऐसे ही बिलास में।
वाहि न मनावौ हरि हाहा करि पाइ परि,
सब ही सुबास बसै जाके मुखबास में।३।

शब्दार्थ—कुंकुम=केसर। उबटि=मलकर। सोंधो सिर लाइ=सिर में सुगंध लगाकर। आँजि माँजि=अंजन लगाकर साफ सुथरी करके, शृंगार करके। प्रकास में=सबके समक्ष। पूरि=डालकर। बिलास=आनंद। वाहि=उसे (अन्य नायिका को)।

भावार्थ—केसर का उबटन लगाकर और केसर के ही जल से स्नान कराके सिर में सुगंध लगाकर इसे रास में क्यों ले आए हो? चंदन चढ़ाकर और फूलमाला पहनाकर, भूल करके बिना किसी मतलब के इसे सँवार-सिंगार कर प्रकाश में किया है (सबके सामने लाए हो)। पान में कपूर डालकर उसे क्यों खिलाते हो, यदि आपका मन ऐसे ही विलास में मग्न है तो आप जाकर और पैरों पड़कर विनय करके उसे क्यों नहीं मनाते जिसके मुख की सुगंध में सब प्रकार की सुगंध मिलती है। (व्यंग्य यह है कि तुम दिखाने को तो आप अपनी नायिका लेकर आए हो, पर तुम्हारी दृष्टि में कोई और स्त्री है, उसे ही जाकर सँवारिए सिंगारिए)।

राधा सों विनय—(सवैया)

(४४५) ऐसेंही क्यों चुप ह्वै रहिहौं सखि हौं सहिहौं सतराहट सौ लौं।
क्यों सरिहै मिलिबे बिन तोहि तऊ मिलियै मिलियै दिन जौ लौं।
केसव कोरि करौ उपचार मिलै को कहा मिलिहै सुख तौ लौं।
देखि धौं अंगनि आरसी लै मिलिहै पिय सों मन ही मन कौ लौं।४।

शब्दार्थ—सतराहट=झिड़की। सौ लौं=सौ तक (अनेक)। सरिहै=(काम) चलेगा। मिलियै दिन जौ लौं=जब तक मिलने का दिन मिले। उपचार=उपाय।

भावार्थ—मैं इस प्रकार कैसे चुप रहूँगी। मैं तो तेरी सैकड़ों तक झिड़कियाँ सहूँगी और वही बारबार कहूँगी)। बिना मिले तेरा काम कैसे चलेगा। तब तक मिलते रहना चाहिए जब तक मिलने का दिन (मौका)

३—कुंकुम०-कुंकुम जवादिभेद। कुमकुमा०—कुमकुमा के नहवाइ, कुंकुमान अन्हवाइ। फूलमाल—फूलि फूल, फूले फूल, पुनि फूल। आँजि-आज। जौ पै०-मन जो मगन है जू। ऐसेंही-ऐसेई, वैसेई। ४—हौं सहिहौं=होत कहा। तऊ०-तऊ मिलिहै। देखि०-देखियै। मिलिहै-मिलिहौ।

मिलता जाय। इस प्रकार चाहे करोड़ों उपाय करो, पर मिलने का सुख तब तक मिल ही नहीं सकता (जब तक मिला न जाय)। थोड़ा दर्पण लेकर अपने अंगों को तो देख ले (दुबली होती जा रही है)। इस प्रकार प्रिय से मन ही मन कब तक मिलती रहेगी ?

कृष्ण सों विनय—(कबित्त)

(४४६) कंज कैसे फूले नैन दार्‌यौं से दसन ऐन,
बिंब से अधर, हास सुधा सो सुधार्‌यो है।
बेनी पिकबैनी की त्रिबेनी सी बनाइ गुही,
बार कै सेवार करिहाँ कों करि हार्‌यो है।
कीने कुच अमल कलपतरु के से फल,
केसौदास यातें बिधि मुगध बिचार्‌यो है।
देखौ न गुपाल सखी मेरी को सरीर सब,
सोने सों सँवारि सब सोंधे सों सँवार्‌यो है।५।

शब्दार्थ—दार्‌यौं = (दाड़िम) अनार। ऐन = ठीक। बिंब = बिंबाफल, कुँदरू। सुधार्‌यो = बनाया हुआ (आनंददायक)। बेनी = वेणी, चोटी। पिकबैनी = कोयल के से कंठ (वाणी) वाली। कै = करके।

भावार्थ—उसके नेत्र कमल के से हैं, दाँत ठीक अनार (के दाने) की भाँति हैं, ओठ बिंबाफल से हैं और हँसी अमृत के समान आनंददायक है। उस कोकिल के से कंठ वाली की चोटी त्रिवेणी (गंगा, यमुना, सरस्वती के संगम) की भाँति, केश सेवार के से करके ब्रह्मा कमर बनाते बनाते अंत में हार ही बैठा। उसने कल्पवृक्ष के सुंदर फलों के से उसके कुच बनाए हैं, इसलिए ब्रह्मा (अपनी) उस सृष्टि पर स्वयम् मुग्ध है। इसलिए हे गोपाल आप मेरी सखी का शरीर देखिए न! मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि वह (शरीर) सोने से बनाया गया है और सुगंध से सँवारा गया है (सोने में सुगंध नहीं होती, पर उसका शरीर देखकर ऐसा जान पड़ता है कि सोना और सुगंध दोनों एकत्र हैं)।

राधा को मनाइबो—(सवैया)

(४४७) 'नाहीं' सिखावति नाहीं भली सखि पावक सों तिनको मुँह डाढ़ौ।
भौंहनि के भुलवौ भटू भावनि नैननि के मत सों हित बाढ़ौ।

५—कंज–मुख। बिंब–लाल। गुही–बीर। बार० बार सौ बारीक, धार सो बारीक, बार ज्यों सिवार। अमल०–अमल अमलका के फल के से। सब सोंधे-मनौं मैन, मनु मैन, मानो मैन। सँवार्‌यो–सुधार्‌यो।

कालि तें कालि कै होन दई हँसी, पाइ परों न परौ मुँह काढ़ौ।
राज करौ यह राज सदा रहै केसव **चित्र ज्यों आगे ही ठाढ़ौ।६।**

भावार्थ—जो 'नहीं' सिखाती हैं वे भली नहीं हैं। 'नहीं' सिखानेवाली स्त्रियों का मुख आग से जला दो। भौंहों के (इस रोष भाव) को भुला दो, नेत्रों के अनुकूल चलकर प्रेम बढ़ाओ। कल-कल करके तो तुमने खूब अपनी हँसी होने दी। पैरों पड़ती हूँ अब पड़ी (लेटी) न रहो अपना मुँह (चादर में से) बाहर निकालो। चलो रजो राजो, तुम्हारा यह राज सदा रजा रहे और चित्र की भाँति ज्यों का त्यों आगे खड़ा रहे।

सूचना—हस्तलिखित प्रति में और सरदार की टीका में यह छंद मिलता है, पर लीथोवाली प्रति में नहीं है। सरदार ने लिखा है—'यह कबित्त प्राचीन पुस्तकन में नाहीं मिलत तातें नारायण कवि नहीं लिख्यो।

पुनः—(सवैया)

(४४८) रीझि रिझाइ झरोखनि झाँकि रही मुख देखि दिखाइ सुभाहीं।
बोलन आएँ अबोली भई अब केसव **ऐसी हमैं न सुहाहीं।**
मैं बहुतै बहराई हैं तो सी तू बहरावति मोहिं बृथाहीं।
एहीं समान सदा चलिहौ हरि सों हँसि 'हाँ' करै मोहीं सों नाहीं।७।

शब्दार्थ—रीझि = मुग्ध होकर। रिझाइ = मुग्ध करके। सुभाहीं=स्व-भावतः, प्रकृत्या। बोलन = बोलने के लिए। अबोल = मौन। बहराई = भुलावा दिया। सयान = चतुराई।

भावार्थ—स्वयम् मुग्ध होकर और नायक को मुग्ध करके झरोखों से झाँक कर स्वभावतः उनका मुख देख रही है और अपना दिखा रही है। पर जब यहाँ बोलने के लिए आते हैं तब चुप्पी साध लेती है। मुझे ऐसी स्त्रियाँ अच्छी नहीं लगतीं। तेरी ऐसी बहुतों को मैंने भुलावा दिया है, पर तू जो मुझे भुलावा देना चाहती है वह व्यर्थ है। क्या सदा तेरी यही चतुराई चलती रहेगी ? कैसी विलक्षण है कि नायक से तो हँसकर 'हाँ' करती है और मुझसे 'नहीं'।

कृष्ण को मनाइबो—(सवैया)

(४४९) भूषन-भेद बनाइकै केसव **फूल बनाइ बनाइकै बागे।**
भाग बढ़ाइ सुहाग बढ़ाइकै राग बढ़ाइ हियें अनुरागे।

६—**पावक-जावक। सों-लौं। होन-दीन। न परो-तन प्यौ। यह जहूँ। राज**—आज। आगे०—आग ही डाढ़ो। ७—**री-पै। एहीं-याही, ऐसे। करै-करि। मोहीं-मोंहि, मोहू।**

पाइनि लागत सोंधो चढ़ावत पान खवावतहीं निसि जागे ।
कान्ह चलौ उठि बैठे कहा ? मन मूसि परायो ब रूसन लागे ।८।

शब्दार्थ—भूषन-भेद = विविध प्रकार के गहने । बनाइकै = सजाकर । बागे = वस्त्र । राग = प्रेम । सोंधो = सुगंध । मूसि = चुराकर । रूसन लागे = रूठने लगे ।

भावार्थ—उस समय का तो ध्यान कीजिए जब विविध प्रकार के गहनों, पुष्पों और वस्त्रों से सजकर उसे आकृष्ट करने के लिए आया करते थे । भाग्य, सोहाग और प्रेम को बढ़ाकर हृदय से उस पर अनुरक्त हुए । पैरों पड़ते, सुगंध-द्रव्य लगाते और पान खिलाते हुए ही तुम रात रात भर जागते रह जाते थे । अतः हे कृष्ण, उठकर चलिए । यहाँ क्या बैठे हैं, दूसरे का मन चुराकर अब रूठने चले हैं ?

राधा को मिलैबो—(सवैया)

(४५०) दुर्लभ देवनिहूँ कों सु तौ हरि को मन हाँ सिन ही हरि लीनो ।
टारहु जैं हिय तें कबहूँ अब ज्यों गुरु को दियो मंत्र प्रबीनो ।
लेत लियो तौ न देत दियो अब मानहु ता दिन दुख्ख नवीनो ।
माँगन आवै तौ दीजै भटू अपनो मन, जौ वह जाइ न दीनो ।९।

शब्दार्थ—जैं = (जिन) मत । लेत० = लेते समय तो बड़े आनंद से उसे ले लिया, पर अब वह दिया नहीं जाता, प्रत्युत देने में एक नया दुःख ही खड़ा हो जाता है । अतः यदि माँगने आएँ तो श्रीकृष्ण को चाहे उनका मन मत लौटाना पर अपना मन दे देना ।

सूचना—यह छंद सरदार की टीका में तो है, पर उन्होंने लिखा है—'यह कबित्त केशव को नाहीं तातें नारायण कवि नाहीं लिखो' । हस्तलिखित प्रतियों में भी यह छंद है । लीथोवाली प्रति में नहीं है । इसमें केशव की छाप नहीं है ।

पुनः—(सवैया)

(४५१) आजु देवारि की राति जौ कीजै तौ आजु के द्यौस लौं ह्वै है सभागी ।
बात सुनी जननी पै जबै तब ही मति मान की [illegible] जागी ।
अंग सिँगारि निहारि निसा तिन चित्तबिहारनि सों अनुरागी ।
[illegible]प दै देवनि जाइ [illegible] [illegible] [illegible]सवराय [illegible] खेलन लागी ।१०।

[illegible]—[illegible] । चढ़ावत—लगावत । निसि०—रसपागे । परायो ब—परायो सु । ९—मन—पुन । ही—[illegible] । हरि—हठि । जैं—जो । तौन देत०—तौन मानहु सों मानिहौ तादिन । दुख्ख—दुस्ट । १०—पुनः—मध्य को मिलैबो । तौ—सु । जबै—जबों । केसवराय—केसवदास ।

शब्दार्थ—आजु के० = यदि दीवाली की रात सानंद मनाई जाय तो अगले वर्ष की दीवाली तक अच्छे दिन बीतते हैं। पै = से। मति० = बुद्धि मान की निद्रा से जाग उठी, मान छोड़कर बुद्धि कल्याण-साधन में लगी। चित्त-बिहार = मनोरंजन।

सूचना—इस छंद के विषय में भी सरदार लिखते हैं—'पूर्ववत् यह भी अन्य को बनायो है। तातें नारायण कवि तिलक नाहीं लिख्यो।'

राधिका को मिलैबो—(कवित्त)

(४५२) जौ हौं गनौं औगुननि तौ तूँ गनै गुनगन,
जौ हौं गनौं गुन तौ तूँ औगुन के गन में।
केसौदास ऐसें प्रीति छिपावति छलनि में,
जैसें छनछबि छूटै छिपै जाइ घन में।
भारी है निठुर निसि भादों की भयावनी में,
सु क्यों बसै घर जाको पीउ बसै बन में।
बैठे तें उठावै, उठि चले तें मचलि रहै,
सोई मेरी क्यों न कहै जोई तेरे मन में।११।

शब्दार्थ—छनछबि = बिजली। ऐसें० = तू अपनी प्रीति छल करके ऐसे छिपाती है जैसे बिजली चमकती है, पर बादल में छिप जाती है। तेरे प्रेम की केवल झलक मिलती है। जौ हौं०=मैं प्रिय के अवगुणों को गिनती हूँ तो तू गुण गिनती है, मैं गुण गिनती हूँ तो तू अवगुण गिनती है। सु क्यों० = जिसका प्रिय वन में बसता है वह घर में कैसे बस सकेगी। मेरी = मेरी (प्यारी)। उठि० = यदि उठकर चलती हूँ तो न जाने देने के लिए मचलने लगती है। जो तेरे मन में है वह क्यों नहीं कहती (कि मुझे प्रियतम से ले चलकर मिला दे)।

कृष्ण को मिलैबो—(कवित्त)

(४५३) सिखै हारी सखी डरपाइ हारी कादंबिनी,
दामिनी दिखाइ हारी दिसि अधरात की।
झुकि झुकि हारी रति मारि मारि हार्‌यो मार,
हारी झकझोरति त्रिबिध गति बात की।

११—राधिका-प्रिया। औगुननि-औगुन। गुनगन-गुनन गन। औगुन के गन में-अगुनं गनन में। केसौदास—केसौराइ। ऐसें—ऐसी। छनछबि—छन-रुचि। छनछबि०—छिनछबि छूटि छिपै जाइ घन मैं, छिन छूटि छबि छिपै छुटि घन मैं। सु क्यों—कैसे। तें मचलि०—तहीं बैठि रहै। मेरी०—क्यों न कहै बीर, क्यों न कहै प्यारी।

पाइनि लागत सोंधो चढ़ावत पान खवावतहीं निसि जागे ।
कान्ह चलौ उठि बैठे कहा ? मन मूसि परायो ब रूसन लागे ।८।

शब्दार्थ—भूषन-भेद = विविध प्रकार के गहने । बनाइकै = सजाकर । बागे = वस्त्र । राग = प्रेम । सोंधो = सुगंध । मूसि = चुराकर । रूसन लागे = रूठने लगे ।

भावार्थ—उस समय का तो ध्यान कीजिए जब विविध प्रकार के गहनों, पुष्पों और वस्त्रों से सजकर उसे आकृष्ट करने के लिए आया करते थे । भाग्य, सोहाग और प्रेम को बढ़ाकर हृदय से उस पर अनुरक्त हुए । पैरों पड़ते, सुगंध-द्रव्य लगाते और पान खिलाते हुए ही तुम रात रात भर जागते रह जाते थे । अतः हे कृष्ण, उठकर चलिए । यहाँ क्या बैठे हैं, दूसरे का मन चुराकर अब रूठने चले हैं ?

राधा को मिलैबो—(सवैया)

(४५०) दुर्लभ देवनिहूँ कों सु तौ हरि को मन हाँसिन ही हरि लीनो ।
टारहु जैं हिय तें कबहूँ अब ज्यों गुरु को दियो मंत्र प्रबीनो ।
लेत लियो तौ न देत दियो अब मानहु ता दिन दुक्ख नवीनो ।
माँगन आवै तौ दीजै भटू अपनो मन, जौ वह जाइ न दीनो ।९।

शब्दार्थ—जैं = (जिन) मत । लेत० = लेते समय तो बड़े आनंद से उसे ले लिया, पर अब वह दिया नहीं जाता, प्रत्युत देने में एक नया दुःख ही खड़ा हो जाता है । अतः यदि माँगने आएँ तो श्रीकृष्ण को चाहे उनका मन मत लौटाना पर अपना मन दे देना ।

सूचना—यह छंद सरदार की टीका में तो है, पर उन्होंने लिखा है—'यह कबित्त केशव को नाहीं तातें नारायण कवि नाहीं लिखो' । हस्तलिखित प्रतियों में भी यह छंद है । लीथोवाली प्रति में नहीं है । इसमें केशव की छाप नहीं है ।

पुनः—(सवैया)

(४५१) आजु देवारि की राति जौ कीजै तौ आजु के द्योस लौं ह्वै है सभागी ।
बात सुनी जननी पै जबै तब ह्वा म[illegible]त मान की नींद [illegible] जागी ।
अंग सिँगारि निहारि निसा तिन चित्तबिहारनि सों अनुरागी ।
[illegible]प दै देवनि जाइ [illegible] मिलि [illegible]सवराय सों खेलन लागी ।१०।

[illegible]—आ[illegible] । चढ़ावत—लगावत । निसि०—रसपागे । परायो ब—परायो सु । ९—मन-पुन । ही—ह । हरि-हठि । जैं-जो । तौन देत०—तौन मानहु सों मानिहौ तादिन । दुक्ख—दुस्ट । १०—पुनः—मध्य को मिलैबो । तौ-सु । जबै-जहीं । केसवराय—केसवदास ।

शब्दार्थ—आजु के० = यदि दीवाली की रात सानंद मनाई जाय तो अगले वर्ष की दीवाली तक अच्छे दिन बीतते हैं। पैं = से। मति० = बुद्धि मान की निद्रा से जाग उठी, मान छोड़कर बुद्धि कल्याण-साधन में लगी। चित्त-बिहार = मनोरंजन।

सूचना—इस छंद के विषय में भी सरदार लिखते हैं—'पूर्ववत् यह भी अन्य को बनायो है। तातें नारायण कवि तिलक नाहीं लिख्यो।'

राधिका कों मिलैबो—(कबित्त)

(४५२) जौ हौं गनौं औगुननि तौ तूँ गनै गुनगन,
जौ हौं गनौं गुन तौ तूँ औगुन के गन में।
केसौदास ऐसें प्रीति छिपावति छलनि में,
जैसें छनछबि छूटै छिपै जाइ घन में।
भारी है निठुर निसि भादों की भयावनी में,
सु क्यों बसै घर जाको पीउ बसै बन में।
बैठे तें उठावै, उठि चले तें मचलि रहै,
सोई मेरी क्यों न कहै जोई तेरे मन में।११।

शब्दार्थ—छनछबि = बिजली। ऐसें० = तू अपनी प्रीति छल करके ऐसे छिपाती है जैसे बिजली चमकती है, पर बादल में छिप जाती है। तेरे प्रेम की केवल झलक मिलती हे। जौ हौं० = मैं प्रिय के अवगुणों को गिनती हूँ तो तू गुण गिनती है, मैं गुण गिनती हूँ तो तू अवगुण गिनती है। सु क्यों० = जिसका प्रिय वन में बसता है वह घर में कैसे बस सकेगी। मेरी = मेरी (प्यारी)। उठि० = यदि उठकर चलती हूँ तो न जाने देने के लिए मचलने लगती है। जो तेरे मन में है वह क्यों नहीं कहती (कि मुझे प्रियतम से ले चलकर मिला दे)।

कृष्ण को मिलैबो—(कबित्त)

(४५३) सिखै हारी सखी डरपाइ हारी कादंबिनी,
दामिनी दिखाइ हारी दिसि अधरात की।
झुकि झुकि हारी रति मारि मारि हार्‍यो मार,
हारी झकझोरति त्रिबिध गति बात की।

११—राधिका-त्रिया। औगुननि-औगुन। गुनगन-गुनन गन। औगुन के गन में-अगुनै गनन में। केसौदास-केसौराइ। ऐसें-ऐसी। छनछबि-छन-रुचि। छनछबि०-छिनछबि छूटि छिपै जाइ घन मैं, छिन छूटि छबि छिपै छुटि घन मैं। सु क्यों-कैसे। तें मचलि०-तहीं बैठि रहै। मेरी०-क्यों न कहै बीर, क्यों न कहै प्यारी।

दई निरदई दई याहि काहे ऐसी मति,
जारति जु रैनदिन दाह ऐसे गात की।
कैसेंहूँ न मानै हौं मनाइ हारी केसौराय;
बोलि हारी कोकिला बुलाइ हारी चातकी ।१२।

शब्दार्थ—कादंबिनी=मेघावली, बादलों की घटा। झुकि=क्रोध करके। बात =वायु।

भावार्थ—सखियाँ उसे शिक्षा देकर हार मान बैठीं। मेघों की घटा छाकर उसे डरवाकर हार गई। दिगंत में आधी रात के समय चमकनेवाली बिजली अपनी दमक दिखाकर हार गई। रति कुपित हो होकर हार गई, कामदेव अपनी मार मारकर थक गया। त्रिविध (शीतल, मंद, सुगंध) वायु की गति भी उसे झिझोड़कर शांत हो बैठी। न जाने उस निर्दय दैव ने उसे कैसी बुद्धि दी है कि वह रातदिन कोमल शरीर को ऐसी जलन से जला रही है। यह तो किसी प्रकार भी मानती ही नहीं। कोयल बोलते बोलते चुप हो गई। चातकी भी 'पी पी' करके उसे बुला न सकी। यहाँ तक कि उसकी सखी होकर भी मैं मनाते मनाते ऊब गई, पर उसने न माना, न माना (अब यदि आप चलकर मनाएँ तो कदाचित् मान जाय)।

राधिका को शृंगार—(सवैया)

(४५४) दीनो मैं पाइ झँवाइ महावर आँज्यो मैं आँजन आँखि सुहाई।
भूषन भूषित कीने मैं केसव माल मनोहर मैं पहिराई।
दर्पन लै अब दीपति देखि सखी, सब अंग सिँगारि सिधाई।
वंक बिलोकनि, अंक लै पान खवावै को कान्ह-कुमार की नाई ।१३।

शब्दार्थ—दीनो मैं०=मैंने पैरों को झाँवें से रगड़कर महावर लगा दिया। आँज्यो=(आँखों) में अंजन लगाया। आँज्यो मैं० = मैंने सुंदर आँखों में अंजन भी लगा दिया। हू = भी। कर = हाथ में। देखि = देखो। सिधाई = भोले भाले ढंग से (मैंने)। बंक बिलोकनि० = अब तिरछी दृष्टि करके तुझे गोद में लेकर श्रीकृष्ण की तरह भला पान कौन खिलाए (मुझ सीधी सादी से तो वैसी मुद्रा हो नहीं सकती, तू उन्हीं के पास चल। वे ही तुझे इस प्रकार से पान खिलाएँगे)।

कृष्ण को शृंगार—(सवैया)

(४५५) पाग बनी अरु बागो बन्यो पटुआ पटुका कटि राजत नीको।
सोंधो बन्यो अति चारु चढ़ावत हार बन्यो उर भावतो जीको।

१२—दिसि-निसि। झुकि झुकि-झकी झुकि। याहि-वाहि। काहि-काहे। निरदई०-निरदई वाहि ऐसी कहि मति दई। दिन-ऐन। ऐसे-ऐसी। हौं-ही। केसौराय-केसौदास। १३—आँज्यो-आंजो। मैं-हू, ही पै। अब-कर।

बीरा बन्यो मुख खात मनोहर, मोहिं सिँगार लग्यो सब फीको।
भाल भली बिधि जौ लौं गुपाल कियो उहिं बाल बनाइ न टीको।१४।

शब्दार्थ—पाग = पगड़ी। बनी = शोभित हुई। बागो = अँगरखा। पटुआ = दुपट्टा। पटुका = कमर में बाँधने का वस्त्र। सोंधो = सुगंध। बीरा = पान का बीड़ा। वह बाल=राधिका।

भावार्थ—(आपकी पगड़ी भी बनी है, अँगरखा भी छजता है, गले का दुपट्टा भी ठीक बन गया, कमर में कसा हुआ पटका भला लगता है। (चंदन का लेप अंगराग आदि) चढ़ाते समय सुगंध की व्यवस्था भी ठीक बन गई, वक्षःस्थल पर मन को भानेवाला हार भी ठीक बन गया। पान का बीड़ा मुँह में खाते समय खूब छजा, पर मुझे तो तब तक ये सब शृंगार फीके लगते हैं जब तक उस नायिका ने आपके ललाट पर भली भाँति रचकर टीका नहीं लगाया (चलिए उससे टीका लगवा आइए)।

सूचना—हस्तलिखित प्रति में निम्नलिखित एक छंद और मिलता है—

मुग्धा को मिलैबो-(सवैया)

ऊजरू है यह गाउँ भटू मुँह कान्ह को नाउँ जु लीजत पैहै।
जानै को मारी तू कौनहि का करी को है रे छैल छबीली जौ तैं है।
बात सँभारि कहौ सुनिहै कोउ आगि लगावौं कोऊ जल दैहै।
कान्ह ही मारी तो बारी है बावरी तू उनको कैसे मारि सकै है।

राधा को झुकिबो-(कवित्त)

(४५६) **फिरि फिरि फेरि फेरि फेर्यो मैं हरी को मन,**
मन फेरें फिरी पुनि भाग की भली घरी।
पल पल पाइनि परति हुती जिनकें सु,
पार्यो पीय तेरें पाइ पी के पाइ हौं परी।
बड़िनि की बेटिनि की बड़ीये बड़ाई मेटि,
केसौदास **बड़ेन में जौ तूँ हौं बड़ो करी।**
हौं तौ जानी मनाएँ तें मेरो गुन मानिहै, मैं
ताहि क्यों मनाई तैं जु मोहीं सों-मनी धरी।१५।

१४—पटुआ—बटुआ। कटि राजत-कटरा कटि। चढ़ावत-मनोहर। **भावतो-भावत। बीरा-बीरी। कियो-दियो। उहिं-वह। १५—परति०-परिहु तिय। बड़िनि०--बड़ी बड़ी बधुन। बड़ेन०--बड़ेनहू में जो तू मैं। जानी-जान्यौ, जानो। मनाएँ०--मन में तूँ। मैं--हौं। मनाई० - मनाइहौं जो मोहूँ। मनी०—भली करी।**

शब्दार्थ—झुकिबों = मान करना। हुती—थी। गुन मानिहैं = एहसान मानेगी, कृतज्ञ होगी। मनी = (मन्यु) अभिमान, गर्व। मोहीं सों मनी धरी = मुझसे ही तूने अभिमान कर रखा है।

भावार्थ—बारंबार फेरते फेरते मैंने किसी प्रकार श्रीकृष्ण का मन फेर लिया, उनके मन के बदल जाने से भाग्य की भली घड़ी हुई (तेरा भाग्य जागा)। क्षण क्षण पर जिनके पैरों पर तू पड़ा करती थी, उन्हें लाकर तेरे पैरों पर गिराया, मैं स्वयम् उनके पैरों पर गिरी। बड़ी प्रतिष्ठित जाति की बेटियों की बड़ी बड़ाई को हटाकर मैंने बड़ों में भी तुझे बड़ा बनाया। इतने उपकार के बाद मैं तो मन में यह समझती थी कि तू मेरा उपकार मानेगी (पर तूने सब पर पानी फेर दिया)। अब मैं भला उसे किस प्रकार मनाऊँ, जब इतना उपकार करने पर भी तू मुझी से अभिमान कर रही है।

पुनः-(सवैया)

(४५७) केसवराय **बुलावत हैं चित चारु बिलोचन नीचे करौ जू।**
कालि करै बर एक बिसौ परौं बीसबिसे ब्रत तें न टरौ जू।
आगि लगै तेरे कालि के सीस, परौं पर जाइ बजागि परौ जू।
आज मिलौ तौ मिलौं अबराजहि नाहिं तौ नीके है राज करौ जू[१६]

शब्दार्थ—कालि करै=कल करे। बर = अच्छा। कालि करै० = यदि कल ही कल उनसे मिलो तो अच्छा। एक बिसौ=थोड़ा ही निश्चय। परौं=परसों। बीसबिसे = बीसों बिस्वा, पूर्ण निश्चय। बजागि = बज्राग्नि, भयंकर अग्नि।

भावार्थ—(सखी कहती है कि) श्रीकृष्ण बुला रहे हैं, चित्त को सुंदर लगनेवाले नेत्रों को थोड़ा नीचे तो करो (मेरी ओर तो देखो, क्रोध से नेत्रों को चढ़ाए मत रहो) एक बिस्वा अच्छा हो कि कल मिल लो, यदि कल मिलने का पूरा निश्चय न हो तो परसों तो इस (मिलन) व्रत से एकदम मत टलो (अवश्य मिलो)। (इस पर नायिका बिगड़कर कहती है) तेरे कल के सिर में आग लगे और परसों में फूँका पड़े (भयंकर आग लगे)। (तब सखी कहती है) आज मिलना हो तो श्रीकृष्ण से मिल लो, नहीं तो अपना राज रजो (फिर उनसे मिलने की आवश्यकता ही नहीं)।

सूचना—यह छंद सरदार की टीका में है तो, पर इसका अर्थ यह कहकर छोड़ दिया गया है—'यह कबित्त भी प्राचीन पुस्तकन में नाहीं मिलत तातें नारायण कबि अर्थ याको नाहीं लिख्यो।' यह हस्तलिखित प्रतियों में मिलता है, किंतु लीथोवाली प्रति में नहीं है।

१६—केसवराय-केसवदास। बिलोचन-सुलोचन। नीचे करौ-चेतहु। करै-फलै। एक-बीस। टरौ-टरै। तेरे-तेरी। है-ह्वै।

कृष्ण को झुकिबो—(सवैया)

(४५८) तासों बसाइ कहा कहि केसव कामलता तरु तेंदु रई।
विधि की लिपि लोपी न जाइ जाइ अमोलिक लै मनि सीस भुजंग दई।
अपनो मुख देखहु आरसी लै पुनि बात कहौ परमान-लई।
बृषभान-सुता पर और सुहागिल बाउ कहाँ लगि जीभ गई।१७।

शब्दार्थ—तासों बसाइ कहा = उससे क्या वश चलता है ? कामलता = कामदेव की लता (राधिका)। तरु = वृक्ष। तेंदु = तेंदू। रई = अनुरक्त हुई। मेटि न० = मिटाई नहीं जा सकती। अमोलिक = अमूल्य। भुजंग=सर्प; उपपति (परकीया नायिकाओं से प्रेम करनेवाला)। दई=दी। परमान-लई= प्रमाणयुक्त। सुहागिल = सौभाग्यवती, नायिका। बाउ कहाँ लगि जीभ गई = भला जीभ कहाँ तक गई है, आप कैसी बढ़ बढ़कर बातें करने लगे हैं।

भावार्थ—इसमें क्या वश चल सकता है कि कामलता तेंदू के वृक्ष (नीरस, श्रीकृष्ण) से प्रेम करती है। ब्रह्मा का लिखा मिटाया तो जा नहीं सकता, देखो तो अमूल्य मणि (मन) लेकर भुजंग के सिर पर पटक दी (तुम्हारे ऐसे लंपट को मन सौंप दिया)। हाथ में दर्पण लेकर अपना मुँह तो देखो। बातें कहो तो प्रामाणिक कहो (बेसिर पैर की बातें मत करो)। भला वृषभानु की पुत्री राधिका की और अन्य सौभाग्यवती स्त्रियों की चर्चा ही क्या, भला तुम्हारी जीभ कहाँ तक चढ़बढ़ गई है (कि ऐसी बातें बकते हो)। (नायक ने कदाचित् कह दिया है कि राधिका न मिलेंगी तो मुझे क्या नायिकाओं का टोटा है, इसी पर सखी फटकार रही है)।

राधिका सों उराहनो—(कबित्त)

(४५९) केसौदास कौन बड़ो रूप, कुलकानि पै
अनोखो एक तेरेहीं अनख उर ओलियै।
आपनें सयान काहू मानसै न मानै तूँ,
गुमान के बिमान बैठि ब्योम ब्योम डोलियै।
ऐंड सों ऐंडाइ अति अंचल उड़ाइ ऐसी,
छाँडि ऐंड बैंड चितवनि निरमोलियै।
दीनो मन हाथ जिनि हीरा सो हरषि कै,
ता हरि सों हरिननैनी हरेहूँ तो बोलियै।१८।

१७—तेंदु–तिंदु। लिपि–गति। लोपी–मेटी। अमोलिक–अलोपित, अलौकिक। पुनि–कर। बाउ०–बारी जहाँ। १८—पै०–ही पै नोखो। अनख–अनुप। काहू–कान्ह। बैठि–चढ़ी। ऐंडाइ–ऐंडाति। उड़ाइ–उड़ात। जिनि–जिहि। कै ता–ऐसे। तौ–न।

शब्दार्थ—कानि=मर्यादा। अनख=रोष। ओलियै=घुस गया है, उत्पन्न हो गया है। सयान=चतुराई। मानसै=मनुष्य को। ऐंड=गर्व। ऐंडाति=टेढ़ी मेढ़ी होती है। ऐंड बैंड=टेढ़ी मेढ़ी। निरमोलियै=निर्मूल्य, अमूल्य। हरेहूँ=धीरे से भी।

भावार्थ—तेरी कुल-मर्यादा क्या बड़ी है, केवल रूप पर ही तेरे हृदय में ऐसा अनोखा रोष उत्पन्न हो गया है। अपने चातुर्य के सामने तू किसी व्यक्ति को कुछ समझती ही नहीं। गुमान के विमान पर चढ़ी हुई आकाश ही आकाश में उड़ी फिरती है (धरती पर तो पैर ही नहीं रखती)। गर्व से तू टेढ़ी मेढ़ी हुई जा रही है, तेरा अंचल भी उड़ रहा है (उसके सँभालने की भी चिंता नहीं, कुछ तो लज्जा कर !)। ऐसा बेतुका हठ छोड़, तू तो अत्यंत अमूल्य दृष्टिवाली है। (कुछ तो विचार कर कि) हे हरिणनयनी, जिन श्रीकृष्ण ने अपना हीरे सा (बहुमूल्य) मन प्रसन्नतापूर्वक तुझे दे डाला, क्या उनसे धीरे से भी बोलना न चाहिए।

कृष्ण को उराहनो-(कबित्त)

(४६०) सौंहनि को सोच न सकोच काहू बीच को को,
पोछौ प्यारे पीक-लीक लोचन किनारे की।
माखन की चोरी की है थोरी थोरी मोहूँ सुधि,
जानति बिसेष वहै जोरी है जु बारे की।
मेरियै कुमति और कहा कहौं केसोदास,
लागति है लाल लाज इहाँ पाइ धारे की।
एती है झुठाई, वह अबहीं रुठाई, यह
छारहू तौ छूटी नाहिं पाइन के पारे की।१६।

शब्दार्थ—सोच=चिंता, परवा। सकोच=संकोच, लज्जा। बीच को=मध्यस्थ का। जोरी=जोड़ी। बारे की=लड़कपन की। पाइ धारे कीं=यहाँ आने की। एतो है=इतनी अधिक। रुठाई=रुष्ट कर दिया। छारहू=धूल भी। पाइन के पारे की=पैरों पर पड़ने की।

भावार्थ—आपको न तो शपथों की चिंता है और न बीच में पड़नेवाली का ही संकोच है। भला नेत्रों के किनारे लगी हुई पान की पीक का चिह्न तो पोछ डालिए। (दूसरी नायिका के यहाँ जाकर जो आपने चोरों की सी करतूत की है यह नई बात नहीं है. लड़कपन से आप घर का मक्खन छोड़कर

१६—बिसेष०—वहै किसोरी। जोरी-मोरी। पाइ—पाँव, पग। रुठाई—रुढ़ाई। यह, वह। २०—के दुख-को दुख। पाइहै—पैहै मैं। जी को०—जीय की तोहि।

दूसरों के यहाँ) जो मक्खन की चोरी किया करते थे उसकी आपके साथ न रहने पर भी मुझे थोड़ी थोड़ी सुध अब तक बनी हुई है और वह भी यह बात जानती है, क्योंकि लड़कपन से वह आपके साथ ही रह रही है। मेरी यह बुद्धि बुरी ही है (कि मैं आपको समझाने आती हूँ) और अधिक क्या कहूँ, हे लाल, मुझे तो यहाँ पैर रखने में लज्जा जान पड़ती है। आप इतना अधिक झूठ बोल रहे हैं और उसे अपनी करनी से अभी अभी रुष्ट भी कर चुके हैं। देखिए अभी तक (नायिका के) पैरों पर गिरने के कारण (आपके माथे में लगी) धूल भी नहीं छूटी है और फिर वैसी ही करनी करने लगे।

राधा-वचन सखी सों अपरंच—(सवैया)

(४६१) आँधी सी धाइ है, दाई दवारि सी, दासिन के दुख देह दही है।
ताप के तूल तँबोलिनि, मालिनि, नाइनि नाह के नेह नही है।
तेरी सौं तेरी सौं मेरी सखी सुनि तेरी अकेली की आस रही है।
कान्ह मिलाउ कि मोहिं न पाइहै आपनेजी की मैं तोसों कही है।२०

शब्दार्थ—आँधी सी = आँधी की भाँति कष्टप्रद। धाइ = धात्री, धाय। दाइ—दाई। दवारि सी = दावाग्नि की भाँति कष्ट देनेवाली। दही है = (मेरी देह) जल रही है। तूल = (तुल्य) समान। नाह = नाथ, प्रिय। नही है = जुड़ी हुई है, संलग्न है (प्रिय से प्रेम कर लिया है) सौं = शपथ। सुनि = सुनो। तेरी अकेली = केवल एक तेरी ही। मोहिं नं० = मुझे न पाएगी (मैं मर जाऊँगी)।

सूचना—यह छंद सरदार की टीका और हस्तलिखित प्रतियों में तो है, पर लीथोवाली प्रति में नहीं है। इसमें केशव की छाप भी नहीं है।

(दोहा)

(४६२) इहि बिधि स्याम-सिँगार-रस, बहु बिधि बरनो लोइ।
चारि बरन चहुँ आश्रमनि, कहत सुनत सुख होइ।२१।

शब्दार्थ—बहु बिधि बरनो लोइ = लोगों ने बहुत प्रकार से वर्णन किया है।

(४६३) राधा राधा-रमन के करयो सिँगार सुबेष।
रस आदिक आगे कहौं, और रसनि को भेष।२२।

शब्दार्थ—करयो = वर्णन किया है। भेष = स्वरूप।

सूचना—यह छंद केवल सरदार की टीका में मिलता है।

इति श्रीमन्महाराजकुमारइंद्रजीतविरचितायां रसिकप्रियायां सखीजनकर्मवर्णनं नाम त्रयोदशः प्रभावः।१३।

———

२१—रस-सब। लोइ-सोइ।

चतुर्दश प्रभाव

अथ हास्यरस-लक्षणम्—(दोहा)

(४६४) नयन नयन कछु करत जब, मन को मोद उदोत।
चतुर चित्त पहिचानिये, तहाँ हास्यरस होत।१।

भावार्थ—नेत्रों (चेष्टाओं) और वचनों को कुछ का कुछ करने से जहाँ मन में प्रसन्नता का उदय हो वहाँ हास्यरस होता है।

हास्यरस के भेद—(दोहा)

(४६५) मंदहास कलहास पुनि, कहि केसव अतिहास।
कोविद कबि बरनत सबै, अरु चौथो परिहास।२।

मंदहास-लक्षण—(दोहा)

(४६६) बिगसहिं नयन, कपोल कछु, दसन, दसन के बास।
मंदहास तासों कहत, कोबिद केसौदास।३।

शब्दार्थ—बिगसहिं = थोड़े खुले हों। दसन के बास = दाँतों का आवरण, होंठ।

भावार्थ—जहाँ नेत्र, कपोल, दाँत और होंठ (हँसने में) थोड़े थोड़े खुल जायँ वहाँ मंदहास होता है।

(४६७) बरनत बाढ़ै ग्रंथ बहु, कहे न केसवदास।
औरौ रस यों जानियो, सबै प्रछन्न प्रकास।४।

शब्दार्थ—औरौ रस०—अन्य रसों के संबंध में भी यही समझना चाहिए अर्थात् शृंगार के अतिरिक्त अन्य सभी रसों का विस्तार-भय से संक्षेप में ही निरूपण किया गया है। सबमें प्रच्छन्न०—सबमें प्रच्छन्न और प्रकाश भेद होते हैं।

सूचना—यह दोहा केवल हस्तलिखित प्रति में नहीं है।

राधिका को मंदहास, यथा—(सवैया)

(४६८) भेद की बात सुने तें कछू वह मासक तें मुसुकान लगी है।
बैठति है तिनमें हठिकै जिनको तुमसों मति प्रेमपगी है।

१—कछु-ये, जब-जहँ, कछु। मन—जन। पहिचानियं-पहिचानिओ। २—बरनत-बरनौ। ३—बिगसहिं-बिकसहि। दसन के—बसन के। कहत—कहै। ४—बहु—जिहि। कहे न—जेहि कहि, जेहि कबि।

जानति हौं नलराज दमैंती की दूतकथा रस-रंग रँगी है।
पूजैगी साध सबै सुख की बड़भाग की केसव ज्योति जगी है।५।

शब्दार्थ—भेद की बात=रहस्य की बातें। मासक तें=एक मास से। हठिकै=बरबस। जिनकी०=जो तुमसे प्रेम करते हैं। नलराज=राजा नल। दमैंती=दमयंती। दूतकथा०=नल और दमयंती की दूतकथा के आनंद के रंग में रँग गई है, उनकी दूतकथा चाव से सुनती है। साध=(सं० श्रद्धा) उत्कट अभिलाष। बड़भाग०=परम सौभाग्य का उदय हो गया है।

विवरण—'भेद की बात' से मुसकाना मंदहास है।

सूचना—यह सवैया 'कविप्रिया' के हास्य रसवत्' में भी उद्धृत है। अंतर यह है कि यहाँ पहली पंक्ति चौथी पंक्ति हो गई है। लीथोवाली प्रति में यह छंद नहीं है।

अपरंच—(सवैया)

(४६६) जानै को पान खवावत क्योंहूँ गई अँगुरी गड़ि ओठ नवीने।
तैं चितयो तबहीं तिहिं रीति री लाल के लोचन लीलि से लीने।
बात कही हरएँ हँसि केसव मैं समुझी वे महारस भीने।
जानति हौं पिय के जिय के अभिलाष सबै परिपूरन कीने।६।

शब्दार्थ—गड़ि गई=लग गई, छू गई। लीलि से०=खा सी गई, ऐसा आँखें फाड़ फाड़कर देखा कि नेत्रों को खा सी गई। हरएँ=धीरे से।

भावार्थ—(सखी का वचन नायिका प्रति) न जाने किस प्रकार पान खिलाते समय तेरे नए (कोमल होंठ में उनकी उँगली गड़ गई, उस समय तूने ऐसी कड़ी दृष्टि से देखा कि नायक के नेत्रों को खा सी गई (आँखें फाड़ फाड़कर रोषपूर्वक देखा) और धीरे धीरे हँसकर फिर कुछ कहा भी। मैं समझती हूँ कि वे अत्यंत रसिक हैं। मैं जानती हूँ कि तूने नायक के हृदय के सभी अभिलाष (इसी मुद्रा से) पूर्ण कर दिए।

विवरण—नायिका को नायक के विनोद का स्मरण कराकर हँसाना चाहती है, उद्देश्य मिलाने का है।

श्रीकृष्णजू को मंदहास, यथा—(कवित्त)

(४७०) दसन-बसन माँझ दमकै दसन-दुति,
बरषि मदन-सर करत अचेत हौ।

५—बड़-तन। ६—अँगुरी०—लगि अंगुली। तैं-तो। रीति०—भाँति जु। केसव—के सुनि।

झाईं झलकति लोल लोचन कपोलनि में,
मोल लेत मन क्रम बचन समेत हौ।
भौंहैं कहें देत भाउ सुनौ मेरी भावती के,
भावते छबीले लाल मौन कौन हेत हौ।
केसव प्रकास हास हँसि कहा लेहुगे जू,
ऐसें ही हँसे तें तौ हिये कों हरे लेत हौ।७।

शब्दार्थ—दसन-बसन = दाँतों का वस्त्र, होंठ। सर = बाण। क्रम = कर्म। प्रकास = प्रत्यक्ष, खुलकर।

भावार्थ—(सखी की उक्ति नायक प्रति) आपके होठों के भीतर ही दाँतों की चमक दमदमाती है, इस प्रकार आप कामबाण की वृष्टि करके अचेत कर देते हैं। चंचल नेत्रों और कपोलों में (हास की एक हलकी) छाया सी झलमला रही है। इसी के द्वारा मनसा, वाचा, कर्मणा आप मोल ले लेते हैं (मनोहर छटा से देखनेवाला मुग्ध हो जाता है)। भौंहें भेद की बातें बतला रही हैं। हे मेरी प्यारी सखी के प्रिय छबीले लाल, आप मौन किसलिए हैं ? जब आप इस प्रकार (मंदहास) से ही हँसकर हृदय को चुराए ले रहे हैं तो खुलकर हँसने पर न जाने क्या करेंगे ? (जब मंदहास में यह छटा है तो खुले हास में न जाने कितनी अधिक मनोहरता होगी)।

कलहास-लक्षण—(दोहा)

(४७१) जहँ सुनियै कलध्वनि कछू, कोमल बिमल बिलास।
केसव तन मन मोहियै, बरनहु कबि कलहास।८।

भावार्थ—जहाँ कोमल चेष्टाओं के साथ मनोहारिणी मधुर ध्वनि भी थोड़ी थोड़ी हो वहाँ कलहास होता है (मंदहास में ध्वनि कुछ भी नहीं होती कलहास में ध्वनि भी होती है)।

श्रीराधिकाजू को कलहास यथा-(सवैया)

(४७२) काछें सितासित काछनी केसव पातुर ज्यों पुतरीनि बिचारो।
कोटि कटाछ नचै गतिभेद नचावत नायक नेह निनारो।
बाजत है मृदुहास मृदंग सु दीपति दीपनि को उजियारो।
देखत हौ हरि देखि तुम्हैं यह होत है आँखिन ही में अखारो।९।

शब्दार्थ—काछें = पहने हुए। सितासित = (सित + असित) श्वेत और काली। काछनी = यहाँ एक प्रकार का घाँघरा। पातुर ज्यों = वेश्या की

७—माँझ-माह, मंद। दमके-दरसे। सर-रस, द्युति। देत-भेद। सुनौ-कहौ। हँसे तें-तौ हँसनि ही तें हियो ग्ररि। ८—बरनहु-बरनत। ९—निनारो-निहारो, निन्यारो। है-जु। ही में-बीच।

भाँति। पुतरीन = पुतलियाँ। बिचारौ = समझो। गतिभेद = नाच की अनेक चालें। नायक = वेश्याओं को नाच सिखानेवाला उस्ताद। निनारौ = न्यारा, विलक्षण, चतुर। दीपति = चमक (आँखों की)। उजियारौ = प्रकाश। अखारौ = नाच का समाज, नाचरंग।

भावार्थ—(सखी का वचन नायक प्रति) आपको देखकर तो नायिका के नेत्रों में नाच का समाज जुड़ जाता है। पुतलियों को श्वेत और श्याम रंग की काछनी पहने हुए नाचनेवाली समझिए। करोड़ों कटाक्ष ही नाच की अनेक गतियाँ हैं। नचानेवाला उस्ताद चतुर प्रेम है। मृदुहास ही मृदंग की भाँति बजता है। (आँखों में) जो ज्योति (जगती) है वही दीपकों का प्रकाश है। आप देख रहे हैं न?

अलंकार—उपमागर्भित सावयव रूपक।

सूचना—'सरदार' ने अपनी टीका में कहा है कि 'यह छंद मंदहास में उदाहरण देने योग्य है'। किंतु प्रतियों में यह 'कलहास' के उदाहरण में ही मिलता है।

अपरंच, यथा—(सवैया)

(४७३) प्रेम घने रस-बैन सने गति नैननि की सर-मैन भई ही।
बाल-बहिक्रम-दीपति देह त्रिबिक्रम की गति लीलि लई ही।
भौंहैं चढ़ाइ सखीनि दुराइ इतै मुसकाइ उतै चितई ही।
केसव **पाइहौ आजु भलें चित चोरि लै कालि गुवालि गई ही।१०।**

शब्दार्थ—रस-बैन=आनंद के वचन। सर-मैन=कामबाण। बहिक्रम=वयःक्रम, वयःसंधि। त्रिबिक्रम=वह अवतार जिसने साढ़े तीन डग में त्रिलोक तथा बलि का शरीर नाप लिया था। त्रिबिक्रम की०=त्रिविक्रम की दीप्ति को भी दबा दिया है।

भावार्थ—(सखी का वचन नायक से) अत्यंत प्रेम और आनंद से युक्त उसने वचन कहे थे। नेत्रों की चाल तो कामबाण की भाँति थी। उस बाला के वयःक्रम (वयःसंधि) के कारण उसके शरीर में जो दीप्ति दिखाई पड़ रही थी उसने तो त्रिविक्रम के तेज को भी दबा दिया था (उस दीप्ति के कारण आप भी उसके वश में हो गए थे)। भौंहें चढ़ाकर सखियों को हटाकर इधर की ओर मुख करते हुए देखकर उसने उधर की ओर देखा था। इस प्रकार जो गोपिका कल आपका चित्त चुरा ले गई थी आज आप उसे निश्चित पाएँगे।

१०—सर–रस। भई–भई है। बहिक्रम–बयक्रम। पाइहौ–पाइहै। लै–जु। गुवालि–जु आलि।

सूचना—यह सवैया लीथोवाली प्रति में नहीं है। हस्तलिखित और 'सरदार' वाली प्रति में है। पर सरदार ने लिखा है कि 'यह कबित्त प्राचीन पुस्तकन में नाहीं मिलत यातें नारायण कवि याको अर्थ नाहीं लिखो।'

श्रीकृष्णजू को कलहास, यथा—(सवैया)

(४७४) आजु सखी हरि तोसों कछू बड़ी बार लौं बात कही रसभीनी।
मेलि गरैं पटुका पुनि केसव हारि हियें मनुहारि सी कीनी।
मोहिं अचंभो महा मु इहा कहि बाँह कहा बड़ो बार लौं लीनी।
तैं सिर हाथ दियो उनिकें उनि गाँठि कहा हँसि आँचर दीनी।११।

शब्दार्थ—बार लौं=देर तक। रसभीनी=रसीली। पटुका=कमर में बाँधा जानेवाला वस्त्र। मेलि गरैं पटुका=गले में कमर का पटका डालकर। हारि=हार मानकर। मनुहारि=प्रार्थना। बड़ी बार लौं=बहुत देर तक।

भावार्थ—(सखी की उक्ति नायिका प्रति) हे सखी, आज श्रीकृष्ण तुमसे बड़ी देर तक कुछ रसीली बातें करते रहे, गले में पटका डालकर और हृदय से हार मानकर तेरी मनुहार सी करते रहे। (यहाँ तक तो कोई अचरज की बात नहीं, पर) मुझे इस बात का बड़ा अचरज होता है कि उन्होंने बड़ी देर तक तुम्हारी बाँह (बड़े प्यार से) ली। तुम भला बतलाओ न क्या बात है ? तुमने उनके मस्तक पर हाथ क्यों रखा और उन्होंने हँसकर अंचल के छोर में गाँठ क्यों दी ? (नायिका ने सौत के यहाँ जाने की बात पर मान किया था, नायक ने अपने गले में पटका डालकर अपनी दीनता दिखाते हुए उसकी बिनती की कि अब ऐसी भूल न होगी, क्षमा करो। उसने देर तक नायिका की बाँह पकड़कर शपथ ली। नायिका ने सिर पर हाथ रखकर क्षमा की और उन्होंने यह कहकर अंचल के छोर में गाँठ दी कि अब गाँठ बाँधता हूँ, कभी ऐसा न करूँगा)।

सूचना—'सरदार' ने सिर पर हाथ रखने का एक तात्पर्य 'संकेत में मिलना' भी लिया है।

अतिहास-लक्षण—(दोहा)

(४७५) जहाँ हँसहिं निरसंक ह्वै, प्रकटहिं सुख मुखबास।
आधे आधे बरन पद, उपजि परत अतिहास।१२।

११—बार-बेर। सी-सो। बाँह-बाह। बड़ी-बहू। बार लौं-बारन।
१२—हँसहि-हँसे। ह्वै-कै। प्रगटहि-प्रकटैं। आधे०-अर्ध बरन पद होत है।

शब्दार्थ—सुख . मुखवास = मुख की नैसर्गिक सुगंध। आधे० = आधे अक्षरों के ही शब्द निकलें, अस्फुट शब्द निकलें।

भावार्थ—जहाँ निःशंक हँसने से मुख की नैसर्गिक सुगंध निकलने लगे और अस्फुट शब्द भी हों वहाँ अतिहास होता है।

श्रीराधिकाजू को अतिहास, यथा—(कबित्त)

(४७६) तैसीयै जगत ज्योति सीस सीसफूलनि की,
चिलकत तरुनि तिलक तेरे भाल को।
तैसीयै दसन दुति दमकति केसौदास,
तैसोई लसत लाल लाल कंठमाल को।
तैसीयै चमक चारु चिबुक कपोलनि की,
चमकत देखौ नकमोती चल चाल को।
हरैं हरैं हँसि नेक चतुर चपलनैनि,
चित्त चकौंचधै मेरे मदनगुपाल को।१३।

शब्दार्थ—चिलकत=चमकता है। तरुनि=नायिका। लाल = लाल रंग-वाला। लाल = माणिक। चिबुक = ठुड्ढी। चल चाल को = चल चाल-वाला, चंचल। हरें हरें = धीरे धीरे।

भावार्थ—(सखी-वचन नायिका प्रति) हे तरुणी, एक तो सिर पर के शीशफूल वैसे ही (अत्यंत दीप्तिपूर्वक) चमक रहे हैं, दूसरे तेरे माथे पर लगा तिलक भी वैसा ही चमचमा रहा है। तीसरे दाँतों की द्युति भी वैसी ही हो रही है, चौथे कंठहार में लगा लाल वर्णवाला माणिक भी दमक रहा है, पाँचवें सुंदर ठुड्ढी और कपोलों की भी वैसी ही चमक है, छठे नाक (की बेसर) का मोती भी वैसा ही दमक रहा है। (इतनी अधिक चमक है कि कहा नहीं जाता)। अतः ऐ चतुर चंचल नेत्रवाली, तू थोड़ा धीरे धीरे हँस क्योंकि (इतनी चमकों के कारण) मेरे मदनगोपाल का चित्त चकाचौंध में पड़कर व्यग्र हो जाता है।

श्रीकृष्णजू को अतिहास, यथा—(कबित्त)

(४७७) गिरि गिरि उठि उठि रीझि रीझि लावैं कंठ,
बीच बीच न्यारे होत छबि न्यारी न्यारी सों।
आपुस में अकुलाइ आधे आधे आखरनि,
आछी आछी बात कहैं आछी एक यारी सों।
सुनत सुहाइ सब समुझि परै न कछू,
केसौदास की सौं दुरि देखे मैं दुस्यारी सों।

१३—चिलकत—झलकन। तरुनि-तिलकु, सिलकु, तिलनि। तैसीयै—तैसेई। लाल लाल—लाल कंठ। चमकत—झलकत।

तरनि-तनूजा-तीर तरबर-तर ठाढ़े,
तारी दै दै हँसत कुँवर कान्ह प्यारी सों ।१४।

शब्दार्थ—आधे आधे आखरनि = अस्फुट वचनों से। आछी = मनोहारिणी। यारी = मित्रता। सुहाइ = अच्छा लगता है। दुरि = छिपकर। हुस्यारी=चतुराई। तरनि = सूर्य। तनूजा = पुत्री। तरनि-तनूजा = यमुना। तर = तले, नीचे।

भावार्थ—(सखी का वचन सखी से) वे हँसते हँसते गिर गिर पड़ते हैं, फिर उठते हैं और रीझ रीझकर एक दूसरे के गले लगते हैं। बीच बीच में (कभी कभी) वे विलक्षण शोभा (मुद्रा) के साथ दूसरे से पृथक् भी हो जाते हैं। वे उतावले होकर परस्पर अस्फुट अक्षरों से अच्छी अच्छी बातें भी मनोहारिणी मित्रता के साथ करते हैं। उनकी बातें सुनने में तो अच्छी लगती हैं, पर समझ में कुछ नहीं आतीं। तेरी शपथ मैंने छिपकर चतुराई से देखा है (देख आई हूँ, तू भी चल), यमुना के तट पर तरुवर (कदंब) के नीचे खड़े होकर कुँवर कन्हैया प्यारी राधिका से ताल बजा बजाकर हँस रहे हैं।

अलंकार—समुच्चय।

अथ परिहास-लक्षण-(दोहा)

(४७८) जहँ परिजन सब हँसि उठैं, तजि दंपति की कानि।
केसव कौनहुँ बुद्धिबल सो परिहास बखानि ।१५।

शब्दार्थ—परिजन = सखा, सखी आदि निकट रहनेवाले लोग। कानि = मर्यादा।

श्रीराधिकाजू को परिहास, यथा-(सवैया)

(४७९) आई है एक महावन तें तिय गावति मानो गिरा पगु धारी।
सुंदरता जनु काम की कामिनि बोलि कह्यो वृषभानदुलारी।
गोपिकै ल्याइ गुपालहि वै अकुलाइ मिलीं उठि आदर भारी।
केसव भेंटत ही भरि अंक हँसीं सब कीक दै गोपकुमारी ।१६।

शब्दार्थ—गिरा = सरस्वती। पगु धारी = आई, पधारी। बोलि = बुलाकर। कीक दै = खिलखिलाकर।

भावार्थ—(सखियों ने राधा का मान छुड़ाने के लिए अथवा विनोद के लिए श्रीकृष्ण को गोपी के वेश में गीत गाते हुए आने को कहा इधर) राधिका को बुलाकर उनसे कहा कि 'महावन में रहनेवाली एक गायिका गाती हुई

१४—यारी—ह्यारी। कह्र—अब। केसौदास—कैसौराइ। १५—तनूजा—तनैया। कुँवर—कुमार। कान्ह—काहू। १६—मानों—गीत। बोलि—टेरि। गुपालहि वै—गुपाल हिये। उठि—करि। आदर—सादर। कीक—कूक। कीक दै—की कहै।

आ रही है, ऐसा गाती है मानो स्वयम् सरस्वती ही अवतरित होकर आ गई हो। सुन्दरता भी ऐसी हैं मानो कामदेव की पत्नी रति हो। इस प्रकार उस गोपिका को लाकर राधिका के पास कर दिया। वे अत्यंत आदर के साथ उतावली से उठकर उस गोपिका (गोपाल) से भेंटने लगीं तब सखियाँ खिलखिलाकर हँस पड़ीं।

श्रीकृष्णजू को परिहास, यथा-(सवैया)

(४८०) सखि बात सुनौ इक मोहन की निकसी मटुकी सिर री हलकै।
पुनि बाँधि लई सुनियै नतनारु कहूँ कहूँ बुंद करी छलकै।
निकसीं उहि गैल हुते जहँ मोहन, लीनी उतारि जबै चलकै।
पतुकी धरी स्याम खिसाइ रहे उत ग्वारि हँसी मुख आँचल कै।१७।

शब्दार्थ—हलकै = रीती, खाली। नतनारु = मटकी का मुँह बांधने का कपड़ा। छलकै = छलकने के। हुते = थे। चलकै = आकर। पतुकी = मटकी।

भावार्थ—(सखी की उक्ति सखी से) हे सखी, मोहन की एक बात सुनो। वह ग्वालिनी दूध की खाली मटकी सिर पर लेकर चली। उसने उसका मुँह कपड़े से ढँककर बाँध दिया था और (दूध) छलकने की सी बूँदें भी मटकी में कहीं कहीं डाल दी थीं। फिर वह उस मार्ग से होकर निकली जहाँ मोहन रहते थे। मोहन ने दूध की मटकी समझकर उसके पास आकर (दान लेने के लिए वह मटकी उतरवा ली)। उसने मटकी रख दी, खोलने पर जब कुछ न निकला तब कृष्ण लज्जित हो गए। उधर वह ग्वालिनी भी मुँह में अंचल लगाकर हँसने लगी।

सूचना—(१) यह सवया केवल सरदारवाली प्रति में मिलता है।

(२) रसग्राहकचंद्रिका में यह दोहा अधिक है—

कह्यो हासरस बरनि यों अरु रस सुगम कबित्त।
करुनादिक सिंगारमय बरने समझहु चित्त।

अथ करुणरस-लक्षण-(दोहा)

(४८१) प्रिय के बिप्रिय करन तें, आनि करुनरस होत।
ऐसो बरन बखानियै, जैसे तरुन कपोत।१८।

शब्दार्थ—बिप्रिय = अप्रिय, कष्टदायिनी बात। प्रिय के० = प्रिय के लिए अप्रिय कार्य करने से करुणरस होता है। बरन = वर्ण, रंग। तरुन कपोत = युवा कबूतर। ऐसो बरन० = करुणरस का रंग युवा कबूतर की भाँति होता है।

१७—सखि०--जुवती सुनि औगुन मोहन के। री हलकै--रीतिय लैकै। सुनियै--सुनिए। नतनारु--नतनासु। पतुकी--पिनुखी। १८—तें-को। आनि--अति। करुन०--करुनारस तहँ होत, करना रस होत।

श्रीराधिकाजू को करुणरस, यथा—(कवित्त)

(४८२) तेज सूर से अपार, चंद्रमा से सुकुमार,
संभु से उदार उर उर धरियत है।
इंद्रजू से प्रभु पूरे, रामजू से रनसूरे,
कामजू से रूप रूरे हिय हरियत है।
सागर से धीर गनपति से चतुर अति,
ऐसे अबिबेक कैसें दिन भरियत है।
नंद मतिमंद [illegible] जसुदा सों कहौं कहा,
ऐसे पूत पाइ पसुपाल करियत है।१६।

शब्दार्थ—तेज = प्रताप। सूर = सूर्य। उदार = विशाल। उर=वक्षः-स्थल। उर धरियत है=हृदय में समझे जाते हैं। प्रभु = स्वामित्ववाले। रन-सूरे = रणशूर, वीर। रूरे = सुंदर। अविवेक = मूर्खता। कैसें दिन भरियत है = दिन कैसे व्यतीत होते हैं। मतिमंद = मंदबुद्धि। पसुपाल = पशुपाल, गोचारण आदि।

भावार्थ—सूर्य की भाँति अपार तेजवाले, चंद्रमा की भाँति सुकुमार, शिव की भाँति उदार वक्ष, इंद्र की भाँति प्रभुत्ववाले, राम की भाँति वीर, काम की भाँति सुंदर छवि से हृदय हरनेवाले, समुद्र की भाँति धीर, गणेश की भाँति अत्यंत चतुर पुत्र को पाकर उससे पशु चराने का काम कराना कैसी मूर्खता है। नंद तो अत्यंत मंदबुद्धि जान पड़ते हैं, यशोदा को क्या कहूँ? (भला ऐसी मूर्खता से) उनके दिन कैसे कटते हैं।

सूचना—'प्रिय का दुःख' आलंबन होने से यहाँ करुणरस है।

श्रीकृष्णजू को करुणरस, यथा—(कबित्त)

(४८३) चंपे की सी कली भली केसव सुबास भरी,
रूप की सी मंजरी मधुर मन भाइयै।
बेद की सी बानी, अति बानी तें सयानी, देव-
राय की सी रानी जानी जग सुखदाइयै।
काम की कला सी, चपला सी, [illegible] सी,
कमला सी देह धरें पूरे पून्य पाइयै।
कौनें कीनी निपट कुचालि जाति ग्वालि ऐसी,
राधिका कुँवरि पर गोरस बिचाइयै।२०।

१६—उर--अति। अति-चर। २०—भली-भलो। भरी-भली। बेद-देव। जानी०-केसौदास जग जाइए। काम को०-कामअबला सो कमला सो देखौ देह धरे पूरन प्रताप तेज।

को मानसरोवर त्याग देना पड़ा, बेल कठोर हो गया, केसर पीली पड़ गई, अनार का हृदय फट गया। कनक = सोना (वर्ण)। तन = शरीर। तनक० = थोड़ा थोड़ा करके अर्थात् (अत्यंत कष्ट सहकर)। ससि = चंद्रमा (मुख)। घटत बढ़त = भय से घटता है, कृपा करेंगी इस आशा से बढ़ता है। बंधुजीव = फूल दुपहरिया, गुल्लाला (तलवों की ललाई)। गंधहीनो = गंधरहित। कोबिद = पंडित, चतुर।

वचन—सखी की उक्ति सखी से। राधिका के निकट ही वह दूसरी सखी से ये बातें करती है जिससे कोप छूट जाय।

सूचना—राधिका ने सौत पर कोप किया है।

श्रीकृष्ण जू को रौद्ररस, यथा—(कबित्त)

(४८६) मींडि मारयो कलह, बियोग मारयो बोरिकै,
मरोरि मारयो अभिमान भारयो भय भान्यो है।
सबको सुहाग अनुराग लूटि लीनो दीनो,
राधिका कुँवरि कहँ सब सुख सान्यो है।
कपट कपटि डारयो निपट कै औरनि सों,
मेटी पहिचानि मन मैं हू पहिचान्यो है।
जीत्यो रतिरन मथ्यो मनमथहू को मन,
केसौदास **कौन कहुँ रोष उर आन्यो है** ।२३।

शब्दार्थ—मींडि मारचो कलह = कलह को मींजकर मार डाला। बोरिकै = डुबोकर। भारचो भय भान्यो है = भारी भय को भी भंग कर डाला है। कपट = छल। कपटि डारचो = नोच लिया। निपट कै = एकदम। मन में हू = मन से भी। मेटी पहिचानि मन में हू पहिचान्यो है = मन से भी जानने की पहचान मिटा दी है।

भावार्थ—(सखी की उक्ति नायक से) आपने कलह को मींजकर मार डाला, वियोग को डुबोकर मारा, अभिमान को मरोड़ फेंका, भारी भय का भी अंगभंग कर दिया, सबका सौभाग्य और अनुराग लूटकर राधिका कुमारी को देकर उन्हें सब प्रकार के सुख से युक्त कर दिया है। कष्ट को तो एकदम नोच कर फेंक दिया, औरों को मन द्वारा पहचानने की पहचान भी मिटा दी है और रति के युद्ध में कामदेव का भी मन मथ डाला है (क्रोध करके जैसी वीरता दिखाई जाती है वैसी तो आप दिखा चुके) अब किसके लिए रोष हृदय में ले आए हैं (अब किसे नष्ट करना या जीतना है)। (युद्ध के पक्ष में 'मींडि डारचो' आदि का शब्दार्थ लिया गया है, प्रकृत अर्थ इस प्रकार

२३—मारचो-मारौ। मैं हूँ-फेहूँ। केसौदास-केसौराइ। कहुँ-हूँ पै।

होगा—आपने कलह करना त्याग दिया, वियोग को भी दूर कर दिया, अभिमान नहीं करते, भय भी नहीं रहा, औरों को जो सौभाग्य और अनुराग पहले प्राप्त होता था वह राधिका को मिला है। कपट है नहीं दूसरों से मन में भी जान-पहचान नहीं करते, रति में आप कामदेव से भी बढ़कर हैं, अब आपके रोष करने का क्या कारण है ? रोष छोड़िए)।

अथ वीररस-लक्षण–(दोहा)

(४८७) होहि बीर उत्साहमय, गौर बरन दुति अंग।
अति उदार गंभीर कहि, केसव पाइ प्रसंग।२४।

शब्दार्थ—उत्साहमय = उत्साह से युक्त। गौर० = शरीर की चमक, गौर वर्ण। उदार = उच्च भावमय। पाइ प्रसंग = अवसर आने पर।

श्रीराधिकाजू को वीररस, यथा–(कबित्त)

(४८८) गति गजराज साजि देह की दिपति बाजि,
हाव रथ भाव पत्ति राजि चली चाल सों।
केसौदास मंदहास असि कुच भट भिरे,
भेट भए प्रतिभट भले नखजाल सों।
लाज-साज कुलकानि सोच पोच भय भानि,
भौंहैं धनु तानि बान लोचन बिसाल सों।
प्रेम को कवच कसि साहस सहायक लै,
जीत्यो रति-रन आज मदनगुपाल सों।२५।

शब्दार्थ—गति = चाल। गजराज = हाथी। बाजि = घोड़ा। हाव = शृंगारिक चेष्टाएँ। भाव = उमंगें। पत्ति = पैदल सिपाही। राजि = समूह। चली चाल सों = चाल से चली, अपनी गति से चली। लाज-साज = लज्जाशीलता। कुलकानि = कुल की मर्यादा। सोच पोच = बुरा संकोच। भानि = तोड़कर। असि = तलवार। भिरे = लड़े। जाल = समूह। प्रतिभट = प्रतिद्वंद्वी, योधा।

भावार्थ—(सखी का वचन नायिका प्रति) चाल रूपी हाथी, अंगदीप्ति रूपी घोड़ा, हाव रूपी रथ, उमंग रूपी ठीक चाल से चलनेवाली पैदल सेना सजाकर, भौंह रूपी धनुष पर विशाल नेत्र रूपी बाण चढ़ाकर, लज्जाशीलता, कुल की मर्यादा, बुरा संकोच और भय रूपी बाधक प्रतिपक्षियों को मारकर, मंदहास रूपी तलवार, कुच रूपी भटों को प्रतिद्वंद्वी के नखाघात रूपी भालों

२४—अति०-अति उर धरि गंभीर। २५—हाव-हास। राजि–राजै। चाल–बाल। भय-भव। पत्ति०-पैदरित। जाल-जान। कसि–साजि। जीति–जीत्यो। रति–रागु।

से भिड़कर, प्रेम का कवच कसकर, साहस रूपी सहायक लेकर आज तूने मदनगोपाल रूपी प्रतिद्वंद्वी से रति रूपी युद्ध जीत लिया।

अलंकार—सावयव रूपक।

श्रीकृष्णजू को वीररस, यथा–(कबित्त)

(४८९) अघ ज्यों उदारिहौ कि बक ज्यों बिदारिहौ कि,
केस गहि केसौदास केसी ज्यों पछारिहौ।
हरिहौ कि प्राननाथ पूतना के प्रानिनि ज्यों,
बन तें कि जलबासी काली ज्यों निकारिहौ।
करिहौ बिमद घनबाहन ज्यों घनस्याम,
काहू सों न हारे हरि याही सों क्यों हारिहौ।
वेही काम काम बर ब्रज की कुमारिकानि,
मारत हैं नंद के कुमार कब मारिहौ।२६।

शब्दार्थ—अघ = अघासुर। उदारिहौ = फाड़ डालोगे। बक = बकासुर। बिदारिहौ = नष्ट कर दोगे। केस = बाल। केसी = केशी। पछारिहौ = पराजित करोगे। बन तें = जल से। काली = कालिय नाग। निकारिहौ = निकालोगे। बिमद = गर्वरहित। घनबाहन = इंद्र। वेही काम = बिना किसी प्रयोजन के। काम = कामदेव।

वक्ता—गोपियों का दूत मथुरा में श्रीकृष्ण को पुरानी बातों का स्मरण दिलाकर कामविरह दूर करने की प्रार्थना कर रहा है।

अलंकार—उपमा।

अथ भयानकरस-लक्षण–(दोहा)

(४९०) होइ भयानक रस सदा, केसव स्याम सरीर।
जाको देखत सुनतहीं, उपजि परति भयभीर।२७।

शब्दार्थ—भीर = [illegible]।

श्रीराधिकाजू को भयानकरस, यथा—(सवैया)

(४९१) भुवमंडल मंडित कै घनघोर उठे दिसिमंडल मंडि गटी।
घहराति घटा घन बात के संघट घोष घटै न घटीहूँ घटी।

२६—उदारिहौ–उधारिहौ। बिदारिहौ कि–बिदारिहौ जू। केस गहि–कंस ज्यों कि, केस ज्यों कि। केसौदास–केसौराइ। करिहौ–हरिहौ। काम–काज। २७—होइ–होहि। होइ०–होइ भयंकर कुत सदा बिग्रह काम सरीर। परति–परत. पैर :

दसहूँ दिसि केसव **दामिनि देखि लगी प्रिय कामिनि कंठतटी।**
जनु पंथहि पाइ पुरंदर के बन पावक की लपटैं झपटी।२८।

शब्दार्थ—भूत्रमंडल मंडित कै = संपूर्ण पृथ्वी पर छाकर। दिवि = आकाश। गटी = समूह की समूह। बात = वायु। संघट = टक्कर। घोष = गर्जन। न घटीहूँ घटी = घड़ी पर घड़ी बीत जाने पर भी। कंठतटी = कंठतट से, गले से। पंथहि०=मार्ग पाकर।

भावार्थ—(सखी की उक्ति सखी से) भूमंडल को छाती हुई, बड़े बड़े बादलों की जो घटा उठी वह आकाश-मंडल में समूह की समूह छा गई। घन की घटा वायु की टक्कर से शब्द करती है। घड़ी पर घड़ी बीतती चली जा रही है, पर बादलों का गर्जन घटता नहीं। दसो दिशाओं में बिजली की चमक देखकर प्रिया प्रिय के गले से जा लगी। मानो मार्ग पाकर इंद्र के वन (नंदन कानन) में अग्नि की लपटें झपटकर जा लगी हों।

श्रीकृष्णजू को भयानकरस यथा—(कवित्त)

(४६२) **रोष में रस के बोल बिष तें सरस होत,**
जानै सो प्रबल पित्त दाखैं जिन चाखी हैं।
केसौदास **दुख दीबे लायक भए ब तुम,**
आज लगि जाकी जी में आँखैं अभिलाषी हैं।
सूधे ह्वै सुधारिबे कौं आए सिखवन मोहिं,
सूधेहूँ में सूधी बातैं मोसौंऊ न भाखी हैं।
ऐसे में हौं कैसें जाउँ दुरिहूँ धौं देखौ जाइ,
काम की कमान सी चढ़ाइ भौंहैं राखी हैं।२६।

शब्दार्थ—रोष = क्रोध, मान। रस=प्रीति। सरस=बढ़कर। प्रबल पित्त = पित्त की प्रबलता। दाख = द्राक्षा, मुनक्का।

भावार्थ—(दूती की उक्ति नायक से) रोष में प्रेम की बातें तो विष से भी बढ़कर होती हैं। इसे वही जान सकता है जिसने प्रबल पित्त में मुनक्का खा लिया हो। आज तक आप जिसकी आँखों (के इशारे) का मन में अभि-लाष करते थे उसी को अब दुःख देने योग्य तो हो गए। आज आप सीधे बनकर मुझसे उसे सुधारने (उसका मान छुड़ाने को) की शिक्षा देने आए हैं, पर आपको क्या पता नहीं कि वह सीधे में (प्रसन्न रहने पर) मुझसे

२८—छोर-छोज। **गटी-घटी। घन-घट। घटै न०-घटेहूँ न घोष घटी। दसहूं-ताड़िता तड़पै निरखै उर पै सौ।** जनु०-मनो **पारथ, जनु पारथ।**
२६—रोष में०-रिस में बिरस। पित्त-ज्वर। **भए ब-भए हो। आज-अब। लगि-लहुँ। सुधारिबे०-सुधार सकै क्यों।**

भी सीधी बातें नहीं किया करती थी (टेढ़े में न जाने क्या करेगी) अतः ऐसे अवसर पर मैं उसके निकट कैसे जाऊँ, यदि आप देखना ही चाहते हों तो छिपकर क्यों नहीं देख लेते, उसने तो काम के धनुष की तरह भौंहें तान रखी हैं।

सूचना—पित्त की प्रबलता में मुनक्का खा लेने से पित्त की अति वृद्धि होती है।

अथ बीभत्सरस-लक्षण—(दोहा)

(४९३) **निंदामय बीभत्सरस, नील बरन बपु तास।**
केसव देखत सुनतहीं, तन मन होइ उदास।३०।

शब्दार्थ—बपु = शरीर। तास = उसका।

श्रीराधिकाजू को बीभत्सरस, यथा—(कबित्त)

(४९४) **माता ही को माँस तोहिं लागत है मीठो मुख,**
पियत पिता को लोहू नेक ना घिनाति है।
भैयनि के कंठनि को काटत न कसकति,
तेरो हियो कैसो है जु कहति सिहाति है।
जब जब होति भेंट तब तब मेरी भटू,
ऐसी सौंहैं दिन उठि खाति न अघाति है।
प्रेतिनी पिसाचिनी निसाचरी की जाई है तूँ,
केसौदास की सौं कहि तेरी कौन जाति है ?।३१।

शब्दार्थ—कहति सिहाति है = कहना भला लगता है। जाई = उत्पन्न, पुत्री।

भावार्थ—(सखी के पूछने पर नायिका बारंबार शपथें करती है, वे शपथें बड़ी बीभत्स हैं, इसी पर सखी कहती है) तुझे माता का मांस मुँह में मीठा लगता है, पिता का रक्त पीने में तुझे कुछ भी घृणा नहीं लगती। भैयों का गला काटने की शपथ खाने में तुझे पीड़ा नहीं होती। तेरा कैसा कठोर हृदय है कि तुझे ऐसा कहना अच्छा लगता है। तुझसे जब जब भेंट होती है तब तब ऐ सखी, तू प्रेतिनी, पिशाचिनी या निशाचरी किसकी पुत्री है, जो ऐसी शपथें खाकर भी प्रिय से मिलने नहीं जाती। तू कौन है, किस जाति की है, कुछ बतला भी।

श्रीकृष्णजू को बीभत्सरस, यथा- (कबित्त)

(४९५) **टूटे ठाट घुनघुने धूम धूरि सों जु सने,**
झींगुर छगोड़ी साँप बीछिन की घात जू।
कंटककलित त्रिनबलित बिगंधजल,
तिनके तलपतल ताकों ललचात जू।

३०—मय-भय। नेक-क्यों हू। घिनाति-अघाति। केसौदास-केसौराइ।

कुलटा कुचीलगात अंधतम अधरात,
कहि न सकत बात अति अकुलात जू।
छेंडी में घुसौ कि घर ईंधन के घनस्याम,
परघरनीनि पहँ जात न घिनात जू।३२।

शब्दार्थ—ठाट = छाजन का ढाँचा। छगोड़ी = भौंरी। घात=स्थिति। कलित=युक्त। त्रिनबलित = तिनके से घिरा। बिगंध = दुर्गंध। तलप = तल्प, शय्या। तलपतल = शय्या पर। कुचील = गंदे वस्त्र वाला। गात = गात्र, शरीर। अंधतम = अंध कर देनेवाला, घोर अँधेरा। छेंडी = संकरी गली।

भावार्थ—(सखी की उक्ति नायक प्रति) हे घनश्याम, (आपको थोड़ी भी घिन नहीं है क्या ?) जहाँ का ठाट टूटा है, घुनों से घुना हुआ है, जो स्थान धूएँ और धूल से सना हुआ है, जहाँ झींगुर, भौंरी, साँप और बिच्छियों की स्थिति है, जो स्थान काँटों से भरा है, घासफूस से घिरा है, जहाँ दुर्गंधयुक्त जल भरा है, ऐसे स्थान की शय्या पर शयन करने के लिए आप लालायित होते हैं। जो कुलटा है, मैले-कुचैले वस्त्र शरीर में धारण करने-वाली है, उसके यहाँ भी घोर अंधकार में आधी रात के समय आप जाते हैं। मुझसे तो यह बात कही भी नहीं जा सकती हैं, अत्यंत अकुलाती हूँ। कहीं किसी तंग गली में घुस गए, कहीं ईंधन के घर में पैठे। आपको ऐसे स्थान में बसनेवाली और उस पर भी पराई स्त्रियों के यहाँ जाते घृणा नहीं आती ?

अथ अद्भुतरस-लक्षण-(दोहा)

(४९६) होइ अचंभो देखि सुनि, सो अद्भुतरस जानि।
केसवदास बिलासनिधि, पीत बरन बपु भानि।३३।

शब्दार्थ—बिलासनिधि = विलास का भांडार। बरन = वर्ण, रंग। बपु = शरीर। भानि = भनो, कहो।

श्रीराधिकाजू को अद्‌भुतरस, यथा-(कबित्त)

(४९७) केसौदास बाल बैस दीपति तरुन तेरी,
बानि लघु बरनत बुधि परमान की।
कोमल अमल उर उरज कठोर, जाति,
अबला पै बलबीर-बंधन-बिधान की।

३२—ठाट-टाटि। घुने-घने। धूरि-धूम। सों जु०-सनि सने, सेन सनें, सैनि सने, सौं तो सने। बीछिन की-बिच्छिन की, बीछीजन। जल-जुत। घुसौ-घुसे। पहँ--यहँ, पास। पर-घर। ३३—होइ-होहि। जानि-जान। भानि-बानि, मान।

चंचल चितौनि, चित्त अचल, सुभाव साधु,
सकल असाधु भाव काम की कथान की।
बेचति फिरति दधि, लेत, तिन्हैं मोल लेति,
अद्भुतरस-भरी बेटी वृषभान की।३४।

शब्दार्थ—बैस=(वयस्) वय, उम्र। तरुन=(तरुण) तीव्र, अत्यधिक। बानी लघु=बातें थोड़ी कहती है। परमान=परे का मान, बहुत बड़ा। परमान की=अत्यंत कुशाग्र (बुद्धि)। उरज=स्तन। बलबीर=बल में वीर (बली); बलराम के भाई (श्रीकृष्ण)। बलबीर-बंधन-विधान की=बलबीर को बाँधने (वशीभूत करने) का विधान करनेवाली है। साधु=भला, सीधा। असाधु=बुरा, टेढ़ा।

भावार्थ—(सखी की उक्ति नायिका प्रति) हे सखी, तेरी वय तो बाल्य है, पर तेरी (अंग) दीप्ति तरुण (प्रखर) है। तेरी बातें थोड़ी होती हैं, पर वे बुद्धि की पराकाष्ठा (वाली बातों) का वर्णन करती हैं। तेरा निर्मल हृदय तो कोमल है पर स्तन कठोर (कड़े) हैं। तू जाति की तो अबला (स्त्री, निर्बल) है पर बलबीर (श्रीकृष्ण, बली) के बाँधने का भी विधान करनेवाली है। तेरी चितवन चंचल है, पर चित्त निश्चल (स्थिर) है। तेरा स्वभाव तो सीधा है, पर काम की कथा के सभी टेढ़े भाव तुझमें पाए जाते हैं। तू दही तो देती (बेचती) फिरती है, पर जो उसे मोल लेते (खरीदते) हैं, तू उनको ही मोल लेती है (वे तुझ पर मुग्ध हो जाते हैं)। तूं वृषभानु की बेटी अद्भुतरस से भरी हुई है।

अलंकार—विरोधाभास।

अन्यच्च, यथा—(कवित्त)

(४१८) ब्रज की कुमारिका वै लीने सुक-सारिका,
पढ़ावैं कोक-कारिकानि केसव सबै निबाहि।
गोरी गोरी भोरी भोरी थोरी थोरी बैस, फिरैं
देवता सी दौरी दौरी आईं [illegible] चाहि।
बिन गुन तेरी आनि भृकुटी कमान तानि,
[illegible] यहै अबलन आहि।
एते मान डीठ ईठ तेरी को अडीठ मनु,
पीठ दै दै मारती पै चूकती न कोऊ ताहि।३५।

शब्दार्थ—सुक=सुग्गा। सारिका=मैना। कोक-कारिका=कोकशास्त्र के सूत्र। सबै निबाहि=पूरा निर्वाह करके, भली भाँति। चाहि

३४—बानी-बानि। बरनत-बरनन। ३५—चोरा चोरी-चोरी चोरा। कुटिल-नयन। मान-पर।

आई = देख आई। गुन = रस्सी (प्रत्यंचा) आनि = शपथ। आहि = (अस्ति) है। ढीठ = (धृष्ट) प्रौढ़, जानकार, कुशल। ईठ = (इष्ट) मित्र, स्वामी। अदीठ = अदृष्ट, जो दिखाई न पड़े।

भावार्थ—(सखी की उक्ति सखी प्रति) वे व्रज की हैं तो कुमारिकाएँ ही, पर शुक और सारिका को कोकशास्त्र की कारिकाएँ भली भाँति (अर्थ आदि समझाकर) पढ़ाती हैं। वे गोरी गोरी भोली भाली हैं तो थोड़ी वय-वाली, पर दौड़ दौड़ चोरीचोरी देवियों की भाँति श्रीकृष्ण को देख आती हैं (उन्हें कोई देख नहीं पाता, जैसे देवी देवता अदृश्य रहते हुए सब कुछ देख लेते हैं)। तेरी शपथ (मेरा विश्वास कर) वे बिना प्रत्यंचावाली भौंह का धनुष तानती हैं और उस पर कुटिल (टेढ़े, सीधे भी नहीं) कटाक्ष रूपी बाण चलाती हैं। यही तो बड़े आश्चर्य की बात है। वे इतनी कुशल हैं कि तेरे स्वामी (श्रीकृष्ण) के अदृश्य (दिखाई पड़ता होता तो भी कोई बात थी) मन को पीठ दे देकर (बिना सामने हुए ही) मारती हैं और कोई भी लक्ष्य को चूकती नहीं हैं।

अलंकार—विरोधाभास, विभावना।

सूचना—(१) एक तो कुमारी हैं, दूसरे सुग्गे को पढ़ा रही हैं (अत्यंत अभ्यस्त हैं तभी तो) और तीसरी कभी भूल नहीं होती (सबै निबाहि)। हैं तो भोली भाली और उस पर भी थोड़ी वय की, पर काम करती हैं देवियों के (बिना स्वयम् लक्षित हुए देख आती हैं)। एक तो धनुष बिना प्रत्यंचा का है, दूसरे बाण भी टेढ़े मेढ़े हैं, तीसरे लक्ष्य अदृश्य है और चौथे पीछे की ओर आघात करना है, फिर भी लक्ष्य बिद्ध हो जाता है।

(२) नारायण कवि ने दो शंकाएँ भी उठाई हैं और उनका समाधान भी किया है—(क) कुमारियों ने कोकशास्त्र किससे पढ़ा ?—सुनकर उन्होंने स्मरण कर रखा है। (ख) पीठ देकर डीठ कैसे मारती हैं ?—गर्दन मोड़कर देखती हैं।

(३) यह छंद 'कविप्रिया' के नवें प्रभाव में विशेषालंकार के उदाहरण में दिया गया है।

(४) ऐसा ही एक दोहा बिहारी का है—

तिय कित कमनैती पढ़ी, बिन जिह भौंह कमान।
चलचित बेझो चुकति नहिं, बंक बिलोकनि-बान ।।—बिहारीसतसैया

(५) जिस 'आहि' को लोग पूर्वी का समझते हैं वह भी 'है' के अर्थ में केशव ने इसमें प्रयुक्त किया है।

श्रीकृष्णजू को अद्भुतरस, यथा—(कवित्त)

(४६१) माखन के चोर मधु-चोर दधि-दूध-चोर,
देखै नाहिं देखतहीं चित्त चोरि लेत हैं।

पुरुष पुरान अरु पूरन पुरान इन्हैं,
पुरुष पुरान सु कहत किहिं हेत हैं।
केसौदास देखि देखि सुरनि की सुंदरी वै,
करतिं बिचार सब सुमति-समेत हैं।
देखि गति गोपिका की भूलि जात निज गति,
अगतिन कैसें धौं परम गति देत हैं।३६

शब्दार्थ—मधु=शहद। पुरुष पुरान=पुराने पुरुष, चिरजीवी व्यक्ति लोमश आदि ऋषि। पूरन=संपूर्ण, सभी। पुरुष पुरान=पुराण पुरुष, आदिपुरुष (ब्रह्म), आप्त पुरुष। सुरन की सुंदरी=देवांगनाएँ। निज=निश्चय ही। अगतिन=जिसकी गति न हो उसे, पापियों को। परम गति=चरम गति, मोक्ष।

भावार्थ—(देवांगनाओं की उक्ति) हे सखी, जो माखन का चोर है, शहद का चोर है, दही का चोर है, दूध का चोर है (कहाँ तक कहूँ—वह तो ऐसा भारी चोर है कि) देखती नहीं, देखते देखते वह हृदय को भी चुरा लेता है। ऐसे को पुराने पुरुष और समस्त पुरुष भला पुराण पुरुष (ब्रह्म, आप्त, विश्वासयोग्य) न जाने किस कारण कहते हैं। वे देवताओं की सभी सुंदरियाँ श्रीकृष्ण को देख देखकर बुद्धिपूर्वक इस प्रकार का विचार कर रही हैं। वे कहती हैं—'जो गोपिका (राधिका) की गति (चाल) देखकर निश्चय ही अपनी गति (सुध-बुध) भूल जाता है, वह भला अगति (गतिहीन, पापी) लोगों को परम गति (उत्तम गति, मोक्ष) कैसे देता है।

अलंकार—विरोधाभास।

अथ समरस-लक्षण—(दोहा)

(५००) सब तें होइ उदास मन, बसै एकहीं ठौर।
ताही सों समरस कहैं, केसव कबि-सिरमौर।३७।

शब्दार्थ—ताही सों=उसी को। समरस=शांतरस।

सूचना—इसके अनंतर निम्नांकित एक छंद मुद्रित और हस्तलिखित प्रतियों में और मिलता है, पर लीथोवाली प्रति में नहीं है। सरदार कवि ने लिखा है—'या कबित्त बहुत प्राचीन पुस्तकन में नाहीं मिलत'।

पुनः, यथा—(सवैया)

बन मोहिं मिले हुते केसवराय कहा बरनौं गुन गूढ़ बघारे।
जसुदा पै गई तब रोहिनी पै चुटियाहि गुहावत जाइ निहारे।

३६—देखै०—देखत हौं। चित०—हियौं हरि, चित चोरें। पुरुष—पूरन। पूरन—पुरुष। सु—धौं। सब—सच। ३७—ताही सों—तासों समरस कहत हैं, ताही सों सब सांत रस। केसव०—कहत सुकबि।

घर जाउँ तु सोवत हैं फिरि जाउँ तौ नंद पै खात बरा दधिवारे।
सपनो यह सत्त किधौं सजनी हरि बाहिर होत खड़े घरबारे।

पाठांतर—केसवराय-केसवदास। उघारे-उधारे। तब-तौ वै। बारे-धारे, पारे। यह-अनु। हरि-घर। घर। खड़े-बड़े।

श्रीराधिकाजू को समरस, यथा-(सवैया)

(५०१) देखै नहीं अरबिंदनि त्यौं चित्त चंद की आनँदकंद निकाई।
कामिनी कामकथा करै कान न ताकै त्रिधाम की सुंदरताई।
देखि गई जब तें तुमकों तब तें कछु बाहि न देख्यो सुहाई।
छोड़ैगी देह जु देखें बिना अहो देहु न कान्ह कहूँ ह्वै दिखाई।३८।

शब्दार्थ—त्यौं = ओर। चित्त = चित लगाकर। कंद = जड़, मूल। निकाई = सुंदरता। त्रिधाम = तीनों लोक (स्वर्ग, मर्त्य, पाताल)।

भावार्थ—(सखी की उक्ति नायक से) हे कान्ह, जब से वह आपको देख गई है, तब से उसे कुछ देखना अच्छा ही नहीं लगता। न तो कमलों की ओर देखती है और न चित्त लगाकर चंद्र की आनंददात्री सुंदरता ही देखती है। कामिनी होकर भी कामकथा सुनने में कान नहीं लगाती और कहाँ तक कहें उसे तीनों लोक की सुंदरता भी नहीं भाती। यदि आप उसे दिखाई न पड़ें तो वह अपना शरीर त्याग देगी, किसी ओर (घूमते फिरते) आकर उसे दिखाई क्यों नहीं पड़ जाते ?

अलंकार—पर्यायोक्ति।

सूचना—यहाँ नायिका का मन केवल श्रीकृष्ण को देखना छोड़कर और सबसे उदास हो गया है।

श्रीकृष्णजू को समरस, यथा-(सवैया)

(५०२) खारिक खात न दारयौंइ दाख न माखनहूँ सहुँ मेटी इठाई।
केसव ऊख महूखहु दूखत आई हौं तो पहँ छाँडि जिठाई।
तो रदनच्छद को रस रंचक चाखि गए करि केहूँ ढिठाई।
ता दिन तें उन राखी उठाइ समेत सुधा बसुधा की मिठाई।३९।

शब्दार्थ—खारिक = छुहारा। दारयौंइ = अनार ही। सहुँ = से। इठाई = धृष्टता, स्नेह, चाह। महूख = (मधुक) शहद। दूखत = निंदा करते हैं। जिठाई = बड़प्पन। रदनच्छद = (रदन = दाँत + छद = ढकनेवाला) होंठ। रंचक = थोड़ा। केहूँ = किसी प्रकार।

भावार्थ—(सखी की उक्ति नायिका से) जब से वे तेरे होठों का किसी प्रकार धृष्टता करके थोड़ा सा रस ले गए हैं तब से छुहारा, अनार, अंगूर नहीं खाते। मक्खन की चाह भी छोड़ दी है। वे ऊख और शहद की भी

३८—कान-काम। देह-प्रान। ३९—महूखहु मयूखहि, पियूषहि।

-निंदा करते हैं। अतः अपने बड़प्पन का ध्यान छोड़कर (मैं तुझसे वय में बड़ी हूँ फिर भी) तुझे समझाने आई हूँ, तू उनसे शीघ्र ही मिल। उन्होंने तो उसी दिन से पृथ्वी के मीठे पदार्थों को छोड़ दिया है। सुधा को भी उन्होंने मधुरों की श्रेणी से हटा दिया है।

सूचना—(१) यह छंद 'कविप्रिया' के छठे प्रभाव में मधुर वर्णन के उदाहरण में रखा गया है।

(२) इस छंद में 'महूख' शब्द ध्यान देने योग्य है। कहीं कहीं 'महूख' के स्थान पर 'मयूख' रूप भी मिलता है। 'केशव' ने 'रसिकप्रिया' के ही बारहवें प्रभाव के पाँचवें छंद में—'ऊख रस केतक महूख रस मीठो है पियूखहू की पैली घाहैं जाको नियराइहै' लिखा है। बिहारी ने भी अपने एक दोहे में इस शब्द का व्यवहार किया है। 'देव' ने भी इसका बहुत व्यवहार किया है। देखने में तो यह शब्द संस्कृत 'मधूक' से बिगड़ा हुआ जान पड़ता है। पर टीकाकारों ने इसका अर्थ 'शहद' किया है वहाँ 'महुआ' के साथ साथ 'महूख' पृथक् भी दिया है। इससे ऐसा स्पष्ट जान पड़ता है कि वे 'महूख' का अर्थ 'महुआ' नहीं लेना चाहते—

मधुर प्रियाधर सोमकर माखन दाख समान।
बालक बातैं तोतरी कबिकुल उक्ति प्रमान।
महुवा मिसरी दूध घृत, अति सिँगाररस मिष्ट।
ऊख महूख पियूष गनि केसव साँचो इष्ट।

ऐसी दशा में 'महूख' को 'मधुक' का बिगड़ा रूप ही मानना पड़ेगा और 'क स्वार्थे' (उसी अर्थ में) लगा माना जायगा।

अपरंच—(कबित्त)

(५०३) दनुज मनुज जीव जल थल जननि को,
पखोई रहत जहाँ काल सों समरु है।
अजर अनंत अज अमरौ मरत परि,
केसव निकसि जानै सोई तौ अमरु है।
बाजत स्रवन सुनि समुझि सबद करि,
बेदन को बाद नाहिं सिव को डमरु है।
भागहु रे भागो भैया भागनि ज्यों भाग्यो परै,
भव के भवन माँझ भय को भँवरु है।४०।

४०—जल०-जलज थलजनि। जननि०-केसौराइ। अजर०-अनंत अनंत, अजर अमर, अनंत अजर। अमरौ-अरोऊ। बाजत-जब तू। सबद०-सबै सबद। परै-झाइ।

शब्दार्थ—दनुज = दानव। जननि=लोगों को, जीवों को। समरु = युद्ध। अजर = जिसे वृद्धावस्था न हो, जरारहित, सनकादि। अनंत=जिसका अंत न हो, विष्णु। अज = जिसका जन्म न हुआ हो, अजन्मा, ब्रह्मा। अमर = जो मरे न, देवता। बाजत = बजता है। सुनि = सुनो। करि बेदनि = वेदों के वाद में लगो, ज्ञानचर्चा करो। भागनि = भाग्य से। भव = संसार, मर्त्य। भवन = लोक।

भावार्थ—(किसी ज्ञानी की उक्ति संसारलिप्त व्यक्ति से) दानव, मनुष्य, जल के जीवों तथा स्थल के जीवों को इस संसार में काल से युद्ध करना पड़ता है। अजर, अनंत, अज, देवता सभी इस संसार के चक्कर में पड़कर मरते हैं। इससे जो निकलना जान ले वही अमर है। अनाहत (अनहद) नाद हो रहा है, कानों से (ध्यान लगाकर) सुन, उस शब्द को समझ और वेदों की वार्ता (ज्ञानचर्चा) कर, नहीं तो शिव का डमरू बजने ही वाला है (मृत्यु आने ही वाली है)। हे भाई, भागो, भाग्य से जिस प्रकार भागते बने (इस संसार से बचते बने) भागो। इस मर्त्यलोक के बीच भय का ही चारो ओर भँवर दिखाई देता है, सचेत रहो।

सूचना—'केशव' ने अन्य रसों को श्रृंगार के भीतर ही दिखाया है। केवल शांत का ही यह शुद्ध उदाहरण दिया है।

(दोहा)

(५०४) इहिं बिधि बरन्यो बरन बहु, नवरस रसिक बिचारि।
बाँधौं बृत्ति कबित्त की, कहि केसव बिधि चारि।४१।

शब्दार्थ—बृत्ति = कैशिकी आदि चार वृत्तियों का वर्णन अगले प्रभाव में करेंगे।

इति श्रीमन्महाराजकुमारइंद्रजीतविरचितायां रसिकप्रियायां नवरसवर्णनं नाम चतुर्दशः प्रभावः।१४।

पंचदश प्रभाव

अथ वृत्ति-वर्णन—(दोहा)

(५०५) प्रथम कैसिकी भारती, आरभटी भनि भाँति।
कहि केसव सुभ सात्वती, चतुर चतुर बिधि जाति।१।

शब्दार्थ—चार वृत्तियाँ होती हैं—कैशिकी, भारती, आरभटी, सात्वती।

४१—बरन बहु०–नवरसन केसव। बाँधौं-बाँधहुँ। कहि केसव-कहियतु है।

१—कैसिकी-कौसिकी। आरभटी०-भनि अरभटी सुभाँति। २—भाव-अर्थ।

चतुर = प्रवीण। चतुर = चार। जाति = प्रकार, भेद।

अथ कैशिकी-लक्षण—(दोहा)

(५०६) कहियै केसौदास जहँ, करुन हास सिंगार।
सरल बरन सुभ भाव जहँ, सो कैसिकी बिचार।२।

यथा—(कबित्त)

(५०७) मिलिबे कौं एक मिली-मिली फिरैं दूतिकानि
मिलि मन ही मन बिलास बिलसति हैं।
बोलिबे कौं एक बाल बोल सुनिबे कौं एक,
बोलि बोलि तीरथनि ब्रतनि बसति हैं।
देखिबे कौं एकै फिरैं देवता सी दौरि दौरि,
देवता मनाइ दिन दान मनसति हैं।
कीजै कहा करम कों इहिं रूप मेरी माई,
ये तौ मेरे कान्हजू के नामहिं हँसति हैं।३।

शब्दार्थ—एक = कोई, कुछ। करम = भाग्य। बसति हैं = अर्थात (व्रत में) बसती हैं, करती हैं। मनसति हैं = संकल्प करती हैं। नाम = श्याम।

भावार्थ—(धाय की उक्ति सखी से) मेरे कन्हैया से मिलने के लिए कुछ स्त्रियाँ तो दूतियों से मिलती फिरती हैं (उनसे मिला देने की प्रार्थना करती हैं)। कुछ उनसे मिलकर मन ही मन आनंदित होती हैं। कुछ तो उनसे बोलने के लिए चक्कर काटती रहती हैं और कुछ उनकी बातें सुनने के लिए। कुछ उनसे बातें कर करके तीर्थ और व्रतों के करने में लग जाती हैं (कि मुझे श्रीकृष्ण प्रिय के रूप में मिलें)। उन्हें (श्रीकृष्ण को) देखने के लिए जो स्वयम् देवियों सी हैं, घूमती रहती हैं। वे उनका दर्शन करने के लिए देवताओं को मनाती हैं और प्रतिदिन दान का संकल्प करती रहती हैं। भाग्य की बात क्या कही जाय, इनके ऐसे रूपसौंदर्य के होते हुए भी, मैया री मैया, ये तो मेरे कन्हैया के नाम (श्याम) की हँसी उड़ा रही हैं।

सूचना—यहाँ 'कीजै कहा करम को' से करुण, 'ये तौ मेरे कान्हजू के नामहिं हँसति हैं' से हास्य तथा 'मिलबे कौं एक' आदि से शृंगार सूचित किया गया है। अक्षर सरल (कोमल, मधुर) हैं, भाव भी शुभ है अतः कैशिकी वृत्ति है।

३—मिलि०–मिलि मिलि मही बिलास। मन ही०–मन मन ही। बाल–फिरैं। एक–और, अरु। मनसति–में नसति। इहिं–गुन। माई–भटू।

अथ भारती-लक्षण—(दोहा)

(५०८) बरनिय जामें बीररस, अरु अद्भुत रस हास।
कहि केसव सुभ अर्थ जहँ, सो भारती प्रकास।४।

यथा—(कबित्त)

(५०९) काननि कनकपत्र चक्र चमकत चारु,
धुजा झुलमुली झलकति अति सुखदाइ।
केसव छबीलो छत्र सीसफूल सारथी सो,
केसरि की आड़ अधिरथिक रची बनाइ।
नीकोई नकीब सम नीको नकमोती नाक,
एक ही बिलोकनि गोपाल तौ गए बिकाइ।
लोचन बिसाल भाल जरित जराऊ टीको,
मानो चढ्यो मीनन के रथ मनमथराइ।५।

शब्दार्थ—कनकपत्र=कर्णफूल। चक्र=पहिया। झुलमुली=झुमका। सीसफूल=सिर का आभूषण। आड़=तिलक। अधिरथिक=रथ पर आरूढ़, रथ हाँकनेवाला। नकीब=बंदी, यश गानेवाला भाट। टीको=ललाट पर का एक गहना। मनमथ=मन्मथ, कामदेव।

भावार्थ—(सखी की उक्ति सखी से) कानों में सुंदर कर्णफूल चमक रहा है, यही रथ का पहिया है। सुखदायिनी,और अत्यंत झलमलानेवाली झुलमुली (झुमका) ही ध्वज है। शीशफूल ही छबिमान् छत्र है। केसर का तिलक, जो भली भाँति लगाया गया है, रथारूढ़ सारथी के समान है। नाक में लगा हुआ नकमोती ही अच्छे भाट के समान है। बड़े बड़े (मछली के से) नेत्रों के ऊपर ललाट पर रत्नजटित टीका तो ऐसा सुशोभित है मानो मछलियों के रथ पर मन्मथराज चढ़े चले जा रहे हैं। गोपाल तो एक ही चितवन में बिक गए, वश में हो गए।

सूचना—युद्ध का साज-सामान होने से वीर, 'एक बिलोकनि' से हास्य और 'मीननि के रथ चढ़यो' से अद्भुत रस व्यक्त होता है। अतः भारती वृत्ति है।

अथ आरभटी-लक्षण-(दोहा)

(५१०) केसव जामें रौद्ररस, भय बीभत्सहि जान।
आरभटी आरंभ यह, पद पद जमक बखान।६।

शब्दार्थ—जमक_(यमक) अक्षरमैत्री, अनुप्रास आदि।

४-बरनिय-बरनै। अरु०-रसमय अद्भुत। ५-अधिरथिक-अधिराधिका, अधिरातिका। नीकोई०-नीकेहीं नकीब सम नीको मोती नीकी नाक, नीके ही में नीकी नाक नीको मोती उरजात। टीको-लाल। चढ्यो-बेगै। ६—बीभत्सहि-बीभत्सक।

यथा-(सवैया)

(५११) घेरि घने घन घोरत सज्जल उज्जल कज्जल को रुचि राचैं।
फूले फिरैं इभ से नभ पाइक सावन की पहली तिथि पाचैं।
चौंहूँ कुधा तड़िता तड़पै डरपै बनिता कहि केसव साचैं।
जानि मनो ब्रजराज बिना ब्रज ऊपर काल कुटुंबिनि नाचैं।७।

शब्दार्थ—घोरत = गरजते हैं। सज्जल = सजल। रुचि = शोभा। राचैं = बनाते हैं। इभ = हाथी। पाइक = धावन। पाँचैं = पंचमी। कुधा = ओर। तड़िता = बिजली। ब्रजराज = श्रीकृष्ण। काल-कुटुंबिनि = प्रेतिनी, पिशाचिनी।

भावार्थ—(सखी की उक्ति सखी से) घने और सजल बादल घिरकर गरज रहे हैं। उज्ज्वलता और श्यामता की शोभा फैला रहे हैं। आकाश में हाथी के ऐसे ये धावन फूले फिर रहे हैं। सावन की पहली पंचमी (पहले पाख की तिथि है) को चारों ओर बिजली कड़क रही है, सचमुच स्त्रियाँ डर जाती हैं मानो ब्रज को श्रीकृष्ण से रहित जानकर उसके ऊपर प्रेतिनियों का नाच हो रहा है।

सूचना—'तड़िता तड़पै' से रौद्र, 'बनिता डरपै' से भयानक और 'काल-कुटुंबिनि नाचैं' से बीभत्स रस व्यक्त हुआ है। अतः आरभटी वृत्ति है।

अथ सात्वती-लक्षण-(दोहा)

(५१२) अद्भुत बीर सिँगाररस, समरस बरनि समान।
सुनतहि समुझत भाव जिहिं सो सात्वती सुजान।८।

शब्दार्थ—समरस = शांतरस।

यथा-(कबित्त)

(५१३) केसौदास लाख लाख भाँतिनि के अभिलाष,
बारि दे री बावरी न बारि हिये होरी सी।
राधा हरि केरा प्रीति सब तें अधिक जानि,
रति रतिनाथहू में देखौं रति थोरी सी।
तिन माह भेद न भवानिहूँ पै पारयो जाइ,
भानत में भारती को भारतो है भोरो सी।
एकै गति एकै मति एकै प्रान एकै मन,
देखिबे कों देह द्वै हैं नैननि की जोरी सी।९।

७—उज्जल०—कज्जल की चरचा उर। चौंहूँ कुधा—चौहूँ दिसा, चहुँ कोदनि में, चौहूँ कुदाँ। तड़पै—तलफै। कहि—लखि। ८—बीर०—रुद्र रु बीर रस। जिहिं—मनि। सात्वती—सात्वकी। सुजान—प्रमान। ९—बारि—बारु। राधा०—राधिका हरी की। में देखौं—कै जानौ। माहि—हूँ में। भानत—भारत, भारती। भारतो की—भारत को। भारती है—भारतीऊ, भारती है कहिबे कों।

शब्दार्थ—बारि दै=त्याग दे, छोड़ दे। न बारि=मत जला। केरी=की। रति=काम की पत्नी। रतिनाथ=कामदेव। रति=प्रीति। भेद पारना फूट डालना। भवानि=पार्वती। भानत में—(प्रेम) तोड़ने में। भारती=सरस्वती। भारती=वाणी, वाक् शक्ति।

भावार्थ—(सखी की उक्ति अन्य नायिका से) ऐ पगली, लाखो प्रकार के अभिलाष करना त्याग दे, हृदय में होली मत जला। (तू जो यह चाहती है कि उनमें भेद डाल दिया जाय सो असंभव है)। राधिका और श्रीकृष्ण की प्रीति (प्रेम के लिए प्रसिद्ध युगुल जोड़ियों में से सबसे अधिक है) रति और कामदेव में (उनकी प्रीति के सामने) थोड़ी प्रीति दिखाई देती है। उनमें स्वयम् पार्वती भी भेद नहीं डाल सकतीं। यदि स्वयम् सरस्वती भी अपनी वाणी से उनकी प्रीति तोड़ना चाहें तो उनकी वाणी भी कुंठित हो जायगी। उन दोनो की एक ही चाल, एक ही बुद्धि, एक ही मन और एक ही प्राण हैं। देखने के लिए केवल उनके शरीर दो हैं। वे तो (एक ही से) दो नेत्रों की जोड़ी से जान पड़ते हैं।

सूचना—'एकै गति' से अद्भुत, 'तिन माँहि०' से वीर, 'राधा हरि केरी प्रीति०' से शृंगार और 'लाख लाख भाँति०' से शांतरस है। प्रसादगुणपूर्ण होने से सात्वती वृत्ति है।

(दोहा)

(५१४) **इहिं बिधि केसवदास कबि, नवरस बरनि कबित्त।**
पाँच भाँति अनरस सुनौ, ताहि न दीजै चित्त।१०।

इति श्रीमन्महाराजकुमारइंद्रजीतविरचितायां रसिकप्रियायां चतुर्विध-कवित्ववृत्तिवर्णनं नाम पंचदशः प्रभावः।१५।

षोडश प्रभाव

अथ अनरस-वर्णन—(दोहा)

(५१५) **प्रत्यनीक नीरस बिरस केसव दुस्संधान।**
पात्रादुष्ट कबित्त बहु, करहिं न सुकबि बखान।१।

अथ प्रत्यनीक-लक्षण—(दोहा)

(५१६) **जहँ सिँगार बीभत्स भय, बीरहि बरनै कोइ।**
रौद्र सु करुना मिलतहीं, प्रत्यनीक रस होइ।२।

१—दुरसंधान-दुस्संधान। बहु--कों। करहि न०-करतहि कुकबि। २—बीरहि-बिरसहि, बिर ही।

शब्दार्थ—प्रत्यनीक = शत्रु। रस की शत्रुता इन रसों में होती है—श्रृंगार और बीभत्स में, भय और वीर में, रौद्र और करुण में—

उदाहरण—(सवैया)

(५१७) हँसि बोलतहीं सु हँसै अब केशव लाज भगावत लोक भगै।
कछु बात चलावत घैरु चलै मन आनतहीं मनमत्थ जगै।
सखि तूँ जु कही सु हुती मन मेरेहु जानि यहै न हियो उमगै।
हरि त्यौं टुक डीठि पसारतहीं अँगुरीन पसारन लोग लगै।३।

शब्दार्थ—लोक = संसार भर के लोग। घैरु = बदनामी, निंदा। मनमत्थ = मन्मथ, काम। त्यौं = ओर। डीठि पसारना = देखना। अँगुरी पसारना = अंगुली दिखाना, बुरा समझना।

भावार्थ—(नायिका की उक्ति सखी से) हे सखी, तूने जो बात कही, वह मेरे मन में भी थी, पर यह समझकर मन में (प्रेम करने के लिए) उमंग नहीं आती कि यदि मैं उनसे हँसकर बोली तो तुरंत सब लोग हँसी उड़ाने लगते हैं। यदि लज्जा छोड़कर उनसे बोलती ही रहती हूँ तो लोग मुझसे भागते हैं (घृणा करते हैं)। (प्रिय की) कोई बात चलाते ही निंदा होने लगती है और यदि उन्हें मन में रखती हूँ तो काम जगता है (कामोद्दीपन होता है)। श्रीकृष्ण की ओर थोड़ा सा भी दृष्टि फैलाती हूँ (उन्हें देखती हूँ) तो तुरंत लोग उँगली दिखाने लगते हैं (बुरा समझ घृणा करने लगते हैं)।

सूचना—(१) यहाँ 'हँसि बोलतहीं' आदि श्रृंगाररस की बातें हैं, पर साथ ही 'लोक भगै', 'मनमत्थ जगै', 'अँगुरीन पसारन लोग लगै' आदि बीभत्स-रस व्यंजक हैं। अतः श्रृंगार के साथ घृणा का वर्णन होने से रस-शत्रुता हो गई। यही प्रत्यनीक दोष हुआ।

(२) यह छंद 'कविप्रिया' में १३।४० पर है।

अथ नीरस-लक्षण-(दोहा)

(५१८) जहाँ दंपती मुँह मिलै, सदा रहैं यह रीति।
कपट करै लपटाय तन, नीरस रस की प्रीति।४।

भावार्थ—जहाँ दंपती केवल मुँह से प्रेम करें, मन से नहीं। अथवा शरीर से आलिंगनादि करने पर भी मन में कपट हो वहाँ नीरस दोष होगा।

उदाहरण-(सवैया)

(५१९) गाहत सिंधु सयाननि के जिनकी मति की अति देह दहेली।
मोहिं हँसी दुख दोऊ दई तिनहूँ सों जनावति प्रेम-पहेली।

३—हँसि-हरि। कही-कहै। जानि०-जानि यहै नहिं क्यौ, जानियै नेह हिये। टुक-नेकु, निकु।४—करै-रहै। तन-मन।

आजु लौं काननहूँ न सुनो सु तौ देखि चलो हम सौति सहेली।
जानी है जानी मिली मुँहहीं हिय नाहियैं भावति गर्बगहेली।५।

शब्दार्थ—गाहत = थहाते थहाते। सयान = चतुराई। दहेली = (सं० दिग्ध) ठिठुरी हुई। गर्बगहेली = गर्बीली।

भावार्थ—(सखी की उक्ति नायिका से) (तू तो मुझे ही चराना चाहती है) अरी, जिनकी बुद्धि का शरीर चतुराई के समुद्र में डुबकी मारते-मारते ठिठुर गया है, उन्हीं से तू प्रेम की पहेली बुझाने चली है। तेरी इस बात पर मुझे हँसी भी आती है और दुःख भी होता है। आज तक जो बात कान से नहीं सुनी वही देखने में आई कि सौत भी सखी होती है। मैंने तुझे भली भाँति जान लिया तू केवल मुँह से ही (नायक से) मिली है (बातों से ही प्रेम प्रकट करती है)। ऐ गर्बीली, तुझे हृदय में वह नहीं भाता।

सूचना—(१) यहाँ मुँह से प्रेम प्रकट करना और हृदय से कपट दिखाना ही नीरस दोष है। (२) सरदार ने 'कपट करै लपटाय तन' को भी इसी में दिखाने के लिए 'मिली' का अर्थ 'भेंटना' माना है और 'दंपती' की पूर्ति के लिए नायक की भी उपस्थिति मानकर दोनो का वहाँ उपस्थित होना कहा है।

अथ विरस-लक्षण—(दोहा)

(५२०) **जहीं सोक महिं भोग को, बरनत है कबि कोइ।**
केसवदास हुलास सों, तहीं विरस रस होइ।६।

भावार्थ—ज्यों ही कोई कवि शोक में भोग-विलास का वर्णन उल्लास के साथ करने लगता है, त्यों ही विरस दोष हो जाता है।

उदाहरण—(कवित्त)

(५२१) केसौदास न्हान दान खान पान भूल्यो ध्यान,
गयो ज्ञान भयो प्रान पीठि की सी पीठि है।
छाँड़हु रसिक लाल यह जक वह बाल,
देखतहीं सब सुख तुमहीं उबीठिहै।
ऐसी सों बसीठी सीठी चीठी अति डीठो सुने,
मीठी मीठी बातनि जू नीकेहू में नीठि है।
ईठनि सों टूटी ईठी ताके सोक की अँगीठी,
उठी जाके उर में सु कैसे हँसि डीठिहै।७।

५—के जिनकी मति—काज न कीरति। जनावति—जगावति। हूँ—ही।
६—जहीं-जहां। बरनत०-बरनि कहै। तहीं तहँहि, तहहीं। बिरस—बीरस।
७—ध्यान—गान। बात-बान। सों बसीठी=सोच सीठी। हँसि-हरि। जु—में।

शब्दार्थ—पीठि=(पृष्ठ) पीठ। पीठि=(पृष्ठ) पीढ़ा, आसन। भयो प्रान०=प्राण पीठ का आसन सा हो गया है, पीठ पीछे पड़ा है, निकल सा गया है। रसिक लाल=हे कृष्ण। जक=धुन, रट। बाल=नायिका। उबीठिहै=मन से उतर जायगा। बसीठी=दूतत्व। सीठी=फीकी,निरर्थक। डीठी=जान पड़ती हैं। नीकेहू=भली-चंगी रहने पर भी। नीठि=कठिनाई से। ईठ=इष्ट, मित्र। टूटी–फटी फटी, बेमन की उदास। ईठी=प्रेम। डीठिहै=देखेगी।

भावार्थ—(दूती का वचन नायक से) हे रसिक लाल, (आप जो मुझ से बार बार उसके पास जाने को कहते हैं, थोड़ा उसकी दशा पर तो ध्यान दीजिए) उसने स्नान, दान, खान, पान सब भुला रखा है। न तो ध्यान करती है और न उसे ज्ञान ही रह गया है। प्राण तो उसके निकल से गए हैं, पीठ के पीछे पड़े हैं। आप अपनी रट छोड़ दीजिए। वह नायिका तो मुझे देखते ही सब सुखों की तो बात ही क्या स्वयम् तुमको भी मन से उतार देगी। ऐसी के लिए दूतत्व करने जाना ठीक नहीं जान पड़ता। रही चिट्ठी, यह तो मुझे अत्यंत निरर्थक जान पड़ती है। जो भली-चंगी रहने पर मीठी मीठी बातों को बड़ी कठिनाई से सुनती थी (वह इस दशा में चिट्ठी-पत्री क्या देखेगी या सुनेगी)। सखी-सहेलियों से तो वह फटी फटी सी रहती है। उसको तो हृदय में उठी हुई (प्रज्वलित) शोक की अँगीठी कुछ करने ही नहीं देती, वह भला हँसकर बोलेगी भी तो कैसे ?

सूचना—यहाँ नायिका के शोक में श्रीकृष्ण के भोगविलास का वर्णन घुस पड़ा है, अतः विरस है।

अथ दुःसंधान-लक्षण—(दोहा)

(५२२) **एक होइ अनुकूल जहँ, दूजो है प्रतिकूल।**
केसव दुरसंधान रस, सोभित तहाँ समूल।८।

उदाहरण—(सवैया)

(५२३) **'दै दधि' 'दीनो उधार हो केसव' 'दान कहा जब मोल लै खैहैं।'**
'दीने बिना' 'तौ गई जु गई' 'न गई न गई घर ही फिरि जैहैं।'
'गो हित बैर कियो' 'कब हो हित बैर कियें बरु नीकी ह्वै रैहैं।'
'बैर कै गोरस बेंचहुगी' 'अहो बेच्यो न बेच्यो तौ ढारि न दैहैं।९।'

शब्दार्थ—दान=कर। गो=गया, मिट गया। हित=प्रेम। गोरस=दूध, दही।

भावार्थ—(नायक और नायिका का संवाद है)

८—जहँ०–जिय जहँ दूजो प्रतिकूल। सोभित–सोहतु। ९—दीनो–दीनी। हो–है। तौ–जु। जु–हो। न गई०–तौ गई न गई। नीकी–नीके।

नायक—दही दे।

नायिका—उधार तो दे चुकी।

नायक—जब मोल लेकर खाएँगे तो दान (कर) कैसा ?

नायिका—तो क्या बिना दिए ही आप बरबस ले लेंगे ?

नायक—(न दोगी) तो फिर आगे जा चुकी (जाने न पाओगी)।

नायिका—न जाएँगी न सही, घर ही लौट जाएँगी।

नायक—तो समझ लो हमारा तुम्हारा मेल आज से टूट गया, (समझ रखो कि अब तुमने हमसे) बैर कर लिया है।

नायिका—आपसे मेल-जोल था कब, बैर करने से तो बल्कि अच्छी ही रहेंगी।

नायक—बैर करके क्या गोरस बेच लोगी ?

नायिका—भला, बेचा या न बेचा, उड़ेल तो देंगी नहीं।

सूचना—(१) यहाँ एक (नायक) तो अनुकूल बातें करता है और दूसरा (नायिका) प्रतिकूल, अतः दुःसंधान रस है। (२) कविप्रिया (प्रभाव ३,३६) में यही छंद हीनरस के उदाहरण में रखा गया है। (३) दीने बिना तौ गई जु गई—सबका सब नायक का वचन मान लेने में संवाद का क्रम बिगड़ता है, क्योंकि 'दान कहा जब मोल लै खैहैं' भी नायक की ही उक्ति है।

अलंकार—उत्तर।

अथ पात्रादुष्टरस-लक्षण—(दोहा)

(५२४) **जैसो जहाँ न बूझियै, तैसो करियै पुष्ट।**
बिन बिचार जो बरनियै, सो रस पात्रादुष्ट।१०।

भावार्थ—जहाँ पर जिस प्रकार पुष्ट न करना चाहिए उस प्रकार से किसी बात की पुष्टि की जाय, इस प्रकार जहाँ विचारपूर्वक वर्णन नहीं किया जाता वहाँ पात्रादुष्ट रस होता है।

उदाहरण—(कबित्त)

(५२५) **कपट-कृपानी मानी प्रेम-रस लपटानी,**
प्राननि को गंगाजू के पानी सम जानियै।
स्वारथ-निधानी परमारथ की राजधानी,
काम की कहानी केसौदास जंग मानियै।
सुबरन अरुझानी सुधा सों सुधारि आनी,
सकल-सयान-सानो ज्ञानी सुखदानियै।
गौरा औ गिरा लजानी मोहे मुनि मूढ़ प्रानी,
ऐसी बानी मेरी रानी बिष कै बखानियै।११।

१०—जहाँ न--जाको। करियै--कीजै। पात्रादुष्ट--पातरदुष्ट।

शब्दार्थ—कृपानी = तलवार। निधानी = कोश। सयान = चतुरता। सानी = युक्त। गौरा = पार्वती। गिरा = सरस्वती।

भावार्थ—(नायक की उक्ति मानवती नायिका से) हे मेरी रानी, तुम्हारी वह वाणी जो कपट के लिए मानी हुई कृपाण है, जो प्रेम के रस से लिपटी हुई है, जो प्राणों के लिए गंगाजी के पानी के समान शीतलता देनेवाली है, जो स्वार्थ का कोश है, जो परमार्थ (मोक्ष) की राजधानी है, जो काम की कथा के समान संसार में (मधुर या अत्यंत प्रिय) है, जो सुवर्ण से उलझी हुई है, अमृत से सुधारकर लाई गई है, जो सब प्रकार से चातुर्य से युक्त है, जो ज्ञानियों को सुख देनेवाली है, जिससे पार्वती और सरस्वती भी लज्जित हैं, जिसे सुनकर मुनि और मूढ़ जीव भी मुग्ध हो जाते हैं ऐसी वाणी को तुम विष कहती हो, शिव शिव ! (नायिका ने गान में कहा है कि मेरी बातें आपको विष सी लगती हैं', इसी पर नायक ने इतना बड़ा तूमार बाँधा है)।

(दोहा)

(५२६) **केसव करुना हास्य कहुँ, अरु बीभत्स सिँगार।**
बरनत बीर भयानकहि, संतत बैर बिचार।१२।

भावार्थ—इन रसों में नित्य विरोध है—करुण और हास्य में, बीभत्स और शृंगार में, वीर और भयानक में।

(५२७) **भय उपजै बीभत्स तें, अरु सिँगार तें हास।**
केसव अद्भुत बीर तें, करुना कोप प्रकास।१३।

भावार्थ—रसोत्पत्ति का क्रम यों है—बीभत्स से भय की, शृंगार से हास्य की, वीर से अद्भुत की, क्रोध से करुण की उत्पत्ति होती है।

(५२८) **इहिं बिधि केसवदास रस, अनरस कहे बिचारि।**
बरनत भूल परी जहाँ, कबिकुल लेहु सुधारि।१४।

शब्दार्थ—भूल = चूक, भ्रम।

(५२९) **जैसे रसिक प्रिया बिना, देखिय दिन दिन दीन।**
त्यों ही भाषाकबि सबै, रसिकप्रिया बिन हीन।१५।

(५३०) **बाढ़ै रति मति अति परै, जानै सब रस रीत।**
स्वारथ परमारथ लहै, रसिकप्रिया की प्रीति।१६।

शब्दार्थ—अति परै = बढ़ती है, तीव्र होती है।

इति श्रीमन्महाराजकुमारइंद्रजीतविरचितायां रसिकप्रियायां
रसअनरसवर्णनं नाम षोडशः प्रभावः।१६।

११—मानी-जानी। जानियै-आनियै। मानियै-जानियै। सुबरन-सतरनु। ज्ञानी-गानी। प्रानी-स्यानी। बिष कै-मुख तें, ऊख कै। १२-कहुँ-कहि। बरनत-बरने। १४ -भूल०-भूलि परो। १५-बिन-करि।

प्रतीकानुक्रमणी

[संख्याएँ प्रभावों एवम् छंदों की हैं। 'सू' का तात्पर्य 'सूचना' में दिए हुए पद्यों से है।]